धर्म की यात्रा To be Edited, specially discourse #8

प्रवचन-क्रम

1. दूसरा कोई उत्तर नहीं दे सकता...2
2. व्यक्ति की महिमा को लौटाना है...20
3. क्या आपका जीवन सफल है?...31
4. सुख की कामना दुख लाती है..46
5. स्वयं को जानना कौन चाहता है?...53
6. जीवन के प्रेमी बनो, निंदक नहीं..57
7. समाज अनैतिक क्यों है?..70
8. खुद को खोने का साहस...86
9. जीवन के तथ्यों से भागें नहीं...101

धर्म की यात्रा
पहला प्रवचन

दूसरा कोई उत्तर नहीं दे सकता

बहुत से प्रश्न आए हैं, बहुत से प्रश्न आए हैं। प्रश्नों का पैदा होना बड़ी अर्थपूर्ण बात है। प्रश्न पैदा होने लगें तो विचार और खोज का कारण हो जाते हैं। दुर्भाग्य तो उन्हीं लोगों का है जिनके भीतर प्रश्न पैदा ही नहीं होते, और उतना ही दुर्भाग्य नहीं है। कुछ लोग तो ऐसे हैं जिनके भीतर उत्तर इकट्ठे हो गए हैं, और प्रश्नों की अब कोई जरूरत नहीं रही। बहुत लोग ऐसे हैं जिनके भीतर उत्तर तो बहुत हैं, प्रश्न बिल्कुल नहीं हैं। और होना यह चाहिए कि उत्तर तो बिल्कुल न हों, और प्रश्न रह जाएं।
लेकिन प्रश्नों का उत्तर दूं उसके पहले आपको यह कह दूं कि मेरा उत्तर, आपका उत्तर नहीं हो सकता है। इसलिए कोई इस आशा में न हो कि मैं जो उत्तर दूंगा, वह आपका उत्तर बन सकता है। प्रश्न आपका है तो उत्तर आपको खोजना होगा। प्रश्न आपका हो और उत्तर मेरा हो; तो आपके भीतर द्वंद्व, कांफ्लिक्ट पैदा होगी, आपके भीतर समाधान नहीं आएगा।
और यही हमेशा से हुआ है। प्रश्न हमारा होता है, उत्तर महावीर का होता है, बुद्ध का होता है, कृष्ण का होता है। और जब उत्तर दूसरे का होता है, तब हमारा प्रश्न नष्ट तो नहीं होता--दब जाता है। इसलिए मैं जिनके उत्तर दे रहा हूं इस खयाल से नहीं कि आप मेरे उत्तर को पकड़ लेंगे। वह भूल हजारों वर्ष से हो रही है, किसी के भी उत्तर को पकड़ना नहीं है।

उसने पूछा हैः एक प्रश्न मुझसे पूछा है कि फिर मैं क्यों समझा रहा हूं? फिर मैं क्यों कह रहा हूं? फिर मैं क्यों उत्तर दे रहा हूं? अगर मैं मानता हूं कि दूसरा मनुष्य कोई उत्तर नहीं दे सकता, तो मेरे उत्तर देने का क्या प्रयोजन?

मेरे उत्तर देने का प्रयोजन भी आपको मैं स्पष्ट कर दूं। मेरे उत्तर देने का प्रयोजन यह नहीं है कि आप उसे स्वीकार कर लें; मेरे उत्तर देने का केवल इतना ही प्रयोजन है, आपके भीतर विचार पैदा हो जाए। हममें से बहुत से लोगों ने सोचना बंद कर दिया है। हम सोचते ही नहीं हैं, हमने सोचना दूसरों पर छोड़ दिया है।
मैं एक उपन्यास पढ़ता था। उस उपन्यास में, वह कोई पांच सौ वर्ष बाद आने वाली दुनिया का उपन्यास है। उसमें एक आदमी कहता है अपने नौकर को कि--जाओ, मेरी पत्नी से प्रेम कर आओ। क्योंकि मुझे प्रेम करने की फुरसत नहीं। जरूर एक वक्त आएगा कि हम प्रेम भी दूसरों से करवाने लगेंगे। जब हमें फुरसत नहीं होगी तो हम किसी से कहेंगे कि जाओ और प्रेम करो, हमारी तरफ से प्रेम करो। हमको हंसी आती है इस बात को जान कर कि कभी ऐसा वक्त भी आ सकता है कि प्रेम हम दूसरों से करवा लें, क्योंकि हमारे पास समय की कमी है। लेकिन वही काम आप सत्य के संबंध में बहुत दिनों से कर ही रहे हैं। आप दूसरों से करवा लेना चाहते हैं।
मेरा प्रयोजन यह नहीं है कि मैं आपका काम कर दूं। मेरा प्रयोजन यह है
कि आपको यह स्मरण दिला दूं कि आपका काम आपके अतिरिक्त और कोई भी नहीं कर सकता है। मेरे उत्तर आपके उत्तर नहीं होंगे, लेकिन मेरे उत्तर आपके भीतर प्रश्न को पैदा करने में सहयोगी हो सकते हैं। उत्तर नहीं हो सकते, लेकिन प्रश्नों को गहरा और स्पष्ट करने में सहयोगी हो सकते हैं। और दुनिया के जो भी बड़े-बड़े लोग हुए हैं, उनका असली काम आपके उत्तर देना नहीं, आपके भीतर प्रश्न को जगा देना था।
बुद्ध या महावीर या कृष्ण ने कोई उत्तर नहीं दिए हैं, बल्कि आपके भीतर प्रश्नों को जगा दिया है। जो प्रश्न आपके भीतर छुपे थे, उन्होंने प्रकट कर दिए हैं। और जब किसी के भीतर प्रश्न जग जाए, पैदा हो जाए तो प्रश्न पीड़ा देने लगता है, परेशान करने लगता है, उसका हल खोजना ही होगा। लेकिन हम सारे लोग तरकीबें निकाल लेते हैं, किसी उत्तर को मान लेते हैं। और प्रश्न से जो

पीड़ा पैदा होती है उसको नष्ट कर देते हैं। मैं आपके प्रश्नों को नष्ट करने को नहीं हूं, वे और सजग, तीव्र, पैने और तीखे हो जाएं--वही मेरी आकांक्षा है। इसलिए मेरे उत्तर को आप अपने मन में न रख लेना, वह आपके मन में रखने के लिए नहीं हैं। वह तो आपके मन के भीतर सिर्फ एक विचार है, एक इफर्ट है। एक होश पैदा कर सके तो उसकी सार्थकता है।

ये पूछा है कि मैं क्यों बोल रहा हूं?

निश्चित ही महावीर से भी पूछा गया होगा--क्यों बोल रहे हैं? बुद्ध से
भी पूछा गया होगा--क्यों बोल रहे हैं? क्राइस्ट से भी पूछा गया होगा--क्यों बोल रहे हैं? यह किसी से भी पूछा जाएगा। सच में ही ये बात बड़ी ही विचारणीय है। ये प्रश्न बिल्कुल ठीक है कि जब मैं मानता हूं कि किसी से किसी को सत्य नहीं दिया जा सकता, तो फिर मैं क्यों बोल रहा हूं? और यह जो उन्होंने पूछा है एक प्रश्न में कि जिसको समाधि उपलब्ध हो गई है, वह क्यों बोलेगा? उसे बोलने का प्रयोजन ही क्या है?
वस्तुतः हम जीवन में जो भी करते हैं किसी प्रयोजन से करते हैं। कोई न कोई उसके अंत में लाभ हमारी दृष्टि में होगा। अगर महावीर से और बुद्ध से अगर हम यह पूछें कि महावीर क्यों बोल रहे हैं, कौन से प्रोफिट की, कौन से लाभ की इच्छा है? बोलने से उनका प्रयोजन क्या है, लाभ क्या है?
हमें यह खयाल ही नहीं है कि जीवन में ऐसी क्रियाएं भी हो सकती हैं जिनका होना अपने आप में आनंद है, जिनके बाहर कोई लक्ष्य नहीं है। आप किसी को प्रेम करते हैं। आपने सोचा कि मैं प्रेम किसलिए कर रहा हूं? और अगर आप उत्तर दे सकें कि मैं इसलिए प्रेम कर रहा हूं, तो आपका प्रेम गर्क हो जाएगा--कोई प्रेम है ही नहीं।
जो किसी कारण से हो, वह प्रेम नहीं है। क्योंकि कारण से आपका संबंध हो जाएगा, प्रेम विलीन हो जाएगा। अगर आप किसी को इसलिए प्रेम कर रहे हैं कि वह सुंदर है, तो सौंदर्य के विलीन होने से प्रेम बदल जाएगा। अगर आप किसी को प्रेम करते हैं कि वह गुणवान है, कल अगर उसके गुण, गुण बदल जाएं, तो प्रेम चला जाएगा। अगर आप किसी को इसलिए प्रेम कर रहे हैं कि उसके पास बहुत धन है-- तो आप धन से प्रेम कर रहे हैं, गुण से प्रेम कर रहे हैं, सौंदर्य से प्रेम कर रहे हैं। लेकिन ये प्रेम नहीं है। ये प्रेम ----।
जीवन में हम क्योंकि हर चीज प्रयोजन से करते हैं, इसलिए हम पूछते हैं
कि हर चीज का प्रयोजन होना चाहिए। लेकिन जीवन में जब कोई भी शांति का और आनंद का अनुभव हो, तो क्रियाएं प्रेम से शून्य हो जाती हैं। क्रियाएं प्रेम से निस्पंद होने लगती हैं; आनंद से निस्पंद होने लगती हैं।
अकबर ने... एक घटना अकबर के उल्लेख में है, मुझे खयाल आती है कि आपको कहूं। मैंने बहुत से लोगों को उस बात को कहा, और मुझे लगा कि वह बात को समझा दूं। अकबर ने अपने संगीतज्ञ तानसेन को एक दफा पूछा था कि तुम इतना अच्छा, इतना अच्छा बजाते हो कि मुझे कई दफा यह विचार उठता है कि अगर तुम्हारे गुरु को मैं सुन पाता, तो न मालूम और कितना अच्छा बजाते। हालांकि मुझे विश्वास नहीं आता कि तुमसे अच्छा बजाने वाला भी हो सकता है। लेकिन यह मेरे मन में जिज्ञासा उठती है, क्या तुम्हारे गुरु जीवित हैं?
तानसेन ने कहा: मेरे गुरु तो जीवित हैं, लेकिन उनको सुनना आसान नहीं।
वे अपनी मौज से बजाते हैं, किसी की आकांक्षा से नहीं बजाते। फिर भी मैं कोशिश करूंगा कि आप उन्हें सुन सकें। उसके गुरु तो एक फकीर थे और यमुना के किनारे रहते थे। रात को चार बजे ----उठ कर वह अपना सितार बजाते थे।
तानसेन और अकबर ने झोपड़े के बाहर चोरी से सितार को सुना। सुनने के बाद अकबर की आंखों से आंसू की झड़ी लग गयी, रास्ते भर वह बोला नहीं। महल में प्रवेश करते वक्त उसने तानसेन से कहाः मैं तो बिल्कुल अवाक रह गया हूं। तुम तो अपने गुरु के मुकाबले कुछ भी नहीं हो। लेकिन तुम्हारा गुरु इतना अदभुत और अलौकिक बजाने में कैसे समर्थ है, उसके संगीत में ये भिन्नता क्यों है?

तानसेन ने कहाः मैं इसलिए बजाता हूं कि बजाने के बाद मुझे कुछ मिल जाएगा, उस पर मेरी आशा लगी हुई है। और मेरे गुरु इसलिए बजाते हैं कि बजाने के पहले उन्हें कुछ मिल गया है। और वह जो मिल गया है, वह बिखरना चाहता है, बंटना चाहता है। मेरी आकांक्षा है, मेरा आनंद है--बजाने के बाद, उनका आनंद है--बजाने के पहले। उनका आनंद बजाने में प्रकट हो रहा है, और मैं आनंद पाने के लिए बजा रहा हूं। बजाना मेरा साधन है, उनका साधन नहीं।
और निश्चित ही जीवन में अगर भीतर आनंद उपलब्ध हो, तो आनंद का एक लक्षण है--वह बंटना चाहता है। दुख का एक लक्षण है--वह सिकुड़ना चाहता है। जब आप दुखी होते हैं, आप चाहते हैं कोई मिले नहीं, आप अकेले ही चले जाएं, एक अधेंरी कोठरी में बंद हो जाएं। अगर बहुत ही दुख है तो आप मर जाना चाहते हैं, आत्महत्या कर लेना चाहते हैं। ताकि किसी से मिलने की कोई संभावना ही न रह जाए। दुख में आप अकेले होना चाहते हैं, और आनंद में आप सबके साथ होना चाहते हैं।
जो मनुष्य परिपूर्ण आंनद से भर जाता है, वह सारे जगत के साथ हो जाता है। इसलिए आपने देखा होगा, जब महावीर और बुद्ध और कृष्ण और क्राइस्ट दुखी हैं, जब उनके जीवन में दुख है; तो हम पाते हैं वे एकांत की तरफ जा रहे हैं। और जब उनके जीवन में आनंद है; तो हम पाते हैं वे बस्ती की तरफ वापस लौट रहे हैं। महावीर बारह वर्षों तक जंगल में थे, जब वे दुख में थे। और जब उन्हें आनंद उपलब्ध हुआ तो वे बस्ती की तरफ वापस लौट आए।
आनंद बंटना चाहता है। और रहस्य यह है कि आनंद जितना बंटता है, उतना बढ़ता चला जाता है। यह कोई प्रयोग नहीं है; कोई डाक का प्रश्न नहीं है; कोई अर्थ नहीं है इसके पीछे। लेकिन अगर किसी को आनंद मिले, तो यह अनिवार्य हो जाता है कि वह लोगों से कह दें कि आनंद कैसे मिला है? अगर किसी को दिखाई पड़ता हो कि सामने रास्ते पर गड्ढा है, और आप उस तरफ जा रहे हों, तो उसके प्राण कहेंगे कि वह आपको कह दे--कि यह गड्ढा है।
आप कहेंगे कि तुम्हारा प्रयोजन क्या है? वह कहेगा, कि मेरा हृदय तुम्हें गड्ढे में जाते देखना संभव नहीं कर पाता; नहीं सह पाता। मेरी श्वासें नहीं बरदाश्त कर पातीं कि तुम गड्ढे में जाओ, और मेरा प्रेम नहीं सह पाता है कि तुम गड्ढे में गिरो, और कोई इसमें रीजन नहीं है।
जो मैं आपसे कह रहा हूं उसमें कोई भी डेफिनेशन नहीं है, कोई भी अर्थ नहीं है। मुझे जो दिखाई पड़ता है, मुझे लगता है वह शायद आपका भी आनंद बन जाए और उसे कहने में, उसे आपको बता देने में--मेरा आनंद घटता नहीं है, और बढ़ जाता है। कोई भी प्रयोजन नहीं है, कोई लक्ष्य नहीं है। आपको कुछ छीनना नहीं है, आपको कुछ बदलना नहीं है, आपके लिए कोई नया संगठन नहीं बनाना है, कोई संप्रदाय नहीं बनाना है।

पूछा है मुझसे कि क्या आप चाहते हैंः कोई मत, कोई संप्रदाय खड़ा हो जाए?

यह तो पागलपन की बात है। मैं तो सारे लोगों को चाहता हूं कि वे भी नहीं बनाएं। और अगर मैं भी एक मत खड़ा करूं, तो वह मत तो मेरी ही बात का खंडन होगा। मैं तो कहता हूं: दुनिया में सारे मत विलीन हो जाने चाहिए। विवेक विकसित होना चाहिए--मत नहीं। ज्ञान विकसित हो जाना चाहिए--संप्रदाय नहीं। संगठन विकसित नहीं होने चाहिए; प्रेम विकसित होना चाहिए। प्रेम और संगठन में जमीन और आसमान का फर्क है।
संगठन घृणा पर खड़े होते हैं। तो जितने भी संगठन हैं दुनिया में, सब
घृणा पर खड़े होते हैं। दुनिया में कोई ऑर्गनाइजेशन प्रेम का ऑर्गनाइजेशन नहीं है। हिंदू इकट्ठे होते हैं मुसलमानों के खिलाफ, मुसलमान इकट्ठा है हिंदू के खिलाफ, जैन इकट्ठे हैं किसी और के खिलाफ, कोई और इकट्ठा है किसी
और के खिलाफ--हम हमेशा किसी के विरोध में इकट्ठे हैं। इसलिए दुनिया में
अगर विरोध होता है, हम एकदम इकट्ठे हो जाते हैं।
अभी मैं दिल्ली में था, लोगों ने मुझसे कहा कि पाकिस्तान और भारत के झगड़े के समय सारा हिन्दुस्तान संगठित हो गया। उन्होंने बड़े गौरव से कहा। मैंने उनसे कि ये सब संगठन घृणा क ा है; विरोध और हिंसा का है। जब भी किसी के प्रति

घृणा पैदा हो तुम इकट्ठे हो, और जब घृणा विलीन हो जाए तुम्हारा संगठन विलीन हो जाता है। महाराष्ट्रियन इकट्ठे हो सकते हैं गुजरातियों के खिलाफ, कम्युनिस्ट इकट्ठे हो सकते हैं हिंदुस्तानी के खिलाफ, हिंदुस्तानी इकट्ठे हो सकते हैं पाकिस्तानी के खिलाफ, कम्युनिस्ट इकट्ठे हो सकते हैं पूंजीपतियों के खिलाफ। जहां भी घृणा है, वहीं संगठन इकट्ठा हो जाता है। इसलिए आज मैं संगठन के मैं विरोध में हूं, क्योंकि धर्म का कोई संगठन कैसे हो सकता है? अगर, अगर, अगर धर्म में प्रेम है तो धर्म का कोई संगठन नहीं हो सकता। कोई धार्मिक.ऑर्गनाइजेशन जैसी चीज, सेल्फकंट्राडिक्टरी है। धार्मिक संगठन हो ही नहीं सकता। क्योंकि संगठन का मतलब होगा किसी के खिलाफ इकट्ठे हो गए।
सब संगठन राजनैतिक होते हैं। और इसलिए धर्म के नाम पर खड़े हुए सारे संगठन किसी न किसी रूप में राजनैतिक हो गए हैं। और राजनैतिक ही संगठन हो सकता है; संगठन धार्मिक नहीं हो सकता। प्रेम का कोई संगठन नहीं हो सकता। तो मैं तो न संगठन खड़ा करना चाहता हूं, न कोई संप्रदाय, न कोई पंथ। मैं तो अपनी बात से आपको कह देना चाहता हूं, इसलिए नहीं कि आप उसे रोक लें, केवल इसलिए कि आपके भीतर एक विचार, एक खोज पैदा हो जाए। अगर खोज पैदा हो जाए तो उसके जीवन में बहुत कुछ संभव हो सकता है।

एक प्रश्न पूछा हुआ है कि मनुष्य के भीतर वासनाएं हैं, उनका तो संयम करना ही होगा, व्रत लेने होंगे। तो क्या मेरी दृष्टि में व्रत और संयम का कोई उपयोग है?

नहीं; न तो व्रत का कोई उपयोग है और न संयम का कोई उपयोग है। निश्चित
ही आपको बात थोड़ी परेशान करने वाली लगेगी। क्योंकि हम तो मानते हैं अगर संयम नहीं होगा तो जीवन व्यर्थ है। हम तो मानते हैं कि व्रत नहीं होगा तो जीवन व्यर्थ है। लेकिन मैं आपको कहूं जो संयम किया जाता है, जो व्रत किया जाता है, वह मेरे विचार में झूठा होता है।
एक आदमी हिंसक है, और वह संयम करता है और कोशिश करता है कि मैं अहिंसक
हो जाऊं। एक आदमी क्रोधी है, और वह संयम करता है और व्रत लेता है कि मैं अक्रोधी होऊं। एक आदमी लोभी है, और संयम करने की कोशिश करता है कि मेरा लोभ कम हो जाए। लेकिन आप हैरान होंगे, उसका यह संयम केवल दमन बन जाएगा, केवल सप्रेशन बन जाएगा। उसके भीतर कोई परिवर्तन तो नहीं होगा, वह एक दमित व्यक्ति हो जाएगा।
और दमित व्यक्ति के बड़े खतरे हैं। क्योंकि उसने जिस चीज को दबाया है,
वह हर बार बाहर निकलने की चेष्टा करेगी, चौबीस घंटे बाहर निकलने की चेष्टा करेगी। और उसके विरोध में उसकी विरोधी प्रतिक्रियाएं बाहर निकलनी शुरू हो जाएंगी।
मैं एक जगह गया। एक साधु मेरे पहले वहां कुछ लोगों को समझाते थे। उन्होंने लोगों को समझाया कि अगर तुम्हें स्वर्ग पाना है तो तुम सब तरह के लोभों का त्याग कर दो। अब यह थोड़ी विचारणीय बात है। उन्होंने कहा, अगर तुम्हें स्वर्ग पाना है तो तुम सारे लोभों का त्याग कर दो। मैंने कहा कि इनमें से जो लोभी होंगे, वह स्वर्ग पाने के लोभ से लोभ को त्यागने की कोशिश में लग गए। लेकिन लोभ, लोभ फिर भी भीतर मौजूद रहेगा। आप... यह मत समझ लेना जो आदमी संसार छोड़ कर सन्यासी हो गया, वह लोभी नहीं है। हो सकता है वह आपसे ज्यादा लोभी हो, इसलिए सन्यासी हो गया है। उसका लोभ जो इतने में इतना बड़ा हो गया है, उसकी जो ग्रिप है बहुत गहरी है। वह परमात्मा को भी पाना चाहता है, स्वर्ग को भी पाना चाहता है, मोक्ष को भी पाना चाहता है, सब ही पाना चाहता है।
एक क्षूद्र बुद्धि आदमी परमात्मा को पाने चला है। एक क्षूद्र सी बुद्धि का आदमी मोक्ष पाना चाहता है। आपका लोभ तो संदिग्ध ही मालूम होता है कि धन पाना चाहते हैं, पद पाना चाहते हैं--उसका लोभ बहुत असम्यक है, वह मोक्ष पाना चाहता है। छोटी सी बुद्धि का कैसा अदभुत पागलपन है कि हम

परमात्मा को पाना चाहते हैं। लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं, हमें परमात्मा को पाना है।
यह बहुत गहरे लोभी लोग हैं, उनकी ग्रिप का कोई अंत नहीं है। कोई छोटी- मोटी दुकान पाने से संतुष्ट नहीं हैं, कोई छोटे-मोटे मकान को पाने से संतुष्ट नहीं हैं, ये तो पूरे स्वर्ग का राज्य ही चाहते हैं। लेकिन ये सारे लोग लोभ को छोड़ने में लग जाएंगे, और उनको लगेगा कि हम निर्लोभी हो गए। ये लोग निर्लोभी बिल्कुल नहीं हैं। और यह सत्य है कि इन लोगों ने जो स्वर्ग की कल्पना की है, उसको आप देखें उसमें क्या है? उसमें एक कल्पवृक्ष है, जिसके नीचे बैठ कर जो भी इच्छा होगी उसी वक्त पूरी हो जाएगी। जरूर किसी लोभी ने यह कल्पना की होगी। यह किसी लोभी की कल्पना हो सकती है कि स्वर्ग में कल्पवृक्ष है, उसके नीचे बैठ कर जो जो भी इच्छा कर ले, एकदम पूरी हो जाएगी, देर नहीं लगेगी। आपने इच्छा की और पूरी हो गई।
ये जरूर बहुत अदभुत लोग होंगे, ये कल्पना की होंगी। स्वर्ग की कल्पना में अप्सराएं हैं, अप्सराएं हैं। इनकी जो स्वर्ग की कल्पना है, वहां शराब के चश्में बहते हैं। जो यह कहते हैं कि जमीन पर शराब मत पीओ, वे कहते हैं कि वहां स्वर्ग में शराब के झरने बह रहे हैं--ये लोभियों की कल्पना नहीं तो और क्या हैं? जो कहते हैं यहां स्त्री को देखना मत, वहां सारी क्षूद्र स्त्रियां और अप्सराएं स्वर्ग में नाच रही हैं--उन्हें देखने और पाने के लिए उन्होंने संयम किया है।
यह इनकी दमित कल्पनाएं, दमित वासनाओं का रूपांतरण है। जो अपनी वासनाओं को दबा रहे हैं, वह उन वासनाओं की तृप्ति के विचार कर रहे हैं। स्वप्न देख रहे हैं कि स्वर्ग में अप्सराएं नाचेंगी, शराब के झरने बहेंगे, कल्पवृक्ष होगा। इस आशा में, इस लोभ में बेचारे छोटे-मोटे, छोटे-मोटे सुखों को, छोटी-मोटी तकलीफों को सह रहे हैं, तपश्चर्या कर रहे हैं, नियम ले रहे हैं, व्रत ले रहे हैं--यह सब लोभ का खेल है।
और लोभ का ही दूसरा रूप होता है--दंड। इन्हीं लोभियों ने कल्पना की है
कि नरक में बहुत तकलीफ दी जाएगी, बहुत परेशान किया जाएगा। और क्योंकि हर मुल्क में तकलीफें अलग-अलग होती हैं, इसलिए हर मुल्क के लोगों की नरक की कल्पना भी अलग-अलग हैं। अगर आप तिब्बतियों से पूछें कि नरक में क्या होता है? तो वे कहेंगे: नरक में बहुत ठंड होती है, क्योंकि तिब्बत में ठंड तकलीफ है। अगर हिंदुओं से पूछें कि नरक में क्या होता है, तो वहां अग्नि की लपटें जल रही हैं। क्योंकि हिंदुस्तान में अग्नि तकलीफ है, गर्मी तकलीफ है। अगर हिंदुस्तानियों को कहीं तिब्बतियों के नरक में पहुंचा दिया जाए तो एअर कंडीशन मालूम होगा--वहां बड़ी शीतलता है, बड़ी ठंडक है। अगर तिब्बतियों को हिंदुस्तानियों के नरक में पहुंचा दिया जाए, तो उन्हें स्वर्ग मालूम होगा--वहां आग जल रही है, बड़ी गर्मी, बड़ा... ।
सारी दुनिया में हमारे लोभ ने अनगिनत कल्पनाएं कर ली हैं। और फिर बहुत से लोग इनसे प्रभावित हो जाते हैं, बहुत गहरे तक ---- प्रभावित हो जाते हैं। और इस लोभ के लिए वे उस लोभ को छोड़ने लगते हैं। वे कहते हैं कि वे सही हैं कि उन्होंने घर छोड़ा, क्योंकि बड़ा घर पाने की इच्छा में लगे हैं। और फिर इस तरह के लोग जब दमन करेंगे, अपने भीतर की इच्छाओं को दबा लेंगे, तो इच्छाएं नष्ट नहीं होतीं; दमन करने से कोई इच्छा नष्ट नहीं होती है। दमन करने से कैसे नष्ट होगी?
एक आदमी अपने सेक्स का दमन कर ले, तो नष्ट कैसे हो जाएगा? चौबीस घंटे
वह आदमी सेक्स ही सेक्स के संबंध में सोचने लगेगा। जिन-जिन कौमों में सैक्स के प्रति दमन का भाव है, उन कौमों के लोग चौबीस घंटे सेक्स का ही विचार करते हैं। इस मुल्क में तो यह हुआ है। इस मुल्क के दिमाग भी बड़े सेक्सुअल हैं; जमीन पर और किसी मुल्क के नहीं हो सकते। आप जितना ज्यादा सोचते हैं सेक्स के बाबत, कोई नहीं सोचता। सोचेगा ही नहीं।
आपने एक दमन की आदत पैदा कर ली है। एक बचपन से ही इस आदत को दिमाग में
भर लिया है और उस आदत में इतनी तीव्रता से आप दमन करते चले जाते हैं कि वह इकट्ठा होता चला जाता है। और उसके परिणाम --... होते हैं--आपका व्यक्तित्व विकृत हो जाता है, और टूट जाता है। जरूर मेरी बातें सुन कर ऐसा लगेगा, --...

खुद ही छोड़ दें यह मैं नहीं कर रहा। मेरी बात सुन कर यह लगेगा कि असहनीय हो जाएगी, जो करना है कर लें, ये भी मैं नहीं कह रहा हूं।
मैं ये कह रहा हूं कि संयम लादा नहीं जाता; संयम ज्ञान से आता है। कोई व्यक्ति सेक्स से लड़ कर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होता; बल्कि अगर सेक्स की सारी प्रक्रिया को बोधपूर्वक जान ले, परिचित हो जाए, सेक्स की सारी शक्ति से उसका अंतर्संबंध हो जाए, वह ज्ञान से भर जाए सेक्स के प्रति--तो उसके भीतर ब्रह्मचर्य आना शुरू हो जाएगा।
अगर कोई व्यक्ति अपने क्रोध को जान ले--क्रोध से रिक्त हो जाता है। क्रोध के दमन से कोई क्रोध समाप्त नहीं होता; क्रोध के ज्ञान से क्रोध समाप्त होता है। आप कहेंगे कि हम तो रोज क्रोध को जानते हैं; मुक्त तो नहीं होते। आपने कभी क्रोध जाना ही नहीं होगा। क्योंकि जो आदमी एक दफा क्रोध को जान लेगा, दुबारा क्रोध नहीं कर सकता है।
हां आप क्रोध से गुजरते हैं, लेकिन क्रोध को जानते नहीं हैं। और जानते इसलिए नहीं है कि जब आप क्रोध से गुजरते हैं, तो आप करीब-करीब मूर्छित और बेहोश होते हैं। आपने ध्यान दिया, बड़े से बड़ा क्रोधी क्रोध करने के बाद पछताता है, दुखी होता है, पश्चाताप करता है। सोचता है बहुत बुरा किया, अब नहीं करूंगा।
जरा विचार की बात है। अभी थोड़ी देर पहले इस आदमी ने क्रोध किया, और यही आदमी अब पश्चाताप क्यों कर रहा है? क्या आपको कई बार ऐसा अनुभव नहीं होता कि आपको लगता हो कि मैंने अपने बावजूद क्रोध कर लिए। मैं नहीं चाहता था---- इसका अर्थ है कि क्रोध में आप मूर्च्छित होते हैं, होश में नहीं होते हैं। दुनिया का कोई आदमी होश में रह कर क्रोध नहीं कर सकता। आप जरा कोशिश करिए, जब क्रोध आए तो होश में रहिए और क्रोध करिए, आप पाएंगे कि दो में से एक ही बात हो सकती है--या तो क्रोध हो सकता है या तो होश।
तो मैं क्रोध के दमन को नहीं कहता हूं, मैं कहता हूं क्रोध के बोध को। क्रोध पर संयम मत लाइए, क्रोध को जानिए और परखिए भी। अगर आप क्रोध की पूरी शक्ति से परिचित हो जाएं, तो परिचित होने से ही परिवर्तन और ट्रांसफार्मेशन शुरू हो जाता है। जिस वृत्ति को आप ठीक से जान लेते हैं, उसी वृत्ति के बाहर हो जाएंगे। जिस वृत्ति से आपका परिचय हो जाएगा, आप उसी वृत्ति के मालिक हो जाएंगे। और जिस वृत्ति से आप अपरिचित हैं, जानते ही नहीं--उससे लड़ेंगे।
देखें, अगर मित्र अपरिचित हो, चल सकता है। शत्रु अपरिचित नहीं होना चाहिए। अपरिचित मित्र से कोई नुकसान नहीं होता, लेकिन अपरिचित शत्रु से बहुत नुकसान हो जाता है। शत्रु पूरी तरह परिचित होना चाहिए। विजय का सूत्र है--परिचय। जो परिचित नहीं है, वह हार जाएगा।
आप अपने क्रोध से परिचित हैं? आप अपने सेक्स से परिचित हैं? आप अपने अहंकार से परिचित हैं? आपको अपने लोभ का परिचय है? परिचय तो कुछ भी नहीं है। पागल की तरह लोभ पकड़े हुए हैं, फिर घबड़ा जाते हैं, उपदेश सुनते हैं, फिर पागल की तरह लोभ के खिलाफ खड़े हो जाते हैं।
एक दफा मूर्च्छित लोभ में थे; फिर दूसरी दफा मूर्च्छित अलोभ में हो जाते हैं। एक दफा क्रोध में मूर्च्छित थे; फिर अक्रोध की साधना में मूर्च्छित हो जाते हैं। एक दफा अहंकार में पागल थे; फिर विनय में पागल हो जाते हैं। एक दफा वृत्ति में पागल थे; फिर संन्यास में पागल हो जाते हैं। एक दफा पकड़ने में पागल थे; फिर छोड़ने में पागल हो जाते हैं--लेकिन पागलपन बना ही रहता है।
सवाल अमूर्च्छा का है। जिंदगी प्रत्येक व्यक्ति को सजग रूप में जानने
और पहचानने का है। अगर आप जानने और पहचानने में सफल हो जाएं, तो जीवन में क्रांति हो जाएगी। कैसे उसको जान सकते हैं, उसकी मैं चर्चा कर रहा हूं। उसकी मैं तीन-चार दिनों में मैंने भूमिका बनाई है, कल आपसे बात करूंगा कि कैसे आप अपनी सारी वृत्तियों को जान लें।
मैं संयम के पक्ष में नहीं हूं--क्यों? क्योंकि मैं दमन के पक्ष में नहीं हूं। लेकिन इससे कोई यह न समझे कि मैं संयम का मूल्य नहीं मानता। जो व्यक्ति दमन नहीं करता, जो व्यक्ति जानता है, पहचानता है--वृत्तियों को,

वही व्यक्ति एक अदभुत रूप से संयम को उपलब्ध होता है, वही व्यक्ति संयम को उपलब्ध होता है।
दो तरह के असंयम हैं दुनिया में। एक असंयम है--भोग का, और दूसरा असंयम है--त्याग का। एक असंयम है--गृहस्थी का, दूसरा असंयम है--त्यागी का, संन्यासी का। ये दोनों ही असंयम हैं। ये दोनों ही जीवन... हैं। भोगी भोग में पागल है, त्यागी त्याग में पागल है। एक आदमी स्त्री के पीछे भागा जा रहा है, उसको भी मैं पागल मानता हूं। दूसरा आदमी स्त्री से बच कर भागा जा रहा है, उसको भी मैं पागल मानता हूं। दोनों मानते हैं कि स्त्री में मूल्य है। एक आदमी धन को इकट्ठा करने के पीछे पागल है, एक आदमी धन को छोड़ने के लिए पागल है। ये दोनों ही मानते हैं कि धन की वेल्यू है, धन का मूल्य है। ये दोनों ही असंयमी हैं।
एक साधु के बाबत मुझे लोगों ने कहा कि उनके सामने रुपया-पैसा ले जाएं
तो वह मुंह फेर लेते हैं, आंख बंद कर लेते हैं। तो मैंने कहाः उनको रुपये- पैसे से लगाव होगा, अन्यथा और क्या कारण हो सकता है। रुपये-पैसे से लगाव न हो, तो कोई आदमी रुपये-पैसे से मुंह क्यों फेरेगा? रुपये-पैसे से कोई लगाव होगा।
वहां एक साधु पीछे हुआ। एक गांव में लकड़हारा था, लकड़ियां काटता और बेचता। और सारा जीवन उसी भांति व्यतीत किया। एक बार बहुत वर्षा हुई, बहुत दिन पानी गिरा, इकट्ठा पानी गिरा और वह लकड़ियां नहीं ला पाया। भिक्षा मांगने का उसका नियम नहीं था, पैसा पास नहीं रखता था। जो लकड़ी बिकती थी, उसके जो शाम को पैसा आता था, उससे ही जीवन चलाता था। तो फिर उसने सात दिन बाद जब पानी बंद हुआ वह लकड़ियां काटने गया, उसकी पत्नी भी उसके साथ थी। वे लकड़ियां काट कर लौटे, पति आगे था, पत्नी पीछे थी। रास्ते के किनारे पर, पगडंडी के पास ही एक अशर्फियों से भरी हुई थैली पड़ी हुई थी। वह पति आगे था, पत्नी पीछे थी। पति ने सोचा इस थैली पर मुझे तो कोई मोह नहीं आएगा, क्योंकि तो मैंने तो स्वर्ण पर विजय पा ली है, मैंने तो जीत लिया है सोने को। लेकिन कहीं मेरी पत्नी है, भूखी-प्यासी है, परेशान है, उसका लोभ आ जाए तो व्यर्थ ही पाप लगेगा। इसलिए उसने उसे गड्ढे में डाल दिया और मिट्टी ढंक दी। पीछे से उसकी पत्नी आ पहुंची उसने पूछा, ये क्या कर रहे हैं? सत्य बोलने का उसका नियम था।
स्मरण रखिए, सत्य बोलने का उसका नियम था।
तो उसने... अब सत्य बोलना पड़ा। उसने कहा, इसलिए मैंने यहां रुपये थे, मैंने उसको ढंक दिया कि कहीं तेरा मन उस पर लोभ से न भर जाए। तो वह पत्नी हंसने लगी और आगे बढ़ गई। उसके पति ने पूछा: क्या बात है?
उसने कहा: मैं हैरान हूं, तुम्हें अभी स्वर्ण दिखाई पड़ता है? और मुझे बड़ा दुख भी हुआ कि तुम मिट्टी पर मिट्टी डाल गए! और तुम्हें मिट्टी पर मिट्टी डालते हुए शर्म नहीं आई!
वह आदमी जो सोने पर मिट्टी डाल रहा है, अभी सोने को मानता है। अभी सोने
का उसे स्वीकार है। जो आदमी सोने को छोड़ कर भाग रहा है, वह आदमी सोने को मानता है, सोने से भयभीत है, डरा हुआ है। मैं भागने वालों के पक्ष में नहीं हूं, मैं बदलने वालों के पक्ष में हूं। भागने वाला उसी वृत्ति से पीड़ित होता है, जिस वृत्ति से भोग करने वाला पीड़ित होता है। दोनों की दिशाएं बदल जाती हैं, लेकिन पागलपन नहीं बदलता है। दोनों के अर्थ बिल्कुल विपरीत दिखाई पड़ते हैं, लेकिन दोनों के अर्थ बिल्कुल समान होते हैं और एक ही चीज से बने होते हैं। जीवन बोध से बदलता है, व्रत से नहीं।
व्रत तो बंधन है, और बोध मुक्ति है। और जिसे मुक्त होना हो, वह व्रतों में बंध जाए तो और परेशान हो जाएगा। और बड़ी जो दिक्कत की बात है, वह यह है कि व्रतों में बंधा हुआ व्यक्ति, संयम से बंधा हुआ व्यक्ति, अपने ऊपर नैतिक आचरण को थोप लिया हुआ व्यक्ति--वास्तविक नैतिक जीवन से वंचित हो जाता है। उसके जीवन में कभी वह सहज, स्फूर्त, स्पांटेनियस नैतिकता का कभी जन्म नहीं हो सकेगा। नैतिका का सहज, स्फूर्त जन्म बड़ी दूसरी बात है, उसका ही मूल्य है। आपके भीतर सत्य आना चाहिए, अहिंसा आनी चाहिए, प्रेम आना चाहिए। लेकिन प्रेम, अहिंसा और सत्य आपको थोपने नहीं चाहिए। उन्हें ओढ़ने

नहीं चाहिए, वे कोई वस्त्र नहीं हैं कि आप ओढ़ लें और सत्यवादी हो जाएं।
जीवन में जो भी महत्वपूर्ण हो, भीतर से आना चाहिए।
अगर हम लोगों से कहें कि एक-दूसरे को प्रेम करो, और ऐसा कहा गया, ऐसा कहा गया: अपने पड़ोसी को प्रेम करो, सारे जगत को प्रेम करो।

अभी एक प्रश्न पूछा है, मनुष्यता को प्रेम करो।

कितनी फिजूल की बात! क्या कोई प्रेम करने की बात है? क्या आपने कोशिश
की और पड़ोसी को प्रेम करने लगे! क्या आपने कोशिश की और सारे नगर को प्रेम करने लगे! प्रेम कोई एक्शन है क्या? कि आपके करने से... कि आपने कर लिया।
मेरे मन में आया कि चलो आपको प्रेम कर लिया। प्रेम कोई एक्शन नहीं है, कोई क्रिया नहीं है। ---- है। आपके भीतर की अवस्था है।
एक आदमी प्रेम में होता है, तो जो भी उसके निकट आए उसको प्रेम करेगा। प्रेम का होना पड़ता है, प्रेम किया नहीं जाता, वह कोई क्रिया नहीं है। ऐसे ही सत्य भी कोई क्रिया नहीं है। वह बोला नहीं जाता; सत्य में हुआ जाता है। ऐसे ही अहिंसा कोई क्रिया नहीं है। आपके करने से अहिंसा का कोई संबंध नहीं है; आपके होने से है। आपके भीतर, आपके भीतर एक स्थिति आनी चाहिए। एक सत्य का साक्षात होना चाहिए। उसके माध्यम से आपके हृदय में क्रांति होगी। वैसी क्रांति वास्तविक होगी, कि यह जो क्रांति हमें नैतिक दिखाई पड़ती है?
यह सब दमन की क्रांति है। इसलिए नैतिक मनुष्य, संयमी मनुष्य--बड़ी पीड़ा
और बड़े श्रम और बड़े संघर्ष से होता है। उसके भीतर निरंतर झगड़ा चलता रहता है, उसकी वासनाएं कहती रहती हैं हमको पूरा करो; उसकी बुद्धि कहती है वासनाओं को दबाओ। और अपने भीतर वह निरंतर लड़ता है, जिसके भीतर रोज-रोज कांफ्लिक्ट है, उसका मस्तिष्क लड़ने के कारण रोज-रोज शिथिल होता जाता है। जो अपने भीतर बहुत लड़ता है, उसके मस्तिष्क की ताजगी, स्फूर्ति नष्ट हो जाती है। और सत्य को जानने के लिए मस्तिष्क की स्फूर्ति और ताजगी बहुत जरूरी है। अपने भीतर निरंतर-निरंतर समस्याओं से घिरे हैं--कोई अर्थ नहीं है। और जबरदस्ती अपने ऊपर बातें मत लादो।
अगर अहंकारी अपने ऊपर विनय को लाद लेगा, तो यह अहंकार नष्ट नहीं होगा। वरन, विनय में भी वह आदमी इस अहंकार का मजा लेना शुरू कर देगा। आपको ऐसे लोगों का पता होगा, जो कहेंगे कि हम बिल्कुल विनम्र हैं, हमारे भीतर तो कोई अहंकार नहीं। हम तो कुछ भी नहीं हैं, हम तो आपके पैर की धूल हैं। और जब हम ये सारी बातें कह रहे हैं, तब आप उनके भीतर पाएंगे कि अहंकार मौजूद है--और रस ले रहा है। अहंकारी इस बात का रस ले रहा है कि वह बिल्कुल निर-अहंकारी है। हम तो कुछ भी नहीं हैं, हम तो विनय हैं। यह, इससे, इससे कोई हल नहीं होता। इससे कोई जीवन की समस्या का समाधान नहीं होता।
इसलिए मैं, इसलिए मैं किसी तरह के दमनयुक्त संघर्ष, जबरदस्ती आरोग्य
के पक्ष में नहीं हूं। जीवन में एक विकास होना चाहिए। क्रोध को जानें, परिचित हों, पहचानें। अहंकार से परिचित हों, पहचानें और आप पाएंगे, आपके पहचान करने से ही एक परिवर्तन शुरू हो जाता है। आप क्रोध को जानते-जानते पाएंगे--कि क्रोध गया। आप भय को जानते-जानते पाएंगे--कि भय गया। जहां भी ज्ञान का प्रकाश पड़ेगा चित्त में, वहीं परिवर्तन हो जाएगा।
यहां हम बैठे हुए हैं। यहां अंधकार हो जाए और आप अकेले बैठे हों, आपको बहुत भय मालूम पड़ेगा। फिर यहां प्रकाश जल जाए, भय विलीन हो जाएगा। क्या भय विलीन करना पड़ा, या कि प्रकाश के आने से विलीन हो गया? और एक आदमी इस अंधकार में बैठा रहे कि मैं बिल्कुल भयभीत नहीं होता, मैं किसी से डरता नहीं हूं।
मेरे एक शिक्षक थे। जब मैं पढ़ता था तो मेरे एक शिक्षक थे। या यूं कहूं
कि बहुत भयभीत आदमी थे, उनकी बातों से ये लगता था। वे मुझसे एक दिन बोले: कल रात को, अंधेरी रात को बिल्कुल अकेला चला गया। मैं बिल्कुल डरा नहीं। मैंने कहा: आप बहुत डरपोक आदमी मालूम होते हैं, अन्यथा यह बात ही आप न कहते कि मैं अंधेरी रात में बिल्कुल अकेला चला गया, मैं बिल्कुल डरा नहीं। आप बहुत डरे हुए आदमी मालूम पड़ते हैं।

अगर डर न हो तो यह भी पता नहीं चलेगा कि मैं डरता नहीं हूं। अगर अहंकार
न हो तो यह भी पता न चलेगा कि मैं विनीत हूं। यह विनय तो अहंकार की ही छाया है। अगर लोभ न हो तो यह भी पता नहीं चलेगा कि मैं निर्लोभी हूं। अगर गृहस्थी से चित्त मुक्त हो जाए, तो यह पता ही नहीं चल सकता कि मैं संन्यासी हूं। क्योंकि संन्यासी तो उसी गृहस्थी का रिएक्शन है। वह तो उसी की प्रतिक्रिया है, उसी की प्रतिछाया है। जो सच में संन्यासी होते हैं उन्हें कभी पता नहीं चलता कि वे संन्यासी हैं, ये पता ही नहीं चल सकता। जो सच में सत्य को उपलब्ध हो जाता है, उसे पता ही नहीं चलता कि मैं सत्य बोलता हूं। जिसको पता चलता है कि मैं सत्य बोलता हूं, उसके भीतर झूठ अवश्य ही उठ रहा होगा। वैसे यह खोज कैसे होगी कि वह असत्य बोल रहा है, सत्य बोल रहा है। जिसका हृदय प्रेम से भर जाता है, उसे कभी पता नहीं चलता कि मैं प्रेम करता हूं। क्योंकि प्रेम का पता चलने के लिए भीतर घृणा होनी जरूरी है। अप्रेम होना जरूरी है।
तो मैं जो कह रहा हूं, दमन करने वाले आदमी को हमेशा पता चलेगा--मैं विनीत हूं, मैं लोभी नहीं हूं, मैं साधु हूं, मैं ऐसा हूं, मैं वैसा हूं। क्योंकि दूसरी चीजें उसके भीतर सब मौजूद हैं। और उनके विरोध में वह कुछ हो रहा है। अपने भीतर ही जो विरोध में है, वह टूट जाएगा। अगर मैं अपने दोनों हाथों को लड़ाऊं, तो इन दोनों हाथों में कौन जीत सकता है? कोई भी नहीं जीतेगा। लेकिन उनके लड़ाने से मेरी शक्ति जरूर व्यय हो जाएगी। जब आप क्रोध से लड़ रहे हैं तो किससे लड़ रहे हैं? कौन लड़ रहा है?
आपकी ही शक्ति दो हिस्सों में बंट कर लड़ रही है--क्रोध की तरफ से भी, और अक्रोध की तरफ से भी। आप ही अपने दोनों हाथों को लड़ा रहे हैं। जब आप अपने सेक्स से लड़ रहे हैं तो कौन लड़ रहा है? आप ही लड़ रहे हैं दोनों तरफ से-- अकेले आप ही। बिल्कुल पागलपन है ये।
अभी मैं ट्रेन में था। और एक, एक सज्जन अकेले थे। मेरे साथ थे वे मेरे डब्बे में। उन्होंने बहुत मुझसे कोशिश की कि बातचीत करें, ---- आंख बंद देख कर उन्होंने अपने ताश के पत्ते निकाले और अकेले ही खेलना शुरू कर दिए। खुद ही दोनों तरफ से खेल रहे थे। अब यह आदमी --... ये पागल है। इसमें कोई जीत-हार हो ही नहीं सकती। और हो भी जाए, तो इसका कोई मतलब नहीं है।
लेकिन दुनिया में ऐसे लोग हैं जो खुद ही पत्ते बिछाए दोनों तरफ से खेल रहे हैं। क्रोध की तरफ से भी वही खड़े हैं; अक्रोध की तरफ से भी वही खड़े हैं। वासना की तरफ से भी वही खड़े हैं; वासना के विरोध में भी वही खड़े हैं। और जो आदमी अपने भीतर दो ---- से लड़ता है, वह आदमी पागल हो जाएगा। उसके, उसके जीवन में सारा आनंद, सारा सौंदर्य नष्ट हो जाएगा। सारा सौंदर्य, सारा आनंद तो संगीत से पैदा हो जाएगा --... ।
इसलिए मैं कहूं, आपको किसी वासना से लड़ना नहीं है। वासना को जानना, पहचानना, परिचित होना। और परिचित होने से, ज्ञान का प्रकाश फैलने से आप पाएंगे कि आपके भीतर प्राण ---- हो गए। कैसे प्रस्तुत होंगे, उस पर हम विचार करेंगे।

जीवन में जो कर्तव्य होते हैं उन्हें हम कैसे पूरा करें?

अगर मेरी बातों को आप ठीक से समझेंगे तो आपको जानना चाहिए कि मैं कर्तव्य के पक्ष में कैसे हो सकता हूं? मैं प्रेम के पक्ष में हूं; कर्तव्य के पक्ष में नहीं हूं। जहां प्रेम नहीं होता वहां कर्तव्य का विचार पैदा होता है? जब आप कहते हैं अपने पिता के प्रति कर्तव्य को कैसे पूरा करूं? उसका अर्थ है पिता के प्रति आपके मन में प्रेम नहीं है। अगर मैं पूछूं कि अपनी मां के प्रति कर्तव्य को कैसे पूरा करूं? इसका अर्थ है: मेरे मन में मां के प्रति प्रेम नहीं है। प्रेम के अभाव से ड्यूटी का खयाल, कर्तव्य का खयाल आता है। और जिसके मन में प्रेम होता है, उसे ड्यूटी का कभी भी खयाल नहीं आता। प्रेम की कमी है, इसलिए मां के ----आप कर्तव्य करें। मैं कहूंगा: प्रेम को पूरा करें, प्रेम को बढ़ाएं। कर्तव्य की फिकर छोड़ दें, कर्तव्य तो अपने आप पूरा हो जाएगा।

मैं कल ही एक कहानी कह रहा था। एक भारतीय संन्यासी थे, वे वहां अफ्रीका में थे। फिर वह भारत यात्रा पर आए और हिमालय पर गए। हिमालय पर जिस दिन चढ़ाई गई दोपहर को बहुत धूप थी, वह अपने छोटे के बिस्तर को बांधे हुए पहाड़ पर चढ़ते थे। और अचानक उन्होंने देखा कि सामने एक पहाड़ी लड़की, दस-ग्यारह वर्ष उसकी उम्र होगी, वह भी पहाड़ पर चढ़ रही है। पसीने से लतपथ है, थक गई है, उसकी श्वास बढ़ गई है, कंधे पर अपने भाई को बांधे हुए है। भाई की उम्र कोई छोटी --... । लड़की छोटी सी, संन्यासी ने सोचा कि इस लड़की को कितनी परेशानी हुई होगी। वह खुद भी तो अपने बोझ से परेशान था, अपने बिस्तर से परेशान था। उसके करीब जब पहुंचा, तो उस संन्यासी ने कहा उस लड़की को कि बेटा, बहुत वजन तुझे मालूम पड़ रहा है। उस लड़की ने संन्यासी की तरफ आंख उठा कर देखा और उसने कहा: स्वामी जी, वजन आप लिए हुए हैं यह तो मेरा छोटा भाई है।
छोटे भाई में और वजन में फर्क है। ---- तराजू पर तौलने में कोई फर्क नहीं पड़ता। तराजू पर बिस्तर में भी वजन होगा, छोटे भाई में भी वजन होगा। यह भी हो सकता है कि बिस्तर ही कम वजन का हो, और छोटा भाई ज्यादा वजन का हो। तो तराजू बता देगा कि वजन किसमें ज्यादा है या कितना है? लेकिन हृदय के कांटे पर छोटे भाई में कोई वजन नहीं है; और बिस्तर में वजन है। प्रेम के कांटे पर चीजें बदल जाती हैं।
जब भी हम पूछते हैं कि कर्तव्य कैसे पूरा करें, तब इस बात की सूचना है
कि आपके हृदय में प्रेम नहीं है। एक पति पूछता है कि अपनी पत्नी के प्रति कर्तव्य कैसे पूरा करूं? यह क्या बेवकूफी की, बेहूदगी की बात है! इसका मतलब है: प्रेम नहीं है तो आप कर्तव्य का विचार कर रहे हैं। और कर्तव्य हमेशा बोझ होगा। प्रेम बोझ नहीं है; प्रेम आनंद है।
जब दुनिया में प्रेम की कमी पड़ जाती है तो कर्तव्य को सिखाने वाले टीचर्स, उपदेशक पैदा होते हैं। वे कहते हैं: यह कर्तव्य करो, वह कर्तव्य करो, यह कर्तव्य करो, वह कर्तव्य करो। ऐसा करो, वैसा मत करो। जब दुनिया में प्रेम कम हो जाता है तो कर्तव्य की चर्चा शुरू होती है। कर्तव्य बड़ी पतित स्थिति है। प्रेम ही का सवाल है।
यह मत पूछिए कि मैं, मैं, मैं कर्तव्य कैसे करूं? यह समझें जब कर्तव्य
का खयाल आ गया है, तो पहचान लें कि आपके हृदय में प्रेम की कमी पड़ रही है। आपके भीतर प्रेम नहीं है। प्रेम को जगाने का, प्रेम को उठाने का, भीतर प्रेम के स्रोत को खोलने का विचार करें। अगर वह विचार नहीं.करने वाला, और कर्तव्य का विचार करें, तो हर कर्तव्य आपको परेशान करता जाएगा। हर कर्तव्य में आप इतने परेशान और बेचैन हो जाएंगे। क्योंकि आपका करने का मन तो नहीं होगा, और करना पड़ रहा है। और जहां भी मन के विपरीत करना पड़े, वहीं जीवन बोझ हो जाता है।
करीब-करीब हम सबका जीवन बोझ इसीलिए है कि हम कर्तव्य ढो रहे हैं। प्रेम के समझौते का सवाल नहीं है, कर्तव्य का बोध हमारे दिल में भरा हुआ है। हम कोई प्रेम की यात्रा नहीं कर रहे हैं। और यही कर्तव्य का बोध जब बहुत घबरा देता है तो आदमी सोचता है छोड़ो सब ये कर्तव्य--संन्यासी हो जाओ, साधु हो जाओ। वह प्रेम को तो नहीं सोचता, साधु और संन्यासी होने की सोचता है। जब कर्तव्य बहुत घबड़ा देता है, तो यह पत्नी और बच्चे, सब असार हैं, ये सब बोझ हैं--इनको हटाओ।
ये बोझ नहीं हैं, महानुभाव! आपके भीतर प्रेम की कमी है इसलिए ये बोझ हैं। इनका कोई भार नहीं है, आपके हृदय में प्रेम का कांटा ही नहीं है इसलिए ये भारी पड़ते हैं। यह पूरा संसार भी प्रेमी के लिए भारी नहीं है, और अप्रेमी के लिए जरा सा बोझ भी भारी हो जाता है। आप भाग सकते हैं दुनिया से लेकिन बोझ से मुक्त नहीं होंगे। क्योंकि अपने इस एटिट्यूट को कहां ले जाएंगे? तब आप परमात्मा के प्रति भी कर्तव्य करेंगे--ड्यूटी! वहां भी प्रेम नहीं है। सुबह रोज भजन कर रहे हैं, छह बजे करना चाहिए, कर्तव्य है इसलिए कर रहे हैं। वह भी बोझ हो जाएगा। और रोज रामायण पढ़ रहे हैं वह भी बोझ हो जाएगा, क्योंकि ठीक वक्त पढ़नी है।

मेरे एक मित्र हैं, वे रोज नियमित पूजा करते हैं। वे मेरे घर मेहमान थे। ठीक वक्त से जरा देर होने लगी, उन्होंने कहा: जल्दी चल कर पूजा करनी चाहिए, नहीं तो कर्तव्य से चित्त हो जाएंगे। मैंने कहा: आप चित्त हो गए। कोई प्रार्थना और प्रेम भी समय को देख कर किए जाते हैं? कि ठीक छह बज गए हैं, अब मुझे प्रेम करना चाहिए। कि ठीक छह बज गए हैं, अब मुझे प्रार्थना करनी चाहिए, नहीं तो कर्तव्य से चित्त हो जाएंगे।
ये सब हमारी अत्यंत ही ----, हृदयहीन चित्त की दशा है। उसका यह सारा का सारा परिणाम है। लेकिन परमात्मा इस सारे संसार के बोझ को तो ढोता ही होगा-- अगर है कहीं। उसको यह बोझ नहीं हुआ, अभी तक उसने संन्यास नहीं लिया!
ये आपको पता है, परमात्मा ने अभी तक संन्यास नहीं लिया? अगर परमात्मा संन्यास ले ले, संसार समाप्त हो जाएगा। लेकिन आप... संन्यास लेते हैं। परमात्मा अगर कहीं होगा तब वह प्रेम से भरा होगा। उसका हृदय पूरा का पूरा प्रेम होगा--इसलिए झेलता है, आनंद से झेलता है। उसने झेलना भी नहीं है, सहना भी नहीं है, उसका आनंद यह है। लेकिन हम, हम भाग खड़े होते हैं। अगर आपके भीतर प्रेम हो तो सब बदल जाएगा।
गांधी कोई उन्नीस सौ पैंतीस या छत्तीस में कभी श्रीलंका गए। उनके साथ कस्तूरबा भी गईं। और वहां शंकरी और महादेव के नाम से कोई होगा। लेकिन उनको भूल हुई और वे लोगों ने नहीं बता पाए कि कस्तूरबा गांधी की कौन हैं? "बा"-- बापू भी उनको कहते। गांधी जी कहते, उनको बा कहते थे। तो वहां के लोगों ने समझा कि गांधी की मां हैं। जिस आदमी ने परिचय दिया उनका सभा में, उसने कहा: गांधी तो आए ही हैं बड़ी खुशी की बात, उनकी मां भी उनके साथ आई हैं।
महादेव बहुत घबड़ा गए होंगे, भूल उनकी थी, उनको बताना चाहिए था कि साथ में कौन हैं? बापू क्या कहेंगे? बहुत डांटेंगे, तुमने यह क्या पागलपन करवाया? पत्नी को मेरी मां कहलवा दिया।
लेकिन गांधी बोलने खड़े हुए। उन्होंने कहा कि एक भाई ने भूल से एक सच्ची बात कही। कोई कुछ वर्षों से, कुछ वर्षों के पहले बा मेरी पत्नी थीं, कुछ वर्षों से बा मेरी मां हो गई हैं।
जब प्रेम गहरा होगा तो पत्नी को छोड़ कर नहीं भागेंगे--पत्नी मां हो जाएगी। जब प्रेम बहुत गहरा होगा तो पत्नी को छोड़ कर नहीं भागेंगे--पत्नी मां हो जाएगी। जब प्रेम बहुत गहरा होगा, प्रार्थना बहुत सच्ची होगी, मकान को छोड़ कर नहीं भागेंगे--मकान मंदिर हो जाएगा। और हो जाना चाहिए।
अन्यथा आदमी भाग-दौड़ करता रहता है और आप मंदिर में भी घुसेंगे, और आप वहां घुसते हैं तो मंदिर मकान हो जाते हैं। तो फिर मंदिर क्या करेगा? सवाल तो भीतर हृदय का है, सवाल तो भीतर हृदय का है। आपके सब मंदिर मकान हैं; क्योंकि आपके हृदय में प्रार्थना नहीं है, प्रेम नहीं है। और ऐसे लोग भी जमीन पर हुए हैं, और होते हैं जिनका कोई मंदिर नहीं है। लेकिन जिनके हृदय में प्रेम है; जहां बैठते हैं वहीं मंदिर बन जाता है।
सवाल तो प्रेम का है। लेकिन आप पूछते हैं--कर्तव्य? बिल्कुल मत पूछें। कर्तव्य न पूछें, और अगर कर्तव्य का खयाल आता हो तो पहचान लें कि प्रेम की कमी है भीतर। कर्तव्य का खयाल प्रेम के न होने की सूचना से ज्यादा नहीं है। फिर कर्तव्य को थोपें नहीं; पहचान जाएंगे बीमारी भीतर है, प्रेम नहीं है। फिर प्रेम को जगाने के लिए कुछ करने की बात नहीं।
प्रेम जगता है, प्रेम मनुष्य का स्वभाव है--इसलिए। प्रेम मनुष्य का स्वभाव है, ऐसा प्राणी खोजना कठिन है। मनुष्य क्या, प्राणी भी--जो प्रेम न करता हो, ऐसा कोई प्राणी खोजना कठिन है--जो प्रेम न करता हो। और जब हम प्रेम चाहते हैं, तो क्यों चाहते हैं? कहीं हमारे प्राणों के प्राण में कहीं कोई प्यास है--प्रेम की। कहीं प्रेम की बड़ी गहरी-गहरी आकांक्षा है।
और गहरी से गहरी आकांक्षा वही हो सकती है जो हमारा स्वरूप है, जो अंततः हम हैं। प्रेम हमारा स्वरूप है, इसलिए प्रेम की आकांक्षा है। प्रेम हमारे बहुत गहरे में हमारा स्वरूप है। इसलिए हम प्रेम मांगते हैं और प्रेम देना चाहते हैं। घर से भी जो भाग जाते हैं, संसार को भी जो छोड़ देते हैं, वे भी परमात्मा से प्रेम करते हैं और परमात्मा से प्रेम मांगते हैं।

प्रेम से भागा हुआ मनुष्य आज तक कहीं देखा नहीं गया है। सब कहीं से भाग जाए, लेकिन प्रेम से नहीं भागता।
मीरा अपने पति को छोड़ कर भाग गई होगी, तो कृष्ण को पति कहने लगी--प्रेम
की आकांक्षा नहीं गई। महावीर ने अपना घर छोड़ दिया होगा, जिनको वे प्रेम करते थे, उनको छोड़ दिया। फिर जितने लोग उनको मिले सबको प्रेम किया और... अहिंसा। बुद्ध ने अपनी पत्नी को छोड़ दिया होगा, प्रेम से भागे होंगे। लेकिन जब जीवन में ज्ञान का उदय हुआ तो सारे जगत में उनकी करुणा और उनके प्रेम की भांति दिया।
सवाल हमेशा प्रेम का है। और प्रेम से कभी कोई भाग ही नहीं सकता। यह प्रेम मनुष्य के बहुत गहरे स्वरूप का हिस्सा है। अगर हम अपने भीतर प्रवेश करें, अगर हम अपनी गहराइयों में जाएं--तो हमारे भीतर प्रेम के झरने फूटने शुरू हो जाएंगे। इसलिए ज्ञानी का लक्षण प्रेम है; अज्ञानी का लक्षण अप्रेम है। और अगर कभी कोई ज्ञानी आपको प्रेम शून्य दिखाई पड़ता है; समझना ये जड़ है, उसको कोई ज्ञान उत्पन्न नहीं हुए।
ज्ञानी का लक्षण प्रेम है। फिर चाहे उसे अहिंसा कहें, सत्य कहें, कुछ
और कहें, लेकिन ज्ञान जब आता है तो प्रेम उसके साथ ही आ जाता है। ज्ञान भीतर फलित होता है; प्रेम चारों तरफ बाहर फैल जाता है। तो मैं आपको कर्तव्य की बात नहीं कह सकता, मैं तो यह कह सकता हूं कि आपके भीतर प्रेम कैसे पैदा हो? अगर आप स्वयं को जानने में समर्थ हो जाएं--तो प्रेम पैदा होगा, और प्रेम ही सब कुछ है। प्रेम ही कर्तव्य है, प्रेम ही पुण्य है, और प्रेम ही धर्म है।
ऑगस्टीन हुआ, एक साधु हुआ। ---- उसने पाप करने बंद कर दिए। आप मुझे लिखित आज्ञा दे दें, मैं वे-वे पाप बंद कर दूं। और मैं कौन-कौन से पुण्य करूं, वह भी आप लिखित आज्ञा दे दें, मैं वे ही, वे ही पुण्य करना शुरू कर दूंगा। ऑगस्टीन ने कहा कि तुम जरा सात दिन बाद आओ, क्योंकि सात दिन में मुझे सोचना पड़ेगा कि कितने पाप मनुष्य कर सकता है, कितने पुण्य कर सकता है। अगर कहीं एकाध होती... बात छूट गए उस लिस्ट में से, तो जिम्मा मेरे ऊपर होता है कि तुमने तो लिस्ट ही छोड़ दिए, कि सारे पाप बता दो कि ये नहीं करना चाहिए--नहीं करूंगा।
सात दिन बाद वह आदमी लौटा ऑगस्टीन ने कहा: बड़ा कठिन काम है। पाप तो अनगिनत हैं। मैं गिनती करके बता दूंगा, जो शेष रह जाएंगे, उनका क्या होगा? पुण्य भी अनगिनत हैं। मैं गिनती करके बता दूंगा, तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाऊंगा।
उस आदमी ने कहा: मैं क्या करूं? मैं तो पूछने तैयार हूं। कोई भी बता
दे कि कितने पाप छोड़ देने हैं, और कितने पुण्य करने हैं--करूंगा।
ऑगस्टीन ने कहा कि तू सात दिन और कृपा कर ले, जरा और सोच लूं। सात दिन बाद फिर आया तो आँगस्टीन ने कहा: मैं तो बहुत घबड़ा गया, लेकिन फिर एक मुझे खयाल आ गया--तू प्रेम कर। उससे कहा कि बस इतना ही काफी है कि--तू प्रेम कर। जो तेरे प्रेम के विरोध हो जाए समझना कि पाप है, और जो तेरे प्रेम के पक्ष में पड़ जाए, समझ लेना पुण्य है। लिस्ट नहीं बनाई जा सकती।
तो वस्तुतः कोई कर्तव्य नहीं है, कोई अकर्तव्य नहीं है। प्रेम कर्तव्य है, और अप्रेम अकर्तव्य है। अगर प्रेम है तो आप जो भी करेंगे--वह ठीक होगा, और अगर प्रेम नहीं है तो आप जो भी करेंगे--वह गलत होगा। अपने भीतर टटोल लेना और देखना कि प्रेम है या नहीं। अगर प्रेम नहीं है जो भी आप कर रहे हैं, गलत है; और अगर प्रेम है तो जो भी आप कर रहे हैं, वह सत्य है।
इसी संबंध में एक बात और पूछी है। पूछा है, कि सारी दुनिया में इस वक्त इतनी दरिद्रता है, इतनी परेशानी है और ये धार्मिक लोग मंदिर में बैठ कर पूजा-प्रार्थना करते हैं? ये सब ----की शिक्षाएं हैं, खास कर इस मुल्क में तो उससे न कोई सेवा करता है, न कोई दरिद्रता को मिटाने की कोशिश करता है। ठीक पूछा है। बिल्कुल ही ठीक बात है। अगर ये प्रार्थनाएं सच्ची हों
तो उन्हें ---- होनी चाहिए। अगर प्रेम सच्चा हो, अगर धर्म भीतर हो, तो सेवा में बदलनी चाहिए।

जापान में एक भिक्षु था। उसने सबसे पहले बुद्ध के वचनों को जापान में अनुवादित करवाया। बहुत बड़ा काम था, बुद्ध के सारे ग्रंथों का जापानी में अनुवाद--बहुत बड़ा काम था। वह फकीर तो भिखमंगा था। उसके पास तो एक पैसा नहीं था। बहुत बड़े-बड़े स्कॉलर और बड़े-बड़े पंडित, कहा लाकर अनुवाद करता हूं। बहुत हजारों रुपये का खर्च। उस फकीर ने गांव-गांव घूम कर रुपये इकट्ठे किए। दस हजार रुपया दस साल में वह इकट्ठा कर पाया। तभी जब रुपये इकट्ठे हुए, तो उसके क्षेत्र में अकाल पड़ गया। उसने सारा रुपया अकाल में लगा दिया। फिर वह गांव-गांव घूमा, दस साल फिर बीते, फिर उसने दस हजार रुपये इकट्ठे किए। तब ये वहां भूकंप आ गया और उसने फिर दस हजार रुपये भूकंप में लगा दिए। तब वह सत्तर वर्ष का हो चुका था। ------ फिर वह गांव-गांव निकला। लोगों ने कहा: तुम अजीब पागल हो, बार-बार आ जाते हो।
उसने कहा: दो एडीशन तो निकल गए भगवान की वाणी से, एक और निकालनी है। उसने कहा: दो एडीशन, दो संस्करण भगवान की वाणी से निकल गए, अब एक और निकालनी है। और श्रेष्ठ तो निकल चुके हैं, जो पता है अश्रेष्ठ है--उसको भी निकालने हैं। फिर उसने दस हजार रुपये इकट्ठे किए। जब वह नब्बे वर्ष का हुआ, तब कहीं वह रुपया काम में लग पाया। कुछ ग्रंथ प्रकाशित हुए।
जब लोगों ने उससे कहा कि तुम प्रसन्न हो अपने काम पर?
उसने कहा कि जो दो पहले निकल चुके हैं, उनका कोई मुकाबला नहीं। ये सब ठीक है, ये भी ठीक है।
ये, ये आदमी धार्मिक आदमी है। धार्मिक आदमी परमात्मा को पहले रखे, और मनुष्य को पीछे रखे; ये हो ही नहीं सकता। धार्मिक आदमी मनुष्य को, पीड़ित मनुष्य को परमात्मा के हमेशा आगे और ऊपर रखेगा। एक दफा परमात्मा को छोड़ने को राजी हो जाएगा, दुखी और पीड़ित मनुष्य को नहीं। क्योंकि उसकी निकटता में भी, उसकी प्रार्थना में भी, उसके प्रेम में भी, उसकी सेवा में भी--उसी-उस का दर्शन होगा जो सत्य की तरह छिपा है।

क्रूर होना... यह क्रूर मन है जिनमें कि मुल्क भूखा मरता हो और वह यज्ञ में पैसा बर्बाद करते हों। ये सब... होंगे कि मुल्क भूखा मरता हो और वे बैठ कर किसी प्रतिमा और रामायण की प्रतियां छाप-छाप कर करोड़ों रुपये खर्च करते हों, उन लोगों में बांटते हों। ये क्रूर वाइलेंस है, हिंसक मन हो सकते हैं। मनुष्य भूखा मरते हो, और मंदिरों में धन इकट्ठा होता हो, और वहां संगमरमर के महल खड़े हों। मनुष्य मरता हो और भगवान की सेवा हो रही हो, ये वाइलेंस माइंड, हिंसक मन का लक्षण है। ये कोई धार्मिक मन का लक्षण नहीं है।

यह ठीक पूछा है, यह होना चाहिए, धार्मिक जीवन का लक्षण सेवा होनी चाहिए।
लेकिन इससे कोई ये न समझ लें, ये जो मुल्क में तथाकथित सेवक हैं, इनके मैं विपक्ष में हूं। ये जो तथाकथित सेवक हैं, ये कहते हैं हम सेवा करना चाहते हैं--इनके मैं कोई पक्ष में नहीं हूं। क्योंकि मैं मानता हूं अगर भीतर ज्ञान न हो, सेवा का नाम तो शोषण ही होगा। सेवा के नाम से भी दंभ का ही पोषण होगा। सेवक भी कुछ दिखने और होने की कोशिश में सेवा करेगा। सेवा साधन होगी, उपलब्धि से अहंकार की तृप्ति भी होगी। भीतर ज्ञान हो तो ही जीवन में सेवा होगी; और नहीं तो सेवा झूठी होगी। सेवा का तो कोई मूल्य नहीं रह जाएगा।
सेवा का तनिक फायदा हुआ है? सारी दुनिया में एक हिसाब है--क्या करना
है ध्यान से, क्या करना है प्रेम से, क्या करना है प्रार्थना से--सेवा करो। ठीक है, सेवा जरूर होनी चाहिए, लेकिन सेवा निकलनी चाहिए। जैसा मैंने कहा, कर्तव्य निकलना चाहिए, सेवा निकलनी चाहिए।
जब कोई व्यक्ति भीतर प्रेम से भर जाता है तो उसका उठना, उसका बैठना, उसका श्वास लेना भी सेवा हो जाता है। और जब कोई व्यक्ति भीतर ज्ञान और प्रेम से भरा हुआ नहीं होता, तो वह चाहे सेवा भी करे, उसका उठना-बैठना, उसका श्वास लेना सब विषाक्त होता है। सबसे वह पॉइ.जनिंग फेंकता है विचारों पर।

असल में जो हमारे भीतर नहीं है, उसे हम बाहर दे कैसे सकते हैं? बाहर देने के लिए भीतर होना चाहिए। अगर हम कुएं में बाल्टियां डालें, उसमें पानी ही न हो, तो बाल्टियां खाली वापस लौट आएंगी। जो कुएं में है वही बाहर आ सकता है। जो मेरे भीतर है वही मेरे रिएक्शन्स में, मेरी क्रियाओं में बाहर आ सकता है। भीतर अगर प्रेम नहीं है तो बाहर सेवा कैसे आएगी? बाहर सेवा नहीं आ सकती।
तो मैं सेवा के पक्ष में हूं, लेकिन उस सेवा के नहीं जो प्रचलित है। उस सेवा के पक्ष में हूं जो प्रेम से पैदा हो, प्रेम से निष्पंद हो, जो प्रार्थना से आए, जो ध्यान से आए, जो आत्म-जागरण से आए--वही सेवा सच्ची हो सकती है।
इसलिए मनुष्य का सबसे बड़ा सेवक वही होता है, जो सबसे पहले अपनी सेवा में पूरा होता है। इसलिए वही व्यक्ति केवल परार्थ कर सकता है जो कम से कम इतना स्वार्थ साध ले, कि स्वयं को जान ले। जो स्वयं को जानने के स्वार्थ को भी पूरा नहीं किया है, उसके परार्थ की सब बातें बकवास होंगी। उनसे दुनिया में लाभ कम हानि ज्यादा होगी।
और दुनिया में अगर ये दुनिया का सुधार करने वाले सेवक, दुनिया को बदलने वाले लोग, समाज में क्रांति लाने वाले लोग कम हों, तो दुनिया में उपद्रव कम हो जाएं। इन सारे लोगों ने बहुत उपद्रव फैला रखा है। ये जो हिताकांक्षी है, ये जो कुशल-क्षेम चाहने वाले लोग हैं; ये उपद्रव की बहुत गहरी जड़ हैं। सबसे बड़ी बात है कि व्यक्ति अपने को बदले, उसकी बदलाहट से उसके आस-पास क्रांति और परिवर्तन शुरू होंगे।
जब कोई फूल खिलता है तो गंध बिखरती है। और जब कोई दीया जलता है तो प्रकाश फैलता है। कोई प्रकाश फैलाने के लिए दीये को जाना नहीं पड़ता। और न फूल को गंध फैलाने के लिए किसी की सेवा करनी पड़ती है। गंध... बहुत गंध फैलती है, और फैलना सेवा हो जाता है। अगर आपके भीतर प्रेम है, तो आप जो भी करेंगे-- वही सेवा है। आपसे जो भी होगा, वही सेवा है। और प्रेम से निस्पंद सेवा ही प्रार्थना है। वही परमात्मा के निकटतम पहुंचने का मार्ग है।

पूछा है, अंतिम दो प्रश्नों पर और बात कर लेता हूं, प्रश्न तो बहुत हैं, ---- लेकिन मेरी दृष्टि अगर आपको खयाल में आ जाए, तो आप मान ले सकते हैं कि मैंने उनका भी उत्तर दिया है जिनका कि उत्तर नहीं दे रहा हूं। मेरी दृष्टि आपके खयाल में आ जाए तो उनके उत्तर भी आप विचार कर सक ते हैं कि मैं क्या कहना चाहता हूं। पूछा हैः सत्य क्या है? और कैसे जाना जा सकता है? उसका अनुभव क्या है? सत्य ईश्वर है क्या? या ईश्वर सत्य है?

जब भी पूछते हैं कि सत्य क्या है, तो ऐसा खयाल होता है हम सत्य से अलग हैं, और सत्य हमसे अलग। हम जानने वाले हैं, और सत्य जानी जाने वाली चीज है। जब भी हम पूछते हैं, सत्य क्या है? तो हम ऐसे ही पूछते हैं--फर्नीचर क्या है, मकान क्या है, दुकान क्या है? हम अलग हैं और ये चीजें अलग हैं।
सत्य इस तरह की बात नहीं है कि आप उससे अलग हैं। अब आप सत्य से अलग नहीं, सत्य से एक ही हैं। इसलिए सत्य को दूर खड़े होकर नहीं देखा जा सकता। और इसलिए सत्य को डिफाइन करना भी मुश्किल है। सत्य की परिभाषा इसलिए नहीं हो पाती कि उसे हम दूर खड़े होकर देखते हैं। जब हम सत्य को जानने का सब्र खोते हैं, तब दो नहीं होते वहां, जानने वाला और वह जाना गया--ऐसा कुछ अलग नहीं होता, एक ही रह जाता है, जानना ही रह जाता है।
सत्य कोई ऑब्जेक्ट नहीं है। कोई ऐसी चीज नहीं है कि उसे हमने देखा और जाना। सत्य आपसे अलग नहीं है, आपसे पृथक नहीं है--आप सत्य ही हो। आप स्वयं ही अपनी... में सत्य हो। तो सत्य को आप जान नहीं सकोगे, क्योंकि जानने के लिए दूरी कहां होती है, पर्स्पेक्टिव कहां होता है, फासला कहां होता है? हम उसे जान सकते हैं जो हमसे दूर है। और यही तो दिक्कत है हम संसार को बिल्कुल मजे से जान रहे हैं; और सत्य को नहीं जान रहे हैं। सत्य को नहीं जान रहे इसीलिए कि सत्य को ऑब्जेक्ट, वस्तु नहीं बनाया जा सकता। उसे दृश्य नहीं बनाया जा सकता। आप खुद ही वही हैं।

तो सत्य को जानने का अर्थ होगाः जब आपका सब जानना बंद हो जाए, आप कुछ
भी न जान रहे हों। क्योंकि जब तक आप कुछ भी जान रहे हैं, तब तक कोई न कोई चीज मौजूद रहेगी जिसको आप जान रहे हैं। और जब तक कोई चीज मौजूद रहेगी, तब तक आप अपने को नहीं जान सकेंगे। सत्य को जानने का अर्थ हुआ, जब आप कुछ भी नहीं जान रहे हैं। जब बाहर जानने को कुछ भी शेष नहीं रह गया, बाहर सब खाली है, हम शून्य हैं बाहर, और कुछ भी जानने को शेष नहीं है, कोई ऑब्जेक्ट नहीं है। उस घड़ी आपके भीतर जो शेष रह गए--आप, उसका आपको बोध होगा, स्मरण होगा। एक स्मृति जगेगी कि हम कौन हैं? और वही स्मृति सत्य है। वही बोध सत्य है।
मैं सदा एक कहानी कहता हूं, मुझे प्रीतिकर रही है। कुछ बात उससे शायद साफ हो।
एक साधु हुआ। वह एक पहाड़ी के किनारे चुपचाप खड़ा है। बहुत देर से तीन मित्र वहां घूमने निकले हैं, वे देख रहे हैं कि वहां खड़ा है। और उन्होंने सोचा कि वह आदमी वहां क्या करता होगा? एक ने कहा कि मुझे ऐसा मालूम होता है उसके पास एक गाय है, वह कभी-कभी खो जाती है। वह ऊपर पहाड़ी पर जाकर ढूंढता है कि गाय कहां है? शायद वह गाय खोजने के लिए आज फिर गाय हो। शायद आज फिर गाय खो गई है।
दूसरे मित्र ने कहाः उसे देख कर ऐसा नहीं लगता। वह तो आंख भी नहीं घुमा कर देखता है कहीं कि कुछ खोजता हो। उसकी आंखों से खोज का पता नहीं चलता। वह ऐसा मालूम पड़ता है कोई मित्र साथ घूमने गया होगा, वह पीछे छूट गया है। वह रुक कर उसकी प्रतीक्षा कर रहा है, वह आ जाए तो आगे बढ़े।
तीसरे ने कहाः उसे देख कर ऐसा भी नहीं लगता कि वह प्रतीक्षा में है। क्योंकि वह पीछे लौट कर एक दफा भी नहीं देखता। जो प्रतीक्षा में होता है वह पीछे लौट-लौट कर देखता है कि शायद कोई आ न जाए, शायद अब करीब आ गया हो। वह प्रतीक्षा में नहीं मालूम होता है। मुझे तो ऐसा लगता है कि वह परमात्मा के ध्यान में है, परमात्मा की प्रार्थना में है।
वे तीनों मित्र नहीं कर सके तो उसके पास गए। और उन्होंने कहा, अच्छा
हो हम उसी से पूछ लें कि तुम ये क्या कर रहे हो? उन्होंने जाकर उससे पूछा कि महानुभव! आप यहां खड़े हुए क्या कर रहे हैं? उस पहले आदमी ने कहा: क्या आपकी गाय खो गई है?
उसने कहा: कैसी गाय, किसकी गाय? उस आदमी ने कहा: कैसी गाय, किसकी गाय? कौन खोजने वाला, कौन खोजे जाने वाला? मैं कुछ नहीं खोज रहा।
दूसरे आदमी ने कहा: ठीक है, मैंने पहले ही कहा था। क्या आप किसी मित्र
की प्रतीक्षा कर रहे हैं?
उसने कहा: कैसा मित्र, कैसा शत्रु? कैसी प्रतीक्षा? कौन प्रतीक्षा करेगा? मैं किसी की प्रतीक्षा नहीं कर रहा हूं।
तीसरे आदमी ने कहा: मैंने पहले ही कहा था कि दोनों बातें गलत हैं। निश्चित ही अब तीसरी बात सही है। आप ईश्वर की प्रार्थना, ईश्वर का ध्यान कर रहे हैं।
उसने कहा: कैसा ईश्वर? कैसी प्रार्थना? कैसा ध्यान? मैं कुछ भी नहीं करता। मैं तो बस खड़ा हूं, जस्ट स्टेंडिंग। कुछ भी नहीं कर रहा, मैं तो बस खड़ा हूं।
जरा कल्पना करें। अब यह तो कल्पना ही कर सकते हैं, एक आदमी कि जो बस खड़ा है और कुछ भी नहीं कर रहा है, जिसके मन में कुछ भी नहीं हो, न कोई खोज है, न कोई प्रतीक्षा है, न कोई ध्यान है, न कोई प्रार्थना--वह तो बस मौन खड़ा है। जिसकी मन की ज्योति बिल्कुल ठहर गई हो, जिसके भीतर कोई कंपन नहीं है, कोई टहल नहीं है--ऐसी मनोस्थिति में भाव-दशा है, उसमें जो जाना जाता है--वह सत्य है। ऐसे मनुष्य की जो भाव-दशा है, उसमें जो जाना जाता है--वही ईश्वर है।
सत्य और ईश्वर दो शब्द नहीं हैं। सत्य और ईश्वर दो चीजें नहीं हैं, कहने के दो ढंग हैं। आत्मा कहें, कुछ और कहें, कुछ और कहें, कोई कहने से फर्क नहीं पड़ता। क्या आप नाम देते हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन उस क्षण जो जाना जाता है, वही जानने योग्य है। वही है, जो जाना जाए। और उस एक के जान लेने से, उस शांत निस्पंद की दशा को, उस एक को पहचान लेने से, वह जो

शेष रह जाता है उससे परिचित हो जाने पर--सब ज्ञान के द्वार खुल जाते हैं, सारा अज्ञान खिसक लेता है।
तो सत्य क्या है? यह नहीं कहा जा सकता। सत्य कैसे जाना जा सकता है? यह जरूर कहा जा सकता है।
एक अंधा आदमी पूछे, प्रकाश क्या है? क्या कहिएगा? यह तो नहीं कहा जा सकता है कि प्रकाश क्या है? लेकिन यह कहा जा सकता है कि आंखें कैसे खोली जा सकती हैं? अगर आप आंख बंद किए खड़े हों बाहर, और मुझसे पूछें, प्रकाश क्या है? तो मैं क्या कहूंगा? मैं कहूंगा कि यह थोड़े ही कहा जा सकता कि प्रकाश क्या है? लेकिन यह बताया जा सकता है कि आंखें कैसे खोली जा सकती हैं।
और आंख खुल जाए, तो जो अनुभव में आता है--वह प्रकाश है। चित्त खुल जाए
तो जो अनुभव आता है--वह प्रकाश है, वह सत्य है, वह ईश्वर है। इसलिए जो ईश्वर की परिभाषा करते हैं; वे एक गलत धारणा में हैं। ईश्वर की परिभाषा करने वाले लोग ईश्वर को नहीं जानते हैं। जो बता देते हैं कि ईश्वर क्या है? वे पंडित हैं, शास्त्रों को पढ़ने वाले हैं, लेकिन ईश्वर को जानने वाले नहीं हैं।
ईश्वर कोई वस्तु नहीं है कि इशारा कर दिया कि ये हैं। जिस चीज की तरफ
भी इशारा किया जा सके, वह कुछ भी हो, ईश्वर नहीं होगा। और जिस चीज की भी परिभाषा की जा सके, वह कुछ भी हो ईश्वर नहीं होगा। और जिस चीज को भी शब्द दिए जा सकें, वह कुछ भी हो ईश्वर नहीं होगा। ईश्वर को कुछ भी कहना संभव नहीं है। क्योंकि जब हम जानते हैं, तो हम उसे अलग नहीं जानते हैं--अपने ही होने में, अपनी ही सत्ता में, अपनी ही ऑथेंटिक एक्झिसटेंस में हम उसे एक ---- हैं।
एक, रामकृष्ण एक बात कहा करते थे, वह मैं आपसे कहूं।
रामकृष्ण कहा करते थे, एक बार ऐसा हुआ एक समुद्र के किनारे बहुत बड़ा मेला था। समुद्र था गहरा, अथाह था पानी। बहुत थी भीड़, मेले में बहुत थे लोग। वे सब समुद्र के किनारे गए, उसमें कुछ ग्रामीणजन भी थे। उन्होंने सोचा, ये समुद्र कितना गहरा होगा? कोई पता लगाए? और तभी वहां घूमता हुआ उस मेले में एक नमक का पुतला भी आ गया। और उसने कहा: पता लगाना है, मैं कूदा जाता हूं। अभी पता लगा जाएगा। वह नमक का पुतला उस समुद्र में कूद गया, सारा मेला वहां इकट्ठा हो गया। एक आदमी समुद्र का पता लगाने गया था। लेकिन वह पुतला कभी लौटा नहीं। क्योंकि नमक का पुतला था, वह समुद्र का पता लगाने गया, पिघल कर समुद्र के साथ एक हो गया। उसने कोई लौट कर खबर नहीं दी कि समुद्र कितना गहरा था और क्या था?
जिन लोगों ने ईश्वर को खोजने की कोशिश की है, वे नमक के पुतले सिद्ध हुए हैं। और ईश्वर समुद्र से भी गहरा है। वे जब उसमें गए तो पाया कि वे ही पिघल कर विलीन हो गए हैं, लौट कर खबर देने को कुछ नहीं रहता। इसलिए आज तक ईश्वर के संबंध में जो भी कहा गया है--वह असत्य है। और जो नहीं कहा गया है-- वही सत्य है। जो भी परिभाषा की गई है वह व्यर्थ है, दो कौड़ी की है। और जो अपरिभाषित छूट गया है, इंडिफाइन्डेबल जो छूट गया है--वही सत्य है, उसका ही मूल्य है।
मैं कोई परिभाषा नहीं करता, न की जा सकती है। और अगर कभी कोई करे, तो संदिग्ध हो जाना, सचेत हो जाना कि बात गड़बड़ है--यह पुतला शायद फिर अभी पानी में उतरा नहीं है--परिभाषा आसान। जब उतरेंगे गहरे, तब पानी की कोई परिभाषा नहीं है, खुद का ही मिट जाना है। जहां आप बिल्कुल मिट जाएं, और आपका कुछ भी शेष न रह जाए--समझना कि ईश्वर का मकान आ गया। जहां आप बिल्कुल मिट जाएं, और आपका कुछ भी शेष न रह जाए, आपका नमक का पुतला बिल्कुल पिघल जाए और खोजे से भी न मिले--समझना सागर की गहराई आ गई।
तो क्या मुझे यह कहने की आज्ञा देंगे, जहां आप बिल्कुल मिट जाते हैं-- वहीं ईश्वर है। और क्या मुझे कहने की आज्ञा देंगे कि जहां आप मिट जाते हैं--वहीं आपका वास्तविक होना है। जो मिटता है, वह पा लेता है; जो खो देता है, प्रभु को वह उपलब्ध हो जाता है।
जैसा मैं निरंतर कहता हूं, उस बात को कहूं और चर्चा को पूरी करूं। बूंद जब सागर में अपने को खो देती है तो सागर हो जाती है। और उसका सागर हो

जाना ही उसका आंतरिक सत्य है। क्योंकि हर बूंद अपनी आंतरिक गहराई में सागर ही है। हर सत्ता अपनी आंतरिक गहराई में ईश्वर है, सत्य है। और जब हम अपनी इन परिस्थिति बोध को छोड़ देंगे, उसे जानने में समर्थ हो जाएंगे।

मेरी इन बातों को प्रेम से सुना है उसके लिए बहुत अनुग्रहीत हूं।
सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

धर्म की यात्रा
दूसरा प्रवचन

व्यक्ति की महिमा को लौटाना है

मेरा सौभाग्य है कि थोड़ी सी बातें आपसे कह सकूंगा। विचार जैसी कोई बात देने को मेरे पास नहीं है। और विचार का मैं कोई मूल्य भी नहीं मानता। वरन विचार के कारण ही मनुष्य पीड़ित है और दुखी। आपके मन पर इतने विचार इकट्ठे हैं, आपकी चेतना इतने विचारों से दबी है और पीड़ित है और परेशान है कि मैं भी उसमें थोड़े से विचार जोड़ दूं तो आपका भार और बढ़ जाएगा, उस भार से आपको मुक्ति नहीं होगी। इसलिए विचार कोई आपको देना नहीं चाहता हूं। वरन आकांक्षा तो यही है कि किसी भांति आपके सारे विचार छीन लूं।
अगर आपके सारे विचार छीने जा सकें तो आपमें ज्ञान का जन्म हो जाएगा।
यह जान कर आपको आश्चर्य होगा कि विचार अज्ञान का लक्षण है, विचार ज्ञान का लक्षण नहीं है। एक अंधे आदमी को इस भवन के बाहर जाना हो तो वह विचार करेगा कि दरवाजा कहां है? और जिसके पास आंखें हैं वह विचार नहीं करता कि दरवाजा कहां है? दरवाजा उसे दिखाई पड़ता है। दरवाजे का दिखाई पड़ना एक बात है और दरवाजें के संबंध में विचार करना दूसरी बात है। केवल वे ही विचार करते हैं जिन्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ता है। केवल अंधे ही प्रकाश के संबंध में विचार करते हैं, जिनके पास आंखें हैं वे प्रकाश का दर्शन करते हैं।
विचार और दर्शन विरोधी घटनाएं हैं। इसलिए जब कोई कहता है महावीर बड़े विचारक थे, तो मैं मन में हंसता हूं; इससे झूठी और कोई बात नहीं हो सकती। जब कोई कहता है बुद्ध बहुत बड़े विचारक थे, तो मुझे आश्चर्य होता है; इससे असत्य और कोई बात नहीं हो सकती। महावीर, बुद्ध हो कृष्ण, या क्राइस्ट-- विचारक बिल्कुल भी नहीं थे, उन्हें दिखाई पड़ रहा था। और जिन्हें दिखाई पड़ता है वे सोचते नहीं हैं। न दिखाई पड़ने के कारण सोचने के माध्यम से हम अपना काम चला लेते हैं। अंधे सोच-सोच कर रास्ते खोजते हैं, और जिन्हें दिखाई पड़ता है वे सोचते नहीं, रास्ते उन्हें दिखाई पड़ते हैं।
इसलिए मैंने कहा: विचार कोई सत्य तक या धर्म तक ले जाने वाली बात नहीं है। विचार के माध्यम से कोई कभी सत्य तक नहीं पहुंचा है। इसलिए मैं भी कुछ विचार आपको दूं, उनका कोई उपयोग नहीं होगा। लेकिन फिर मुझसे पूछा जा सकता है और जगह-जगह मुझसे पूछा जाता है, तब फिर मैं क्या बोल रहा हूं, क्यों बोल रहा हूं? अभी पीछे मैंने कल ही कहीं कहा: पूछा गया कि फिर मैं क्या बोल रहा हूं? अगर मैं विचार नहीं देना चाहता हूं और विचार छीनना चाहता हूं तो मैं क्यों बोल रहा हूं? क्योंकि बोलने में तो विचार ही प्रकट होंगे।
तो मैंने उनसे कहा: जैसे कोई कांटा लग जाए तो हम दूसरे कांटे से उसे निकाल लेते हैं लेकिन इस कारण दूसरे कांटे का कोई मूल्य नहीं हो जाता, पहले कांटें को निकाल लेते हैं दूसरे को भी फेंक देते हैं। मैं जिन विचारों की भी चर्चा कर रहा हूं उनका भी उपयोग इतना ही है कि आपके विचारों के लगे हुए कांटों को अगर मेरे विचार के कांटें निकाल कर बाहर कर दें, तो ये विचार भी फें क देने जैसे हो जाएंगे। इनका भी कोई मूल्य नहीं रह जाता। आप निर्विचार हो सकें तो आपके भीतर ज्ञान का जन्म होगा। ज्ञान मनुष्य की चेतना का स्वरूप है, ज्ञान की ज्योति प्रत्येक के भीतर जल रही है। ज्ञान कोई ऐसी बात नहीं कि उसे कहीं कोई उधार पाएगा और कहीं खोजेगा तब मिलेगी, ज्ञान की ज्योति प्रत्येक के भीतर जल रही है। वह प्रत्येक का जीवन है। लेकिन बाहर से आये हुए विचार उसे इतना ढक लेते हैं, उस ज्योति पर बाहर के विचारों का इतना धुआं और बादल इकट्ठे हो जाते हैं कि उस ज्योति का दर्शन हमें बंद हो जाता है।
मनुष्य को ज्ञान उपलब्ध नहीं करना है, अपने ही भीतर आविष्कार करना है। जैसे कुएं के भीतर से पानी निकाला जाता है। कंकड़-पत्थर को, मिट्टी को, जमीन की पर्तों को हम खोद कर अलग कर देते हैं और क्रमशः जैसे-जैसे पत्थर और मिट्टी अलग होने लगते हैं, नीचे के जलस्रोत स्वतंत्र हो जाते हैं, मुक्त हो जाते हैं, और प्रकट हो जाते हैं। कुएं में पानी आता नहीं कहीं से। जब हमें कुएं का पता भी न था, जब कुआं नहीं भी बना था, तब भी मौजूद था। तब भी

नीचे अंतःधारा उस जलस्रोत की बहती थीं। ऊपर परतें थीं, उन्हें हमने हटा दिया, जल स्रोत प्रकट हो गए।
ज्ञान भी ऐसे ही प्रकट होता है, उसे कहीं से लाना नहीं होता। अपने भीतर कुछ परतों को हम तोड़ दें, कुछ भूमि को अलग कर दें तो भीतर ज्ञान के स्रोत प्रवाहित हैं, वे प्रकट हो जाएंगे। ज्ञान अविष्कृत होता है, उपलब्ध नहीं। उसे पाया नहीं जाता, उसे अपने भीतर खोदा जाता है। एक हौज भी होती है जिसमें हम ऊपर से पानी भर देते हैं। एक कुआं होता है जिसमें हम नीचे से पानी निकालते हैं। विचार हौज में भरे हुए पानी की तरह है, वे दूसरे लोग आप में डाल देते हैं, उन्हें कभी बहुत मूल्य मत देना। वे कोई असली पानी के स्रोत नहीं हैं, पानी का धोखा है।
और हर मनुष्य के मस्तिष्क में बहुत से विचार चारों तरफ से इकट्ठे हो जाते हैं, उनमें वह बंद हो जाता है, उनमें आवृत हो जाता है। और जितने ज्यादा विचार इकट्ठे हो जाते हैं, उतनी ही उसकी ज्ञान की शिखा मध्यम मालूम होने लगती है। इतने ज्यादा विचार इकट्ठे हो सकते हैं कि ज्ञान की शिखा के दर्शन बंद हो जाएं, यह मनुष्य के अज्ञान की अवस्था होगी। इतने विचार चेतना को पकड़ लें कि चेतना की ज्योति दब जाए, यह अज्ञान की अवस्था होगी। इतना व्यक्ति विचारों को अलग करके फेंक दे कि निर्विचार हो जाए, कि उसके ऊपर विचारों का कोई धुआं न हो, उसकी ज्योति अपनी शुद्ध शिखा में जलने लगे--यह ज्ञान की दशा होगी।
विचारों से ज्ञान उपलब्ध नहीं होता, विचार की शून्यता में ज्ञान का जन्म होता है। और ज्ञान को कहीं बाहर नहीं खोजना होता, ज्ञान को अपने भीतर अविष्कृत करना होता है। लेकिन हम सारे लोग ज्ञान को बाहर खोजते हैं, हम आशा करते हैं किसी और से ज्ञान से मिल जाएगा। हम आशा करते हैं कोई तीर्थंकर, कोई बुद्धपुरुष, कोई ईश्वर का अवतार हमें ज्ञान दे देगा। इस जगत में कोई भी किसी को ज्ञान नहीं दे सकता। ज्ञान हस्तांतरणीय नहीं है। उसे कोई दूसरे को दे नहीं सकता। इस जगत में केवल वस्तुएं ली और दी जा सकती हैं। जो भी आत्मिक है उसे लेने-देने का कोई उपाय नहीं होता। जो भी खरीदा जा सकता है, लिया जा सकता है, दिया जा सकता है--वह सब संसार का हिस्सा है। जो न खरीदा जा सकता है, न लिया जा सकता है, न दिया जा सकता, न जिसकी भेंट हो सकती, न जिसे चोरी किया जा सकता, न जिसकी भिक्षा मांगी जा सकती, जिसे एक हाथ से दूसरे हाथ में देने का कोई उपाय नहीं है--वही केवल आत्मिक है।
दो तरह की संपदाएं हैं, दो तरह की संपत्तियां हैं। एक सम्पत्ति है जो हाथों से हाथों में जाती है। वैसी संपत्ति का नाम भौतिक संपत्ति है। और एक ऐसी संपत्ति है जो एक हाथ से दूसरे हाथ में नहीं जाती, जिसका एक हाथ से दूसरे हाथ में जाने का कोई उपाय नहीं है, वैसी संपत्ति आत्मिक संपत्ति है। दो ही तरह के लोग भी हैं जगत में, जो ऐसी संपत्ति को खोजते हैं, जो दूसरों से ली जा सके, वे स्मरण रखें कि जो संपत्ति दूसरों से ली जा सकती है वह संपत्ति आज नहीं कल दूसरों से छीन ली जाएगी। जो दूसरों से पाई गई है वह दूसरों के पास वापस लौट जाएगी। केवल वही निज के पास रहेगा जो किसी से नहीं पाया गया और निज में ही आविष्कार किया गया। जो खुद में ही पाया गया है। स्वयं में ही पाया गया है, जो स्वयं का ही है, जो उसका स्वरूप का है वही उसके साथ होगा, उसे मृत्यु भी नहीं छीन सकेगी। उसे कोई नहीं छीन सकता। वैसी संपदा को ही वास्तविक संपदा कहनी चाहिए। शेष सारी संपदाएं धोखा हैं, भ्रम हैं। विचार की संपत्ति भी आपको दूसरों से मिली है।
आप अपने भीतर देखें, अपने विचारों को खोजें, तो पता चलेगा उनमें एक भी विचार आपका नहीं है। शायद ही कभी आपने यह ख्याल किया हो, कभी अपने मन की परतों को उघाड़ें, मन को नग्न करें, उसके कपड़ों को हटा दें और भीतर देखें कि कोई विचार आपका है? कोई एकाध विचार भी आप अपना नहीं खोज सकते हैं। सारे विचार उधार कहीं से आये हुए, किसी से प्राप्त किए हुए मालूम पड़ेंगे। जिस मनुष्य का एक भी विचार अपना नहीं है, उसके दारिद्रय का, उसके अज्ञान का ठिकाना कहां!
महावीर के होंगे, बुद्ध के होंगे, कृष्ण के होंगे--आपके नहीं होंगे।
और जो आपका नहीं है, वह कभी आपका नहीं है इसे स्मरण करें। इसे समझें। सब

विचार पराए हैं, इसलिए कोई विचार ज्ञान नहीं बन सकता है। ज्ञान स्वयं का होगा। जो भी पर से आया है उसे छोड़ देने को मैं कहता हूं। जो भी दूसरे से आया है उसको आधार बनाने को मैं नहीं कहता, उसे आलंबन बनाने को मैं नहीं कहता, दूसरों के पैरों से नहीं चला जा सकता, दूसरों की आंखों से नहीं देखा जा सकता, दूसरों का विचार ज्ञान भी नहीं बन सकता है।
तो विचार मात्र अज्ञान है, और अज्ञान का कारण है। सारा आज्ञान दूसरों
के विचार पर खड़ा हुआ है। इसे जो तिलांजली देने में समर्थ हो जाता है, इसे जो त्याग करने में समर्थ हो जाता है... वस्त्र छोड़ कर नग्न हो जाना आसान है; विचारों के वस्त्र छोड़ कर नग्न हो जाना बहुत कठिन है। संपत्ति छोड़ कर दरिद्र हो जाना आसान है; विचार की संपदा छोड़ कर दरिद्र हो जाना बहुत कठिन है। लेकिन जो विचार के वस्त्रों को छोड़ कर नग्न हो जाते हैं, लेकिन जो विचार की संपदा को छोड़ कर दरिद्र हो जाते हैं, उन्हें परम संपदा उपलब्ध हो जाती है। वे परम संपदा के अधिकारी और हकदार हो जाते हैं।
वास्तविक त्याग और संन्यास वस्तुओं का नहीं है, वास्तविक त्याग और सन्यास विचारों का है। थोड़ी देर को सोचें अगर सारे विचार आपने छोड़ दिये-- क्या होगा? अगर एक व्यक्ति सारे विचारों को छोड़ कर मौन हो रहा--तो क्या होगा? कोई भी विचार नहीं पकड़ता है, सारे विचारों को त्याग कर दिया, तब क्या होगा? क्या व्यक्ति मिट जाएगा? क्या व्यक्ति विचारों के जोड़ का नाम है? क्या विचार नहीं होंगे तो व्यक्ति की मृत्यु हो जाएगी?
विचार नहीं होंगे तो व्यक्ति की मृत्यु होने का कोई कारण नहीं, व्यक्ति कोई विचारों का जोड़ मात्र नहीं। जब विचार सब शून्य हो जाएंगे, तब भी व्यक्ति होगा। तब व्यक्ति कैसा होगा? तब उस व्यक्ति की अनुभूति क्या होगी? उस निर्विचार दशा में जिस चेतना का अनुभव होता है, उस चेतना को ही हमने आत्मा कहा है। उस निर्विचार दशा में जिस प्रकाश का आलोक का दर्शन होता है, उसे ही हमने आत्मज्ञान कहा है, उस निर्विचार दशा का नाम ध्यान है। विचार एक दिशा है। विचार से कोई पंडित हो सकता है, प्रज्ञा को उपलब्ध नहीं। ध्यान एक दशा है, ध्यान एक दिशा है। ध्यान से कोई विचार को उपलब्ध नहीं होता, लेकिन प्रज्ञा को और ज्ञान को उपलब्ध होता है। इस समय सारी दुनिया और सारी मनुष्य-जाति विचार से पीड़ित है। विचार बढ़ते चले जाते हैं, विचार निरंतर बढ़ते चले जाते हैं। आज हमारे पास इतने विचार हैं जितने अतीत समय में कभी भी नहीं थे। आज इतने ग्रंथ हैं, इतने शास्त्र हैं, इतने ग्रंथालय हैं, इतने अध्यापक हैं, इतने गुरु हैं, इतना... सारी दुनिया में विचारों का कोलाहल है। लेकिन ज्ञान कहां है? विचार रोज बढ़ते चले जाते हैं, उसी मात्रा में मनुष्य का अज्ञान भी बढ़ता चला जाता है। यह आश्चर्यजनक है, विचार बढ़ रहे हैं और अज्ञान बढ़ रहा है। विचार अति होते जा रहे हैं, और अज्ञान भी अति होता जा रहा है। सारी दुनिया की शिक्षण संस्थाएं, सारी दुनिया के विश्वविद्यालय विचार की शिक्षा दे रहे हैं और विचार की शिक्षा अज्ञान को घनीभूत कर रही है।
विचार की शिक्षा से ज्ञान विकसित नहीं हो रहा, विचार की शिक्षा से मनुष्य के भीतर कोई क्रांति नहीं हो रही; विचार की शिक्षा से मनुष्य का मस्तिष्क तो भर जाता है, अंतःकरण खाली रह जाता है। ऐसी स्थिति में विचार बहुत हैं और विचारशीलता बिल्कुल नहीं है। क्योंकि विचारशीलता ज्ञान से आती है, विचार से नहीं आती। विवेक बिल्कुल नहीं है और विचार बहुत हैं।
तो मैं विचार के पक्ष में नहीं हूं, और न विचार देने के पक्ष में हूं।
यह सबसे पहले आपको कहूं, मैं विचार को छोड़ देने के पक्ष में हूं। मैं इस पक्ष में हूं कि मनुष्य के भीतर उस दशा का अनुभव हो सके जहां कोई विचार नहीं होता और मात्र चेतना की ज्योति शेष रह जाती है, उस अनुभूति के बाद ही वास्तविक मनुष्य का जन्म होता है। उस अनुभूति के पहले आप ठीक अर्थों में मनुष्य नहीं हैं, उस अनुभूति के पहले आप ठीक अर्थों में जीवित भी नहीं हैं। उस अनुभूति के पहले आपको ऐसे जीवित समझना चाहिए--जो करीब-करीब मृत हैं।

बुद्ध के जीवन में एक घटना घटी। एक वृद्ध पुरुष उनके पास आया। मैंने
जब पहली दफा सुना था, मैं हैरान हुआ! एक वृद्ध पुरुष उनके पास आया। बुद्ध ने उससे पूछा तुम्हारी उम्र कितनी है?
उस वृद्ध पुरुष ने बुद्ध के चरणों में सिर रखा और कहा: मुझे क्षमा करें, मेरी उम्र केवल चार वर्ष है।
बुद्ध ने कहा: क्या कहते हो! उम्र केवल चार वर्ष!
उस वृद्ध पुरुष ने कहा: शेष जीवन में जीवित नहीं था। जब तक मैंने स्वयं को नहीं जाना था उसको जीवन में गणना करना व्यर्थ ही मालूम होता है। वे दिन स्वप्न में, रात्रि में, निद्रा में व्यतीत हुए। वे जीवन के क्षण मृत्यु में गए। जीवित मैं चार वर्षों से हुआ हूं, जब से स्वयं को जाना तब से मैं अपने जीवन की गणना करता हूं।
बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा: सुनो, आज से सारे भिक्षुओं की उम्र की गणना उस दिन से हो, जिस दिन से उनको समाधि उपलब्ध हो जाए, उसके पहले उम्र की गणना करनी ठीक नहीं। तब से बौद्ध भिक्षुओं की उम्र की गणना तब से होती है जब से उन्हें समाधि उपलब्ध हो। यह बात अर्थपूर्ण है। यह बात समझने की है। आपका वह समय जीवन में नहीं बीता... आप रात जब सोये होते हैं।
अगर एक आदमी पूरा जीवन सो कर व्यतीत कर दे और मृत्यु के समय जगाया जाए
और हम उससे पूछें कि तुम्हारा कोई जीवन था। और वह कहे कि मैं पचास वर्ष जीवित रहा, क्योंकि मैं पचास वर्ष सोता था। तो हम क्या कहेंगे?
हम कहेंगे: वह जीवन तो मृतक का जीवन था। तुम जीए ही नहीं। जो उस आदमी
के बाबत सत्य होगा, जो कि पूरे जीवन सोया रहा; वह हमारे बाबत भी सत्य है। जो अपने को नहीं जानते, वे सोई हुई हालत से भिन्न अवस्था में नहीं हैं।
हम सारे सोए हुए लोग हैं। हम सोये हुए उठे हैं, सोए हुए चल रहे हैं। हम
सब निद्रा में टटोलने वाले लोग, और दुनिया में सारा संकट इसीलिए है कि सारे सोए हुए लोग अंधेरे में टटोल रहे हैं। उनके जीवन में अत्यंत कलह और संघर्ष, युद्ध पैदा हो जाते हैं। सोए हुए लोग हों तो दुनिया में युद्ध होंगे ही। सोए हुए लोग हों तो एक-दूसरे से टकराएंगे ही।
एक रात का मुझे स्मरण आया, एक अंधा आदमी एक घर से विदा होता था। उस घर
के लोगों ने कहाः रात अंधेरी है, हम एक दीया दिए देते हैं तुम इसे ले जाओ। वह अंधा आदमी हंसने लगा और उसने कहा: कैसे पागलपन की बात! मेरे पास तो आंखे नहीं हैं। अगर मैं दीये को भी ले गया तो उससे क्या होगा? मुझे तो कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ेगा। मेरे लिए तो अंधेरा और प्रकाश बराबर हैं क्योंकि मेरे पास आंखें नहीं हैं।
फिर भी घर के लोगों ने कहा: यह तो सच है कि तुम्हें तो कोई अंतर नहीं पड़ेगा। लेकिन तुम्हारे हाथ में दीया देख कर कम से कम इतना होगा कि कोई दूसरा आदमी अंधेरे में तुम से न टकरा जाए। कम से कम वह देख सके कि तुम आ रहे हो इसलिए टक्कर से बच जाओगे।
उसने कहा: यह तो ठीक है। यह दलील उचित थी। वह अंधा आदमी दीये को हाथ में लेकर मार्ग पर गया। यह पहली दफा ही हुआ होगा।
क्योंकि कौन अंधा आदमी प्रकाश को लेकर जाता है। प्रकाश अंधे के लिए कोई अर्थ नहीं रखता। लेकिन जो दलील दी गई थी वह ठीक थी, कि कोई अंधेरे में दूसरा आदमी तुमसे न टकराए इसलिए प्रकाश सहयोगी होगा।
लेकिन अंधा थोड़ी दूर ही गया था कि कोई उससे टकरा गया। वह बड़ा हैरान हुआ! उसने कहा: मित्र, क्या कोई दूसरे अंधे से मिलना हो गया? क्योंकि मैं हाथ में प्रकाश लिए हूं, वह दिखाई नहीं पड़ता?
उस दूसरे व्यक्ति ने कहाः तुम्हारे हाथ का प्रकाश मालूम होता है बुझ गया, तुम्हारे हाथ का प्रकाश मालूम होता बुझ गया है। अंधेरे में तुम मुझे दिखाई नहीं पड़े।
एक अंधा आदमी प्रकाश लेकर भी जाए तो भी किसी उपयोग का नहीं है। जब तक आंखें न हों टक्कर से बचना मुश्किल है। क्योंकि प्रकाश कब बुझ जाएगा, हवा के झौंके कब उसे मिटा देंगे, क्या विश्वास? सारी दुनिया में जो टक्कर है, जो संघर्ष है, जो द्वंद्व है--वह करोड़-करोड़ अंधे लोगों का, सोये हुए लोगों का है जो कि निकल भी नहीं पाते घर से कि टकरा जाते हैं, जो कि वाणी भी नहीं

बोल पाते कि टकरा जाते हैं, जो कि आचरण में एक कदम नहीं रख पाते हैं कि टकरा जाते हैं, जो जो कुछ भी करते हैं, किसी न किसी से टक्कर हो जाती है। अंधे और सोये हुए लोगों की दुनिया सतत टकराहट की, सतत संघर्ष की दुनिया होगी, इसमें आश्चर्य क्या है! और यह उसके पीछे कारण है, हम सारे लोग सोये हुए हैं!
जन्म के साथ जागरण नहीं आता है, न ही जन्म के साथ जीवन आता है। और जो लोग जन्म को जीवन समझ लेते हैं, वे बड़ी भूल में पड़ जाते हैं। फिर उन्हें मृत्यु को अंत समझना पड़ता है। न तो जीवन की शुरुआत जन्म में है और न जीवन का अंत मृत्यु में है। जन्म का अंत मृत्यु में हो जाता है। जीवन तो जन्म के पहले है और मृत्यु के बाद भी है। इसलिए जो लोग जन्म को जीवन समझ रहे हों, वे भूल में हैं। और उनकी भूल का उनको फल चुकाना होगा, उनको मृत्यु को अंत समझना होगा। और तब मृत्यु उन्हें पीड़ा देगी और दुख देगी और घबड़ाहट देगी। जीवन को जानना तभी संभव हो पाता है: जब हम अपने भीतर उस चैतन्य ज्योति
को परिचित हो जाएं जो हमारे प्राणों का प्राण है, जब हम अपने हृदय के भीतर उस आत्यंतिक बिंदु से परिचित हो जाएं जो कि हमारा वास्तविक होना है, जो कि हमारा ऑथेंटिक बींइग है; जो कि हमारी असली सत्ता है; जो कि हमारी आत्मा है। उससे परिचित होकर ही आपको पहली दफा उस जीवन का पता चलता है जो कि वास्तविक है, उससे परिचित होकर ही आप पहली दफा जागते हैं, उससे परिचित होकर ही आपकी नींद टूटती है। और आपकी नींद टूट जाए तो आपका सारा जीवन बदल जाता है। महावीर ने कहा हैः मूर्च्छा ही पाप है, सोया हुआ होना ही पाप है; और जाग जाना धर्म है, जाग जाना पुण्य है। अमूर्च्छित चेतना में प्रतिष्ठित हो जाना धर्म है। अदभुत वचन हैं! उन्होंने कहा है: विवेक ही धर्म है। यह बड़ा क्रांतिकारी सूत्र है--विवेक ही धर्म है। जाग जाना ही धर्म है। आश्चर्यजनक परिभाषा है। ईश्वर का इसमें उल्लेख नहीं, स्वर्ग-नरक का इसमें उल्लेख नहीं, मोक्ष का इसमें उल्लेख नहीं, किसी और चीज का उल्लेख नहीं है। यह बड़े गहरे सूत्र का उल्लेख है--विवेक का, जागरण का, अमूर्च्छा का, होश का, अवेयरनेस का।
अगर कोई मनुष्य जाग जाए, उससे पाप असंभव हो जाता है। वैसे ही जैसे कोई जान कर आग में हाथ न दे सके, वैसे ही जैसे कोई जान कर कुएं में गिर न सके, वैसे ही जैसे कोई जान कर जहर को पी न सके, वैसे ही जिसका जागरण फलीभूत हो जाता है--उसे पाप करना असंभव हो जाता है। पाप सोए हुए होने का लक्षण है, पुण्य जागे हुए होने का लक्षण है।
इसलिए मैं पाप छोड़ने को नहीं कहता। लोग मुझसे पूछते हैं, हम पाप के लिए क्या करें? मैं चुप रह जाता हूं। अनेक लोग समझते हैं शायद मैं पाप करने की गवाही देता हूं या पाप करने के लिए साक्षी देता हूं--कि पाप करो। मैं पाप छोड़ने को नहीं कहता, क्योंकि मैं कैसे कह सकता हूं पाप छोड़ो?
मैं अविवेक छोड़ने को कहता हूं, मूर्च्छा छोड़ने को कहता हूं। क्योंकि पाप कोई असली बात नहीं, वह तो केवल लक्षण है। वह तो बीमारी का लक्षण है, वह बीमारी नहीं है। और जो लक्षणों से लड़ते हैं, वे बीमारी की जड़ को नहीं खोज पाते।
मैं आपसे नहीं कहता: झूठ मत बोलो, मैं आपसे नहीं कहता: चोरी मत करो, मैं आपसे नहीं कहता: हिंसा मत करो; मैं तो आपसे कहता हूं--मूर्च्छा छोड़ दो। उस मूर्च्छा के छोड़ने में सब पाप विलीन हो जाते हैं।
अमूर्च्छित मनुष्य ने अब तक कोई पाप नहीं किया है, और मूर्छित मनुष्य पुण्य भी करे तो भी पाप ही होता है। मूर्छित मनुष्य पुण्य भी करे तो भी पाप ही होता है, मूर्च्छित मनुष्य संन्यासी भी हो जाए तो भी ग्रस्त बना रहता है, मूर्च्छित मनुष्य विनम्र हो जाए तो भी दंभ ही फलीभूत होता है। मूर्च्छित मनुष्य सब छोड़ दे तो भी उससे कुछ छूटता नहीं, और सब छोड़ना ही वह पकड़ लेता है।
एक मुझे स्मरण आता है, कहीं दूर पुराने समय में एक साधु के पास एक नया साधु गया। और उस साधु ने कहा कि मैं सब छोड़ कर आ रहा हूं।
उस वृद्ध साधु ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और कहा: इसको भी छोड़ आओ।

बहुत हैरान हुआ! उस साधु ने पूछा कि मैं तो सब छोड़ कर आ रहा हूं, अब और छोड़ने को क्या है?
उस वृद्ध पुरूष ने कहाः इसको भी छोड़ आओ, यह भाव कि मैं सब छोड़ कर आ रहा हूं।
यह भाव कि मैं सब छोड़ कर आ रहा हूं--बड़ी गहरी पकड़ है, यह बड़ी गहरी पकड़ है। यह उससे ज्यादा गहरी पकड़ है जो चीजें तुम्हारे पास थीं वे तुम्हारें दंभ का इतना कारण नहीं थीं, जितना अब यह त्याग तुम्हारे दंभ का कारण हो जाएगा।
मूर्च्छित मनुष्य कुछ भी करे, वह जो भी करेगा--आबद्ध होगा कि उससे पाप हो। और अमूर्च्छित मनुष्य कुछ भी करे, असंभव है कि उससे पाप हो जाए। क्योंकि पाप भीतर चेतना के सोए हुए होने का बाह्य परिणाम है। और पुण्य भीतर चेतना के जागे हुए होने का बाह्य परिणाम है। पाप और पुण्य परिणाम हैं। केंद्र भीतर है--स्वयं के प्रति जागे हुए होना, या स्वयं के प्रति सोए हुए होना।
हम सारे लोग सोए हुए हैं। हमारी नींद में और हमारे जागरण में बहुत भेद नहीं। इसलिए भेद नहीं है, नींद में भी हमें पता नहीं होता कि हम कौन हैं और जागरण में भी हमें पता नहीं कि हम कौन हैं? थोड़ा सा भेद जरूर है। जागरण में हमें याद होता है--हमारे नाम, हमारी पदवियां, हमारा वंश, हमारी परंपरा, हमारा धर्म, हमारा परिवार, हमारे मित्र--इन सबकी हमें याद होती है। नींद में ये सब यादें भूल जाती हैं।
मैं आपसे कहूं कि नींद ही ज्यादा बेहतर है। क्योंकि ये झूठी बातें कम
से कम वहां याद नहीं होतीं। वहां सत्य का तो पता नहीं होता, लेकिन असत्य का भी पता नहीं होता। जागरण आपकी निद्रा से भी बदतर है। वहां सत्य का तो कोई पता नहीं और बहुत से असत्यों का पता है। आपका कोई नाम है, नाम से असत्य और कोई बात क्या होगी? किसी का कोई नाम नहीं है। और न किसी का कोई नाम हो सकता है। नाम तो सिखाई हुई एक बात है, नाम तो सिखाया गया कामचलाऊ एक मामला है, लेकिन आपको लगता है न--मेरा नाम है। चार लोगों ने मिल कर आपको एक नाम दे दिया है, वह लगता है--यह मेरा होना है।
इससे तो नींद बेहतर, कम से कम यह तो पता नहीं चलता--कि मेरा नाम क्या है? यह जागरण तो और गहरी नींद हो गई। आपके पास कुछ संपत्ति है तो लगता है मैं संपत्तिशाली हूं। इससे तो नींद बेहतर, कम से कम दरिद्र और अमीर वहां समान तो हो जाते हैं। वहां यह तो पता नहीं चलता कि मेरे पास कुछ है या कुछ नहीं। जागने में लगता है मैं गृहस्थ हूं, किसी को लगता है मैं सन्यासी हूं, किसी को लगता है मैं गरीब हूं, किसी को लगता है मैं अमीर हूं, किसी को लगता है मैं किसी पद पर नहीं हूं, किसी को लगता है मैं राजा हूं। नींद बेहतर--कम से कम ये झूठे भेद तो मिटा देती है।
हमारा जागरण हमारी नींद से बदतर है। हम जागते क्या हैं, और भी गहरे सो जाते हैं। इस जागरण में हम आत्मज्ञान से और भी दूर निकल जाते हैं। क्योंकि सत्य का तो हमें बोध नहीं होता, असत्य के साथ आइडेंटिटी, असत्य के साथ तादात्म्य हो जाता है। तो यह इस, इस जागरण की मूर्छा को, इस जागे हुए सोने को तोड़े बिना, कोई व्यक्ति धर्म में प्रतिष्ठित नहीं होता।
और उसके तोड़ने का उपाय? उसके तोड़ने का उपाय है--सब भांति, सब भांति समग्र शक्तियों को इकट्ठा करके, जो भी भीतर बाहर से आया हुआ है, उसे बाहर वापस पहुंचा देना। जो भी भीतर बाहर से आया हुआ है सब भांति श्रम करके उसे वापस बाहर पहुंचा देना। केवल उतनी ही चेतना को शेष रह जाने देना जिसे बाहर भेजने का कोई उपाय न हो। क्योंकि वह हमारा आंतरिक स्वरूप है उसे बाहर हटाने का कोई उपाय नहीं।
इस भवन में अगर हम सारी चीजों को बाहर पहुंचा दें, तो जो भी इस भवन के भीतर है, सारी चीजों को बाहर पहुंचा दें तो क्या शेष रह जाएगा? इस भवन का अवकाश, इस भवन का खालीपन ही शेष रह जाएगा। उसे बाहर नहीं पहुंचाया जा सकता। इस भवन के खालीपन को बाहर नहीं पहुंचाया जा सकता। सब बाहर पहुंचा दिया जाएगा तब भवन का खालीपन, वह एम्प्टीनेस भर यहां भवन के भीतर रह जाएगी। वह इस भवन का हिस्सा है। उसे इससे अलग करने का उपाय नहीं। ऐसे ही

मनुष्य जो भी उसके ऊपर बाहर से आया है, जो भी संस्कारित हुआ है अगर सबको क्रमशः छोड़ दे, तो उसके भीतर जो शेष रह जाएगा जिसे बाहर नहीं भेजा जा सकता है, जो कि उसकी आंतरिकता है, जो कि उसका स्वरूप है, जिसे कि बाहर नहीं भेजा जा सकता है, जब वही केवल शेष रह जाता है--तो जिसका अनुभव होता है उसका नाम आत्मा है, तो जो अनुभव होता है उसका नाम सत्य है, तो जो अनुभव होता है वही द्वार खोल देता है--समस्त जगत के रहस्यों का! और उस बोध में प्रतिष्ठित होकर जीवन में जो भी बुरा है वह अपने आप गिर जाता है।
पाप छोड़ कर कोई सत्य को उपलब्ध नहीं होता, लेकिन जिसके पाप छूटने लगते हैं--बाहर, हम जानते हैं वह सत्य को उपलब्ध हो रहा है। पाप छोड़ कर कोई सत्य को उपलब्ध नहीं होता, लेकिन जिसके पाप छूटने लगते हैं, हम पहचानते हैं और जानते हैं कि वह सत्य को उपलब्ध हो रहा है। क्योकि सत्य को बिना उपलब्ध हुए पाप का छूटना संभव नहीं।
वह जैसे ही भीतर प्रतिष्ठा मिलती है, बाहर अपने आप--अंधेरे में, अज्ञान में, प्रसुप्त अवस्था में--जो-जो हमने इकट्ठी कर ली थी बातें, जो-जो आदतें, जो-जो रुचियां वे क्रमशः क्षीण होकर गिर जाती हैं, उनकी निर्जरा हो जाती है। आत्मज्ञान पाप की निर्जरा है, आत्मज्ञान अंधकार की निर्जरा है, आत्मज्ञान जो भी अविवेकपूर्ण है, उसकी निर्जरा है।
यह आत्मज्ञान, मैंने इस पर कहा कि कोई दूसरा मनुष्य नहीं दे सकता। प्रत्येक को स्वयं करना होगा। यही, इसी कारण से पिछले दो-तीन सौ वर्षों में विज्ञान के सामने धर्म हारता हुआ मालूम हो रहा है। विज्ञान सामूहिक घटना है और धर्म व्यैक्तिक घटना है। विज्ञान में दूसरे लोग सहयोगी हो सकते हैं, विज्ञान का जो भी निर्माण है--वह सामूहिक और सामाजिक है। और धर्म की जो भी अनुभूति है--वह व्यैक्तिक। सामूहिक अनुभूति में आसानी होती है क्योंकि आप पर कोई जिम्मेदारी, कोई रिस्पांसिबिलिटी नहीं होती। आप एक बड़े समूह के अंग होते हैं। आपका अपना कोई व्यक्तिगत जिम्मा नहीं होता, आपको भय नहीं लगता, भीड़ के साथ आप होते हैं।
धर्म में प्रवेश भय देता है। क्योंकि वहां भीड़ साथ नहीं होती, आप बिल्कुल अकेले होते हैं। और टोटल रिस्पांसिबिलिटी, पूरा दायित्व आप पर होता है और किसी पर नहीं। दायित्व को उठाना पुरुषार्थ है; समूह के साथ खड़े हो जाना कोई पुरुषार्थ नहीं है। भीड़ के साथ खड़े हो जाना कोई पुरुषार्थ नहीं है, भीड़ का एक अंग हो जाना कोई पुरुषार्थ नहीं है।
सारी दुनिया में भीड़ जीत रही है और व्यक्ति हार रहा है। इसलिए विज्ञान जीत रहा है और धर्म हार रहा है। फिर और एक बात है जब निपट अकेले खड़ा होना हो, किसी का साथ-सहारा न हो तो आलस्य की गुंजाइश नहीं होती, वहां तो बड़ा श्रम करना होगा।
विज्ञान मनुष्य को आलस्य की शिक्षा दे रहा है। विज्ञान का सारा विकास मनुष्य के तमस और आलस्य से हुआ है। विज्ञान की सारी खोज केवल एक केंद्र पर विकसित हो रही है कि मनुष्य को कोई श्रम न करना पड़े, कोई श्रम न करना पड़े। अगर विज्ञान पूरी तरह विकसित हो तो किसी मनुष्य को श्वास लेने की, आंखें खोलने की, या हाथ हिलाने की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। अगर विज्ञान का चरम विकास हो तो जो जहां है वहीं मुर्दें की भांति बैठा रहे। उसे कुछ करने का कोई प्रश्न नहीं। अगर कुछ भी करना पड़ रहा है तो समझना होगा अभी विज्ञान में थोड़ा विकास कम रह गया। अगर विज्ञान पूर्ण विकसित हो तो सारी दुनिया मुर्दों की बस्ती में परिणित हो जाएगी।
विज्ञान मनुष्य से श्रम छीन लेगा। यह हमारे आलस्य के अनुकूल है, यह हमारे तमस के अनुकूल है, यह हमारी निद्रा के अनुकूल है--क्योंकि निद्रा और श्रम का विरोध है।
इसे स्मरण रखें: निद्रा और श्रम का विरोध है।
आज श्रम और निद्रा का सहयोग है। विज्ञान सुलाने में, नींद में सहयोगी
हो रहा है। विज्ञान परिपूर्ण सफल हो, सारी दुनिया गहरी नींद में सो सकती है। धर्म सफल हो तो सारी दुनिया को जागना पड़ेगा, नींद असंभव हो जाएगी।
विज्ञान अश्रम पर जोर रखता है, धर्म विपरीत श्रम पर जोर रखता है। धर्म पर तो श्रम करना होगा।

मैंने सुना, कनफ्यूशियस के समय में चीन में कोई ढाई हजार वर्ष पहले कनफ्यूशियस एक गांव में गया। वहां उसने बगीचे में देखा: एक आदमी, बूढ़ा आदमी जिसकी उम्र कोई सौ वर्ष पार कर गई है, वह कुएं में रहट लगा कर खुद अपने लड़के के साथ बैलों की जगह जुता हुआ है, पानी खींच रहा है। कनफ्यूशियस ने उससे कहा कि महानुभाव, क्या तुम्हें पता नहीं कि आदमी की जगह बैल और घोड़ों का उपयोग होने लगा है? और आप अभी तक खुद ही खींचे जा रहे हैं। और क्या आपको पता नहीं है कि ये पुरानी हंडिया लटकाए हुए हैं--मिट्टी की, इसकी जगह धातु की चीजें बन गई हैं जिनसे पानी आसानी से खींचा जा सकता है। कम श्रम लगता है, सुविधा होती है, समय बचता है।
उस बूढ़े ने कहाः मित्र, कनफ्यूशियस के कान में कहाः धीरे कहो, मेरा जवान लड़का न सुन ले। उस बूढ़े आदमी ने कनफ्यूशियस के कान में कहा: मित्र, जरा धीरे कहो, मेरा जवान लड़का न सुन ले। अन्यथा समय के पहले बूढ़ा हो जाएगा। तो कनफ्यूशियस बहुत हैरान हुआ!
और उस बूढ़े ने कहा: सवाल इतना ही नहीं है कि हम बाहर की दुनिया में श्रम न करें। जो लोग बाहर की दुनिया में श्रम को छोड़ देते हैं, वे भीतर की दुनिया में श्रम करने में असमर्थ हो जाते हैं।
जो बाहर की दुनिया में श्रम करना छोड़ देते हैं, वे भीतर की दुनिया में श्रम करने में असमर्थ हो जाते हैं। बाहर के श्रम का नाम श्रम है, भीतर के श्रम का नाम तप है। भीतर के श्रम का नाम तपश्चर्या है। तो जो लोग बाहर की दुनिया में श्रमशून्य हो जाएंगे, वे भीतर की दुनिया में तपशून्य हो जाएं तो कोई आश्चर्य नहीं है! यह उसके ही साथ बंधी हुई संयुक्त घटना है। विज्ञान ने श्रम छीन लिया। विज्ञान श्रम छीनता जा रहा है। इसलिए क्रमशः आपसे धर्म छूटता जा रहा है।
स्मरण रखें, श्रम को वापस लौटा देना होगा। आत्मज्ञान बिना श्रम के नहीं हो सकता। आत्मज्ञान की कोई भी संस्कृति श्रमणिक ही होगी, श्रम पर ही खड़ी होगी। कोई उसका और दूसरा रास्ता नहीं हो सकता। यह व्यक्तिगत दायित्व, व्यक्तिगत श्रम, व्यक्तिगत तप, सामूहिक साथ, सहयोग, सामूहिक दायित्व से भिन्न है। धर्म कोई सामूहिक दायित्व नहीं है।
तो विज्ञान ने सामूहिकता को बढ़ा कर, सार्वजनिकता को बढ़ा कर, सारी दुनिया में समूह को प्रतिष्ठित करके व्यक्ति की सारी गरिमा छीन ली है। व्यक्ति का सारा मूल्य छीन लिया है, इंडिविजुअल इकाई, वह जो व्यक्तिगत इकाई है, उसके सारे प्राण खींच लिए हैं। आपको निस्सत्व कर दिया है, नपुंसक कर दिया है। व्यक्ति के भीतर कुछ भी नहीं रह गया, वह जो कुछ भी है--समूह के साथ है।
धर्म को पुनरुज्जीवित करना हो तो प्रत्येक व्यक्ति को निजी दायित्व, निजी श्रम में संलग्न होना पड़ेगा, निजी तप में संलग्न होना पड़ेगा। और तब श्रम के माध्यम से अपनी सारी शक्तियों को इकट्ठा करके वह भीतर के तमस को, भीतर के अंधकार को तोड़ सकता है, बाहर से आये हुए संस्कार वापस फेंक सकता है और जाग सकता है। जागरण अगर भीतर फलित हो जाए तो उसका सारा जीवन बाहर परिवर्तित हो जाएगा। अगर हम ऐसे मनुष्य पैदा करने में समर्थ नहीं हो सके तो मनुष्य का भविष्य अत्यंत अंधकारपूर्ण है।
जैसा मैंने कहा: विज्ञान ने सामूहिकता को बढ़ा कर धर्म को शून्य कर दिया, वैसा ही यह भी आपको स्मरण दिला दूं: धर्मों ने संगठित होकर, ऑर्गनाइज्ड होकर--व्यक्तिगतता--जो धर्म की थी, उसे भी शून्य कर दिया है। सारी दुनिया के संगठन बन गये हैं धर्मों के, जब कि धर्म का संगठन से कोई संबंध नहीं होना चाहिए। धर्म के संगठन की क्या जरूरत? कल आप सुन सकते हैं कि प्रेमियों ने संगठन कर लिए हैं, प्रेमियों की संस्थायें और संप्रदाएं हैं।
आप कहेंगे: फिजूल की बात! प्रेम तो निपट व्यैक्तिक बात है, उसके लिए ऑर्गनाइजेशन और संगठन की कौन सी जरूरत?
धर्म भी निपट व्यैक्तिक बात है। उसके लिए बड़े चर्च, बड़े ऑर्गनाइजेशंस, बड़े संप्रदाय खड़े करने की कौन सी जरूरत? सारी दुनिया में धर्म जो कि व्यैक्तिक है, उसको संप्रदायगत, संगठनगत बनाने के कारण धर्म के

भीतर से भी व्यक्ति की गरिमा विलुप्त हो गई। और धर्म भी ऐसा मालूम होता है वह भी कोई सामूहिक उपक्रम है। वह भी कोई सोशल इंटरप्राइज है, वैसा मालूम होता है जैसे वह भी भीड़ का काम है। धर्म भीड़ का काम बिल्कुल नहीं है, धर्म बिल्कुल व्यैक्तिक काम है।
और इसलिए जिन्होंने धर्म को पाया, उन्होंने भीड़ में जाकर नहीं; भीड़ से दूर जाकर पाया। जिन्होंने धर्म को पाया उन्होंने कोई संगठन नहीं बनाया, कोई पार्टी नहीं बनाई, कोई सेना नहीं खड़ी की कि अब हम धर्म को पाने जाते हैं। उनकी सेना थी, संगठन था--उसको छोड़ कर वे अकेले हो गए। हम धर्म को पाने जाते हैं। धर्म को पाने जाते हैं तो आदमी को अकेला हो जाना पड़ता है--निपट अकेला। और अगर अधर्म को करने जाते हैं तो संगठन चाहिए, भीड़ चाहिए, जितना बड़ा पाप करना हो, उतना ही आदमी को अकेले रहने से संभव नहीं होता। और जितना बड़ा पुण्य करना हो, उतना ही भीड़ के साथ रहने से संभव नहीं होता।
सारे पाप दुनिया संगठन के द्वारा करवाती है। और बड़े बाप करने हों तो बड़ें संगठन चाहिए, छोटे पाप करने हों तो छोटे संगठन चाहिए। इसलिए धर्म जब संगठित होता है तो धर्म में अधर्म की शक्तियां प्रवेश कर जाती हैं। क्योंकि संगठन जो है वह अधर्म की शक्ल है। जब धर्म संगठित होता है उसमें अधर्म की शक्तियां प्रविष्ट हो जाती हैं। जब धर्म संगठित होता है तो उसमें पाप प्रविष्ट हो जाता है, अंधकार प्रविष्ट हो जाता है। फिर जितना वह संगठित होने लगता है उतना ही निचुड़ने लगता है--धर्म बाहर, और अधर्म उसमें प्रवेश पाने लगता है। जिस दिन कोई धर्म पूरा संगठित हो जाता है उस धर्म के भीतर धर्म के प्राण अंत हो जाते हैं और वह एक ऑर्गनाइजेशन, एक राजनैतिक, एक सामाजिक समूह मात्र होकर समाप्त हो जाता है।
दुनिया के संगठित धर्म राजनैतिक-सामूहिक इकाइयां हो गए हैं, उनका साधना से कोई संबंध नहीं रहा। और तब स्वाभाविक है ये संगठन आपस में एक-दूसरे से लड़ेंगे, संगठन आपस में एक-दूसरे से लड़ेंगे। धर्म कैसे एक-दूसरे से लड़ सकता है, लेकिन संगठन लड़ेंगे। धर्म का दूसरे धर्म से क्या विरोध हो सकता है? धर्म का तो विरोध अधर्म से होता है। लेकिन संगठन का विरोध अधर्म से नहीं होता, दूसरे धर्म से होता है।
दुनिया में धर्म के प्राण छीन लेने में संगठित धर्मों ने हाथ बंटा लिया, वे सब इकट्ठे हो गए हैं और एक-दूसरे धर्म से ल.ड़ते हैं। अधर्म से लड़ाई बंद, धर्मों की धर्मों से लड़ाई शुरू। इसके परिणाम घातक हो गए हैं। विज्ञान ने श्रम छीन लिया, धर्म ने व्यक्तिगत साधना छीन ली, मनुष्य निश्शक्त होता जाता है।
इस मनुष्य को वापस प्राण देने हों तो इसे श्रम देना होगा। श्रम की महिमा और मूल्य देना होगा और इसे बताना होगा, जहां तुम भीड़ में इकट्ठे होते हो--चाहे वह मंदिर हो, चाहे मस्जिद हो, चाहे शिवालय हो, चाहे चर्च हो, चाहे कुछ और हो--जहां तुम भीड़ में इकट्ठे होते हो, वहां समझो एक सामूहिक उपक्रम है, यहां धर्म नहीं हो सकता।
धर्म तो अकेले में जाओ। अकेले में जाने से केवल इतना मतलब नहीं कि केवल भीड़ से भाग जाओ। अकेले में जाने से मतलब है: तुम्हारे भीतर भीड़ न रह जाए। अपने भीतर से भीड़ को खाली कर लो। अकेले रह जाओ, बाहर के सारे प्रभाव दूर कर दो, अकेले रह जाओ। सारी शक्तियों को इकट्ठा करके भीतर श्रम हो तो कोई भी कारण नहीं कि मनुष्य आत्म-ज्योति को क्यों उपलब्ध न हो जाए! आत्म-ज्योति प्रत्येक का जन्मसिद्ध अधिकार है, प्रत्येक का स्वरूप है। श्रम करने से, तप करने से उसे उपलब्ध किया जा सकता है और जो उसे उपलब्ध नहीं करते, वे अपना अपमान करते हैं।
महावीर ने, बुद्ध ने, कृष्ण ने--जिन्हें हम ज्योति-पुरुष की भांति देखते हैं, जब उस बोध को उपलब्ध कर लिया तो हमने क्या किया? हमने कहा: ये सारे के सारे लोग भगवान हैं, ये मनुष्य ही नहीं। हमने आत्मग्लानि से बचने के लिए खूब तरकीब निकाली। हमने उन्हें अपनी जाति से ही काट कर अलग कर दिया।
अगर महावीर भी मनुष्य हैं, अगर बुद्ध भी मनुष्य हैं तो हर एक के भीतर आत्मग्लानि, सेल्फ-कंडेमनेशन पैदा होगा कि अगर महावीर मेरे ही जैसे

मनुष्य होकर ऐसे प्रकाश को, आलोक को उपलब्ध हुए--तो मैं क्या कर रहा हूं? अगर इन्हीं उपकरणों को लेकर वे ऐसी मुक्ति को, ऐसे आनंद को प्राप्त हुए--तो मैं क्या कर रहा हूं? अगर वे जाग सके तो मेरे सोने के पीछे सिवाय मेरे आलस्य के और क्या हो सकता है?
इसको बचने के लिए भगवान बना दिया कि वे भगवान हैं, वे हमारे लोक के ही मनुष्य नहीं। कृष्ण भगवान के अवतार हैं, ईशा भगवान के पुत्र हैं, वे हमारे लोक के मनुष्य नहीं हैं, उनकी जाति दूसरी। हम साधारण जन वहां कैसे पहुंच सकते हैं? हमारा तो काम है कि हम उनके चरणों में सिर रखें और प्रार्थना करें।
इससे ज्यादा अपमान की और कोई बात नहीं हो सकती। महावीर को देख कर, बुद्ध को देख कर स्मरण करें इस बात का--वे आप जैसे मनुष्य हैं, और जो उनके भीतर घटित हुआ वह आपके भीतर घटित हो सकता है और अगर कोई भी बाधा है उसके घटित होने में, सिवाय आपके कोई और बाधा नहीं है। आपका अपना आलस्य, अपना प्रमाद... ।
महावीर से किसी ने पूछाः कौन रोकता है मनुष्य को सत्य से?
महावीर ने कहाः उसका प्रमाद, उसका आलस्य, उसका सोया होना, उसका तमस, उसका ढीला-ढाला होना।
कौन पहुंचाता है मनुष्य को जीवन के उत्तुंग शिखरों पर?
उसका श्रम, उसका आत्म-विश्वास, उसकी आत्म-श्रद्धा, उसके भीतर इस बोध
का पैदा हो जाना कि जब तक मैं आत्मा की चरम परिपूर्णता को नहीं पा लेता हूं तब तक मैं अपना अपमान कर रहा हूं। और अपना अपमान करना, अपनी आत्म-गरिमा का अपमान करना जीवन की सबसे बड़ी भूल है।
उस भूल को पोंछा जा सकता है, उस भूल को मिटाया जा सकता है, और सजग हुआ
जा सकता है उस आरोहण के लिए--जो द्वार खोल देगी आनंद के और आलोक के! ये प्रत्येक के भीतर संभावना है, यह बीज प्रत्येक के भीतर है। थोड़ा श्रम हो तो ये बीज अंकुरित हो सकते हैं। और इन बीजों में, इनके अंकुरण में वही फूल और फल लग सकते हैं जो कभी किसी भी पुरुष को, किसी भी आत्मा को उपलब्ध हुए हैं।
मेरी इन बातों को इतने प्रेम से सुना है, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। प्रभु आपके लिए श्रम के लिए सन्नद्ध करे, प्रभु आपको अपनी व्यक्तिगत गरिमा के पीछे, व्यक्तिगत गरिमा के केंद्र पर आरोहित करे, प्रभु आपको ऐसी अभीप्सा और प्यास दे कि आपके भीतर जो भी संभावनाएं हैं उन्हें आप परिपूर्ण वास्तविकता तक पहुंचाने के लिए सन्नद्ध हो जाएं।
यदि संकल्प का जन्म हो जाए, यदि श्रम संलग्न हो जाए, यदि प्राणों की पूरी शक्ति संगठित हो जाए--तो सत्य को पाने से आसान और कोई बात नहीं। क्योंकि सत्य प्रत्येक का स्वरूप है।
मेरी इन बातों को इतने प्रेम से सुना है उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं
और सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

धर्म की यात्रा
तीसरा प्रवचन

क्या आपका जीवन सफल है?

यह प्रश्न उठता है कि आपसे पूछूं, आपको जीवन का अनुभव हुआ है? यह प्रश्न उठता है आपसे पूछूं, आपको जीवन में आनंद का अनुभव हुआ है? यह प्रश्न उठता है आपसे पूछूं, आपको अमृत का, आलोक का? किसी प्रकार की दिव्य और अलौकिक शांति का कोई अनुभव हुआ है? ऐसे बहुत से प्रश्न उठते हैं। लेकिन मैं उनके पूछने की हिम्मत नहीं कर पाता, क्योंकि उनका उत्तर करीब-करीब मुझे ज्ञात है।
कोई आनंद मुझे नहीं दिखाई पड़ता, कोई आलोक, कोई शांति, कोई प्रकाश, कोई जीवन में दिव्यता का बोध, न ही कोई कृतज्ञता, कोई कृतार्थता, कोई सार्थकता नहीं मालूम होती। इसलिए डर लगता है किसी से पूछना अशोभन न हो जाए।
लेकिन हर आदमी जो मुझे मिलता है उससे पहली बात यही पूछ लेने का मन होता है, उसे ये बातें मिली हैं या नहीं मिलीं? और अगर ये बातें नहीं मिली हैं, तो उसका जीवन करीब-करीब व्यर्थ चला गया है। अगर ये अनुभूतियां उसे नहीं हुई हैं तो वह स्मरण रखे, उसने जीवन के इस बहुमूल्य अवसर को अपने हाथों खो दिया है। जिस जीवन में प्रभु का परम साक्षात संभव हो सकता था, जिस जीवन में सौंदर्य की, सत्य की और सेवत्व की अनुभूति हो सकती थी, उस जीवन को उसने कौड़ियां, कंकड़-पत्थर इकट्ठा करने में व्यतीत कर दिया है।
जिसे हम उपलब्धि कहते हैं, जिसे हम जीवन की सफलता समझते हैं, वह सब मुझे विफलता दिखाई पड़ती है। और जिसे हम संपत्ति समझते हैं, उसे मैं विपत्ति से ज्यादा नहीं देख पाता हूं। क्योंकि अगर वह संपत्ति होती तो जिन्हें वह उपलब्ध है, वे लोग शांति को उपलब्ध हो गए होते। क्योंकि जिसे हम सफलता कहते हैं, अगर वह विफलता न होती, तो जिन्हें मिलतीं।। उनकी आंखें प्रकाश से भर गई होतीं। उनके जीवन से आलोक झरने लगता, उनके जीवन से प्रेम बरसने लगता। उनका जीवन सामान्य मनुष्य का जीवन नहीं रह जाता जो मनुष्य का अतिक्रमण कर जाते हैं।
और जब तक कोई व्यक्ति अपने भीतर के मनुष्य का अतिक्रमण न कर सके, उसे पार न कर सके, तब तक।। तब तक वह व्यर्थ ही जीता है। तब तक उसकी श्वासों का आना-जाना व्यर्थ है। और तब तक उसकी सारी चेष्टाएं, सारे श्रम एक ऐसे निष्फल प्रयास में लगा है जिसके अंत में उसके हाथ खाली रह जाएंगे।
मुझे स्मरण आता है, एक गांव में एक फकीर आकर ठहरा हुआ था। किसी, किसी व्यक्ति ने आकर सुबह-सुबह उस फकीर को कहा: मेरे पास अतुल संपत्ति है। और उस संपत्ति का मैं कोई सदुपयोग करना चाहता हूं। आप आए हैं इस गांव में, आपकी बातें सुन कर, आपके निकट आकर मुझे लगा कि यह मनुष्य मार्गदर्शन दे सकेगा, तो मैं अपनी सारी संपत्ति आपके चरणों में रखता हूं और जो भी आज्ञा दें: मैं उसका उपयोग करूं।
उस फकीर ने नीचे से ऊपर तक उस मनुष्य को देखा और वह फकीर हंसने लगा। और उसने कहा कि मैं तो तुम्हारे पास कोई भी संपत्ति नहीं देख पाता हूं।
वह आदमी बोला: मैं संपत्ति अपने साथ नहीं लिए हूं, वह मेरे पास है। बहुत मेरे पास संपत्ति है और जो आप कहेंगे, मैं क रूंगा।
उस फकीर ने कहा: मेरे पास ऐसे सैंकड़ों दरिद्र आते हैं जिनको यह भ्रम होता है कि उनके पास संपत्ति है। और मेरे पास ऐसे सैकड़ों संपत्तिशाली भी आते हैं जिन्हें दुनिया दरिद्र समझती है। और उन्होंने बड़े उलटे... मैंने बड़ी उलटी गंगाओं को बहते देखा है। जिनके पास कुछ नहीं उनके पास सब देखा; और जिनके पास सब है उनके पास कुछ भी नहीं देखा। फिर भी तुम कहते हो तो मैं मान लेता हूं। मैंने स्वीकार किया कि तुम्हारे पास संपत्ति है और तुम कुछ करना चाहो, तो कर सकते हो तो एक छोटा सा मेरा काम कर दो तो मुझ पर बड़ी कृपा होगी। तुम्हारे पास संपत्ति का होना भी सिद्ध हो जाएगा और एक काम की तलाश में मैं पूरे जीवन से भटक रहा हूं, वह काम भी पूरा हो जाएगा। बोलो करोगे? उस व्यक्ति ने कहाः आज्ञा दें। मेरी सारी संपत्ति, मेरी सारी शक्ति लगा दूंगा।

उस फकीर ने अपने कपड़े के भीतर से कपड़ा सीने की एक सुई निकाली और कहाः इसे रख लो और मरने के बाद मुझे वापस लौटा देना। इस सुई को लिए मैं घूम रहा हूं वर्षों से कि कोई मिल जाए मुझे जिसकी शक्ति और जिसकी संपत्ति इस सुई को मृत्यु के पार पहुंचा दे। तुम मिल गए, जिसकी तलाश थी वह आदमी मिल गया। आज रात्रि मैं निश्चिंत सो जाऊंगा।
आदमी बहुत हैरान हुआ! उसने बहुत सोचा, लेकिन एकदम इंकार करना संभव नहीं था। खुद ही ये विपत्ती मोल ले ली थी, खुद ही ये आमंत्रण दिया था, इसलिए घर गया। सोचा इंकार करने के पहले मित्रों को पूछ लूं। समझदारों को पूछ लूं, गांव के विचारशील लोगों को पूछ लूं, कोई रास्ता हो सके और यह सुई मृत्यु के पार जा सके तो इसे जरूर ले जाऊं। इंकार करने के पहले सब उपाय कर लेने उचित हैं। उसने गांव भर के समझदार वृद्धों से पूछा, वे हंसने लगे। उन्होंने कहा: इस सारे जगत की सारी शक्ति और सारी संपत्ति भी इकट्टी हो जाए तो यह भी सुई को भी मृत्यु के पार ले जाना संभव नहीं है। और वृद्धों ने कहा: इस काम को छोटा मत समझना, इससे बड़ा कोई काम आज तक जमीन पर न रहा है और न कभी होगा। और वह फकीर बहुत अजीब आदमी है, इस काम को उसने छोटा कहा, और वह पागल है। अगर इस काम की तलाश में घूम रहा है कि कोई आदमी इस सुई को मृत्यु के पार ले जाएगा। उस फकीर को भी असफलता ही मिलेगी, यह हो नहीं सकता। तुम जा कर सुई वापस कर दो, क्योंकि जीवन का कोई भरोसा नहीं है। अगर मर जाओ तो उस फकीर की उधारी ऊपर रह जाएगी। तो रात ही भागा हुआ गया। उसने कहा: यह सुई, क्षमा करें वापस ले लें। मुझे दिख गया मेरे पास कोई संपत्ति नहीं है, कोई शक्ति नहीं है। इस सुई को मृत्यु के पार ले जाने में मैं समर्थ नहीं हूं। उस फकीर ने कहा: जिस आदमी के पास सारे जीवन के श्रम और संघर्ष के बाद इतनी भी उपलब्धि न हुई हो कि वह सुई को मृत्यु के पार ले जा सके, उस आदमी ने जीवन व्यर्थ खो दिया। क्योंकि संपदा केवल वही है जिसे मृत्यु नष्ट न कर पाए, जिसे मृत्यु नष्ट कर दे।। उस संपदा का कोई मूल्य नहीं है। जो संपदा मृत्यु छीन ले, उसे संपत्ति कहना नासमझी है।
वह साथ... मित्र अर्चन में, परेशानी में पहचाने जाते हैं, संपत्ति विपत्ति में पहचानी जाती है। मृत्यु से बड़ी कोई विपत्ति नहीं। उस वक्त जो संपत्ति काम नहीं आती, उसको संपत्ति नासमझ कहते होंगे।
पर कोई संपदा है।। जो मृत्यु के पार भी चली जाती है, कोई उपलब्धियां हैं।। जिन्हें मृत्यु की लपटें जला नहीं पातीं और मृत्यु भी जिन्हें नहीं छीन पाती है। उस तरह की संपत्ति को उपलब्ध करने का विज्ञान धर्म है। उस तरह की संपत्ति को जो मृत्यु से अपराजित हो, जो मृत्यु से सुरक्षित हो, वैसी संपदा।। है। वैसी संपदा पाई जा सकती है। सच तो यह है कि वैसी संपदा प्रत्येक को उपलब्ध है, हमें उसका स्मरण नहीं। धर्म पुनर्स्मरण है; धर्म स्वयं के भीतर छिपी हुई किसी निधी का पुनर्स्मरण है।
मैंने सुना है एक फकीर, एक भिखमंगा जीवन भर एक रास्ते के किनारे बैठ
कर भीख मांगता रहा और जीवन भर यह सोचता रहा कि बहुत संपत्ति इकट्ठी कर लूं।
लेकिन भीख मांगने से कहीं संपत्तियां इकट्ठी हुई हैं?
वह आदमी जब मरा तो उसके पास कफन के लिए, उसे कब्र तक पहुंचाने के लिए
भी पैसे नहीं थे। पास-पड़ोस के लोगों ने, जिन्होंने जीवन भर उसे भीख दी थी, उन्होंने ही अंतिम भीख दी और उसकी मृत्यु की यात्रा पूरी हुई। जब वह भिखारी मर गया, तो जहां उसने झोपड़ा बांध रखा था, उसे तोड़ दिया गया और साफ किया गया। और वह भूमि साफ की गई तो लोग हैरान हुए, जिस जमीन पर बैठ कर वह जीवन भर भीख मांगता रहा, वहीं नीचे एक अतुलनीय खजाना गड़ा हुआ था! जीवन भर वह सोचता था संपत्ति को पाने के लिए, और जिस जगह पर वह बैठ कर जीवन भर भीख मांगता रहा उसी जगह पर, उसी जमीन पर बहुत बड़ा खजाना छिपा हुआ था।
यह एक भिखमंगे की कहानी नहीं है। दुनिया में जितने लोग पैदा होते हैं, सभी की कहानी है। हम जीवन भर भीख मांगते हैं और कोशिश करते हैं कहीं कुछ मिल जाए और हम इकट्ठा कर लें। और करीब-करीब हमारे ही नीचे वह सारी संपदा छिपी होती है, दबी होती है।। जिसका हमें कोई बोध नहीं होता।

ऐसी संपत्ति को कैसे पाया जा सकता है? ऐसी संपत्ति के ऊपर फिर कैसे सजग हुआ जा सकता है? ऐसी संपदा जो कि।। है, उसे कैसे पुनरुद्घाटित किया जा सकता है? धर्म उसका विज्ञान है और उस विज्ञान की जो प्रक्रिया है, उस प्रक्रिया का नाम समाधि है।
आज की सुबह समाधि योग पर ही कुछ थोड़ी सी बातें कहने का मेरा विचार है। मनुष्य के जीवन में दो ही दिशाएं हैं, वस्तुतः जगत में दो ही दिशाएं हैं। एक दिशा है।। जो बाहर की तरफ फैलती है, और एक दिशा है।। जो भीतर की तरफ चलती है। दिशाएं तो दो हैं, लेकिन रास्ता एक ही है। क्योंकि हर रास्ता दो दिशाओं में फैला हुआ होता है। उसका जो विस्तार होता है।। हर रास्ते का, वह दो दिशाओं में होता है। रास्ता एक दिशा में नहीं हो सकता। जैसे कि एक सिक्का एक ही पहलू का नहीं हो सकता। हर सिक्के के दो पहलू होते हैं, हर रास्ते की दो दिशाएं होती हैं। जीवन का जो रास्ता है, उसकी दो दिशाएं हैं। एक जो बाहर की तरफ जाती है।। मनुष्य से, और एक जो मनुष्य के भीतर की तरफ जाती है। मनुष्य एक दोराहे की भांति है। मनुष्य एक ऐसी जगह पर खड़ा है जहां से उसके भीतर से दो रास्ते जाते हैं।। एक बाहर की तरफ, एक भीतर की तरफ। चूंकि हमारी सारी इंद्रियां बाहर की तरफ खुलती हैं, इसलिए जैसे ही हमें बोध पकड़ता है, हम बाहर की तरफ चलना शुरू कर देते हैं। स्वाभाविक।
हमारी आंखें बाहर देखती हैं, हाथ बाहर छूते हैं, कान बाहर सुनते हैं,
मन बाहर के विचार करता है। इसलिए जैसे ही हमें बोध आता है, हमारी इंद्रियों के द्वार बाहर खुलने के कारण हमारी इंद्रियां हमारी चेतना को बाहर के मार्ग पर अग्रसर कर देती हैं। यह बाहर का मार्ग अनंत है। इस पर कोई कितना ही चले, कभी कहीं पहुंच नहीं पाता। इस पर कोई कितना ही चलता जाए, इसका कभी अंत नहीं आता कि वह कह सके कि हम अंतिम जगह आ गए। और जिस जगह अंत न आता हो उस जगह विफलता ही हाथ लगेगी।
क्योंकि अंत के बिना सफलता कैसे हो सकती है? अंत के बिना उपलबिध कैसे
हो सकती है? अंत को पाए बिना, गंतव्य पर पहुंचे बिना चलना व्यर्थ हो जाता है। इसलिए बाहर के रास्ते पर जो लोग चलते हैं, वे चलते तो बहुत हैं।। लेकिन पहुंचते नहीं हैं। वे दौड़ते तो बहुत हैं लेकिन कभी आ नहीं पाते। वे श्रम तो बहुत करते हैं लेकिन कोई फल उपलब्ध नहीं होता। उनके श्रम का अंत नहीं है। वे अपनी सारी शक्तियां और संकल्पों को विस्तारित करते हैं, लेकिन आखिर में पाते हैं करीब-करीब जहां थे, वहीं खड़े हैं।। कोई पहुंचना नहीं हुआ।
और न पहुंचने के, न पहुंचने का कारण यह नहीं है कि उनके श्रम की कमी है,
कि उनके संकल्प की कमी है, कि उनकी अभीप्सा क्षीण पड़ रही है, कि छोटी पड़ रही है।। अभीप्सा बहुत है। लेकिन धन के लिए जो व्यक्ति अभीप्सा करता है, धन के लिए जो प्यास अपने में पैदा करता है, यश के लिए जो कामना पैदा करता है, पदों के लिए जो दौड़ उत्पन्न करता है, और इन सारी खोजों के लिए जितने संकल्प और जितनी शक्ति और श्रम को लगाता है।। वह कम नहीं है।
हर मनुष्य अपने जीवन में बहुत श्रम, बहुत संकल्प, बहुत प्राणों को समर्पित करता है, लेकिन कहीं पहुंच नहीं पाता। इस न पहुंचने में उसके श्रम की कमी नहीं, संकल्प की कमी नहीं, प्यास की कमी नहीं।। दिशा की भूल है। पहुंच ही नहीं सकता है। इसमें उसका कुसूर नहीं। जिस दिशा में वह चला, वहीं चलने की भूल है।
बच्चों की एक छोटी सी किताब है, मैं उसे पढ़ता था। उसमें एक छोटी कहानी आती है।
किताब तो बच्चों की है, कहानी बूढ़ों के लिए भी अर्थपूर्ण है।
उसमें एक छोटी सी कहानी आती है: एक छोटी सी लड़की है, वह परियों के देश में पहुंच गई। उसने परियों के देश में पहुंच कर, इस लोक से परियों के लोक तक जाने में वह बहुत थक गई, उसे भूख भी लग आई, प्यास भी लग आई।
छोटी लड़की और जमीन से लेकर परियों के लोक तक की यात्रा!
परियों के लोक में पहुंचते उसने देखा कि वहां तो बड़ी शीतलता है। सूर्य तो तप रहा है, लेकिन कोई उत्ताप पैदा नहीं होता। उसने देखा: हवाएं तो नहीं चल रही हैं, लेकिन ऐसा लगता है कि बड़ी शांति और बड़ी शीतलता है। वह

बड़ी प्रसन्न हुई, एकदम प्रसन्न हो गई। सारी थकान उसकी मिट गई, लेकिन भूख थी। उसने आंखें दौड़ाईं। उसने देखा, पास ही थोड़ी ही दूर पर, कुछ ही कदमों के फासले पर परियों की रानी अपने हाथ में बहुत सी मिठाइयां लिए खड़ी हैं और उसे अपनी तरफ बुला रही है। वह लड़की भागी, रानी उसे बुलाती है और उसे भूख लगी है।
वह लड़की जब भागना शुरू की, अभी सुबह थी, सूरज निकला ही था; वह भागती गई, भागती गई, भागती गई दोपहर आ गया, वह घबड़ा गई। थोड़े से कदमों का फासला था वह पूरा नहीं होता था। वह रानी, वह उतनी ही दूर दिखाई पड़ती थी जितनी दूर पहले दिखाई दी थी। और अब भी वह बुला रही थी। सूरज ऊपर आ गया, सिर पर तपने लगा। उसने चिल्ला कर पूछा: ये क्या मामला है? सुबह से दोपहर हो गई मुझे दौड़ते हुए, मैं कहीं पहुंच नहीं पा रही?
रानी ने कहा: और थोड़ा श्रम करो और थोड़ा तेजी से दौड़ो, जो दौड़ते हैं आखिर पहुंच ही जाते हैं।। दौड़ो। वह लड़की फिर भागना शुरू हुई, वह दौड़ती गई, फिर सूरज भी ढल गया और सांझ का अंधेरा उठने लगा। वह थक कर गिर पड़ी, रानी उतनी ही दूर थी। और अब भी उसका बुलावा आ रहा था। उसने चिल्ला कर कहा: आ जाओ।
वह लड़की बोली, ये कैसी दुनिया है तुम्हारी! ये कैसा परियों का देश है!
ये कैसी मुश्किल है, मुसीबत है कि मैं सुबह से दौड़ रही हूं, सांझ हो गई लेकिन पहुंच नहीं पाती हूं। फासला बहुत कम है।
वह रानी हंसने लग गई और उसने कहा: हमारी दुनिया में ही ऐसा नहीं होता, तुम्हारी दुनिया में भी ऐसा ही होता है।
परियों के देश में ही ऐसा नहीं होता; मनुष्यों के देश में भी ऐसा ही होता है। लोग दौड़ते हैं। सुबह दौड़ना शुरू करते हैं, जीवन की संध्या आ जाती है। और वह पाते हैं।। जो उन्होंने पाना चाहा था।। वह अब भी दूर खड़ा है और बुला रहा है। फासला उतना ही है। फासले में कोई भेद नहीं पड़ता है।
इसमें मनुष्य की भूल, उसके श्रम और संकल्प की भूल नहीं है। इसमें भूल मात्र उसके दिशा की है। बाहर की दिशा कहीं पहुंचा नहीं सकती, क्योंकि बाहर की दिशा का कोई अंतिम बिंदु नहीं आता है, अंतस की दिशा कहीं पहुंचाती है। क्योंकि अंतस की दिशा मुझ पर आकर समाप्त हो जाती है। बाहर जाने वाली दिशा कहीं भी जा कर समाप्त नहीं होती, भीतर जाने वाली दिशा मुझ पर आकर समाप्त हो जाती है। मैं बिंदु हूं।। जहां वह दिशा पूरी हो जाती है।
अगर मैं भीतर की तरफ चलूं तो मैं अपने पर पहुंच जाऊंगा। और अगर मैं बाहर की तरफ चलूं तो मैं कहीं भी नहीं पहुंच पाऊंगा। और बड़े रहस्य की बात यह है कि जो अपने पर पहुंच जाते हैं, बड़े रहस्य की बात यह है कि वह उस छोटे से अणु को जान लेते हैं।। जो उनके भीतर है। उस चैतन्य के बिंदु को अनुभव कर लेते हैं।। जो वे हैं। वे सब जगह पहुंच जाते हैं, क्योंकि उस चैतन्य का अनुभव।। उस एक अणु का अनुभव उन्हें विराट प्रभु में प्रतिष्ठित कर देता है।
बाहर दौड़ कर कहीं भी नहीं पहुंच पाता, कोई उस सर्वांत की रेखा को नहीं
छू पाता। वह भीतर पहुंच कर स्वयं पर पहुंच जाता है। स्वयं पर पहुंच कर समग्र शक्ति के प्राणों को अनुभव कर लेता है। जो बाहर जाते हैं वह बाहर को तो खो ही देते हैं; भीतर को भी खो देते हैं। जो भीतर आते हैं, वे भीतर को तो उपलब्ध हो ही जाते हैं; साथ-साथ बाहर को उपलब्ध हो जाते हैं। स्वयं पर पहुंच कर मनुष्य आत्मा का अनुभव करता है। आत्मा का अनुभव उसे समस्त जगत में उसी आत्मा की परिव्याप्ति के बोध को देता है।। वह परिव्याप्ति का बोध परमात्मा का बोध है। स्वयं पर आकर आत्मा का अनुभव है, आत्मा का अनुभव उसे परमात्म-बोध में प्रतिष्ठित कर देता है।
स्वयं को पा कर सबको पा लिया जाता है, स्वयं को खो कर सब खो दिया जाता है। जो सबको पाने चलते हैं, वह स्वयं को तो पहले ही खो देते हैं; और सब कभी उपलब्ध नहीं होता। और जो सबकी फिकर छोड़ कर स्वयं को पाने चलते हैं, वह पहले स्वयं को तो पा ही लेते हैं; और उस स्वयं के भीतर से सबको पाने का सूत्र, आधार-बिंदु, आधार-भूमि उनकी पकड़ में आ जाते हैं। इसलिए यह दिखाई पड़ता है कि

जिनके पास कुछ नहीं, उनके पास सब कुछ मालूम होता है; और इसलिए यह अनुभव होता है कि जिनके पास सब है, उनके पास कुछ भी मालूम नहीं होता है।
महावीर के पास, बुद्ध के पास, या क्राइस्ट के पास।। क्या था? उपलब्धि
की भाषाओं में सोचें तो उनके पास कुछ भी नहीं, उन जैसे दरिद्र लोग इस जमीन पर कभी नहीं हुए। लेकिन अगर अंतस की भाषा में देखें तो उनके पास सब है। उनकी आंखें गवाही हैं, उनका जीवन गवाही है, उनका आचरण गवाही है, उनका उठना- बैठना, सोना-जागना गवाही है।। कि उनके पास सब कुछ था। सब कुछ होने की गवाही यह है कि ऐसे मनुष्य को कुछ भी पाने की चाह नहीं रह जाती। कुछ भी पाने की चाह का न रह जाना इस बात की सूचना है।। उसे सब उपलब्ध हो चुका है।
हमने दरिद्रों को सम्राट की तरह देखा है और सम्राटों को दरिद्रों की भांति देखा है। इस दुनिया में अगर सम्राट होने को अगर आप चुनते हैं, आप दरिद्र मरेंगे। और अगर आप दरिद्र होने को चुनते हैं, सम्राट होना सुनिश्चित है। यह जो दरिद्र होने का चुनाव मैं कह रहा हूं, उसका अर्थ हुआ: भीतर की तरफ आना, अंतस की तरफ आना। सम्राट होने का अर्थ है: बाहर की तरफ जाना। वहां विजय की पताकाएं गाड़नी।। बाहर के जगत में, और स्वयं के जगत में।। ये दो ही दिशाएं हैं। समाधि योग या ध्यान या धर्म स्वयं के भीतर जाने का विज्ञान है। कैसे हम स्वयं के भीतर प्रवेश कर सकते हैं?
मैंने कहा, मन उस बीच में खड़ा है, बाहर एक दिशा और भीतर एक दिशा है। अगर भीतर चलना है तो बाहर की दिशा से अपनी खूटियों को अलग कर लेना होगा। जब कोई नाविक किसी समुद्र में यात्रा को निकलता है तो इसके पहले कि वह पतवार चलाए, जरूरी है कि वह नांव की जंजीरों को खोल ले, जो कि तट से बंधी हैं। जो मनुष्य भीतर की तरफ जाना चाहता है, उसे बाहर के जगत से अपनी जंजीरों को खोल लेना पड़ेगा। और अगर वह जंजीरें खोलना भूल जाए तो भीतर कितनी ही दौड़-धूप करे, भीतर भी कहीं नहीं पहुंच सकेगा। बाहर इसलिए कहीं नहीं पहुंच सकता कि बाहर का कोई अंत नहीं है।
भीतर जो लोग चेष्टा करते हैं, वे अगर असफल होते हों तो उन्हें जानना चाहिए कि असफलता का कारण यह होगा कि उन्होंने बाहर से जंजीरें नहीं खोलीं। बाहर से हम किन जंजीरों से बंधे हैं। कौन सी जंजीरें हमें बांधे हैं? इसकी मैं चर्चा करूं उसके पहले एक छोटी सी कहानी कहूं, उससे मेरी बात समझ आ सके।
एक रात कुछ मित्रों ने देर तक शराब पी, फिर उन्होंने सोचा कि हम नाव पर जाएं और झील पर यात्रा करें। वे गए। (उन्होंने-कसैट में)वे नाव पर बैठे, उन्होंने पतवारें उठाईं, उन्होंने पतवारें चलाईं, कहा कि रात तक... वे बहुत देर तक।। पूरे चांद की रात थी; वे नाव चलाते रहे। और फिर जब सुबह की ठंडी हवाएं आने लगीं तो उन्हें खयाल आया कि अब तो सुबह होने को है। अब हम वापस लौट चलें, तो उनमें से एक ने कहा कि मैं जरा नीचे तट पर उतर कर देखूं कि हम कितनी दूर निकल आए हैं। रात भर यात्रा की है फिर हम वापस लौटें। उसने नीचे उतर कर कहा, और उसने चिल्ला कर कहाः मित्रों, भूल हो गई, हमें कहीं वापस लौटने का सवाल ही नहीं है, हम वहीं खड़े हुए हैं। हम नाव की खूटियों से जंजीर छोड़ना रात भूल गए। हमने पतवार तो चलाईं, हमने श्रम तो किया, लेकिन हम कहीं पहुंचे नहीं, क्योंकि नाव तो बंधी हुई है।
तो जो व्यक्ति भीतर के जगत में प्रवेश करना चाहे, अगर वह न समझ पाए कि किन खूंटियों से उसकी मन की जंजीरें बाहर से बंधी हैं, तो उसकी सब चेष्टा गर्त हो जाएगी, उसकी प्रार्थनाएं निष्फल हो जाएंगी, उसकी पूजाएं मिट्टी में मिल जाएंगी। उसकी साधना सिवाय विफलता के और कुछ भी नहीं लाएंगी। और तब एक और भी बड़ा फ्रस्ट्रेशन पैदा होता है, तब एक और भी बड़ी घबड़ाहट और बेचैनी पैदा होती है।
बाहर सफलता मिलती नहीं, और भीतर भी सफलता न मिले; तो आदमी इतना घबरा जाता है, इतना बेचैन हो जाता है, इतनी परेशानी में पड़ जाता है।। जिसका कोई हिसाब नहीं है। इस दुनिया में वे लोग जो बाहर असफल होते हैं।। उनका संताप, उनका एंग्विस इतना नहीं होता; जितना जो लोग भीतर की दुनिया में भी असफल हो जाते हैं।
उनकी पीड़ा को आप अनुभव नहीं कर सकते।

न मालूम देश के कोने-कोने में कितने साधुओं ने मुझसे एकांत में यह कहा
है कि हम बहुत बेचैन हैं, बहुत घबराए हुए हैं। बाहर की दुनिया हमने छोड़ दी, भीतर की दुनिया में कुछ मिलता नहीं मालूम होता। हम बहुत लटके हुए रह गए हैं, हम बहुत त्रिशंकु की स्थिति में हो गए हैं। हमें समझ में ही नहीं आता कि हमने कोई गलती तो नहीं कर ली है। कहीं यह तो नहीं हो गया है कि हमने भूल कर ली हो, बाहर की दुनिया ही ठीक रही हो? क्योंकि भीतर कुछ उपलब्ध नहीं होता, बाहर यह सोच कर कि कुछ उपलब्ध होगा नहीं।। छोड़ दिया। भीतर वर्षों से मेहनत करते हैं, कुछ उपलब्ध नहीं होता।
उन सबसे मैंने यह कहा कि थोड़ा अपनी नांव के नीचे उतर कर किनारे पर देख लें, कहीं जंजीरें बंधी होंगी। इसलिए पहुंचना भीतर नहीं हो पा रहा है।
तो कौन सी जंजीरें हैं? संक्षिप्त में मैं उनकी थोड़ी सी बात करूंगा। उससे ही समाधि योग को समझने में सहायता मिलेगी और भीतर के प्रवेश की संभावना का द्वार खुलेगा।
पहली बात, हम बाहर के जगत से किस बात से जुड़े हैं? एक क्षण को कल्पना करें, अगर मनुष्य के पास कोई भाषा न हो, और वाणी न हो, तो सब मनुष्य एक दूसरे से टूट जाएंगे। अगर मनुष्य के पास कोई भाषा न हो, और वाणी न हो तो सब मनुष्य एक-दूसरे से टूट जाएंगे, बाहर के जगत से उनका कोई संबंध नहीं रह जाएगा। मुखरता जगत से जोड़े हुए है, मौन जगत से तोड़ता है।
जिस व्यक्ति को भीतर प्रवेश करना हो, उसे मुखरता की जगह, वाणी की जगह।। मौन को साधना होगा। उसे शब्द की जगह निःशब्द को साधना होगा। उसे बोलने की जगह, न बोलने की दिशा में गति करनी होगी। क्योंकि हम जुड़ते हैं।।
भाषा से, बोलने से, वाणी से। बाहर से कौन जोड़े हुए है? शब्द जोड़े हुए है, वाणी जोड़े हुए है, भाषा जोड़े हुए है। तो जो व्यक्ति निरंतर-निरंतर वाणी से घिरा हुआ है, वह व्यक्ति क्रमशः यह भूल जाएगा कि मौन होने की भी एक कला है। चुप हो जाने का भी एक रहस्य है। जो लोग चुप हो जाते हैं, वे उन सत्यों को पा लेते हैं जिन सत्यों को बोल कर न बताया जा सकता है किसी को, न किसी के बोलने से कभी समझा जा सकता है।
पहली खूंटी जो बाहर के जगत से हमें जोड़े हुए है, वह वाणी की है। इसलिए समाधि योग का प्रथम चरण है मौन। बाहर के जगत के प्रति मौन को साधना होगा। थोड़ा हम यह समझ लें कि बाहर के जगत से हम इतने ज्यादा बातचीत में क्यों होना चाहते हैं?
क्या आपने कभी ख्याल किया है कि जब कोई आदमी पागल हो जाता है तो वह चौबीस घंटे बातचीत करने लगता है? क्या कभी यह ख्याल किया है कि कोई मौजूद न भी हो तब भी वह बातचीत किए जाएगा? आप तो जब कोई मौजूद होता है तब बातें करते हैं, पागल तब भी बात करता है जब कोई मौजूद नहीं होता।
लेकिन आप अपने में और उसमें बहुत ज्यादा फर्क मत समझना।
वह जो आदमी मौजूद है, जिसकी मौजूदगी में आप बात करते हैं, वह तो केवल बहाना है। आपको बात करनी ही है। वह जो आदमी मौजूद है जिससे आप बात कर रहे हैं, वह तो केवल बहाना है, आपको तो बात करनी ही है। वह न होगा तो दूसरा काम देगा, वह न होगा तो तीसरा काम देगा, कोई न कोई मिलेगा, कोई न कोई को आप पकड़ेंगे और बात शुरू करेंगे। उस बात करने में जिससे आप बात कर रहे हैं, उसका कोई मूल्य नहीं है सिवाय इसके कि जैसे खूंटी पर कोई कपड़ा टांग देता है। वैसे हर आदमी एक-दूसरे पर अपनी वाणी टांग रहा है, अपना विचार टांग रहा है। उसकी जो आकांक्षा है, वह उस दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है, प्रयोजन तो उसके भीतर चल रहे हैं।। वेग।। विचारों के। वह उनको किसी तरह खाली करना चाहता है, उन्हें फेंक देना चाहता है।
मैंने सुना है, पश्चिम के एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक जुंग के पागलखाने में दो पागल दाखिल हुए। वे दोनों विचारशील थे। दोनों पंडित थे। दोनों ने किताबें लिखी थीं। फिर वे पागल हो गए थे।
और अक्सर पंडित पागल हो जाते हैं।
असल में पांडित्य जो है पागलपन का ही एक प्रारंभिक रूप है। वे दोनों पागल हो गए थे। अक्सर विचारक पागल हो जाते हैं। क्योंकि विचार की प्रक्रिया अगर पूरी हो जाए तो पागलपन में परिणित हो जाती है। अगर विचार

बढ़ते चले जाएं और उनका तनाव बढ़ता चला जाए तो मस्तिष्क एक सीमा पर टूट जाता है। इसलिए पश्चिम के सारे विचारकों के जीवन में आप पाएंगे, अधिकतम विचारकों के जीवन में, वे कभी पागल हुए। बल्कि अब तो मुझे ऐसा लगने लगा कि अगर पश्चिम में कोई बड़ा विचारक पागल न हो तो समझना चाहिए बहुत बड़ा विचारक नहीं है।
तो वह पागलपन तो जरूरी है, क्योंकि अगर विचार पूरा बढ़ेगा, तो कहां ले जाएगा?
इसलिए मैं महावीर को, बुद्ध को, को, कृष्ण को विचारक नहीं कहता हूं।
ये विचारक नहीं हैं। क्योंकि ये पागलपन से बिल्कुल विपरीत छोर पर खड़े हैं, ये प्रज्ञा पर खड़े हैं। भारत का कोई भी आज तक साधक जिसकी प्रज्ञा जागृत हुई है, जिसने सत्य के बोध को अनुभव किया है, विक्षिप्त होते नहीं देखा गया।
जब कि पश्चिम में वहां आम रिवाज है और इसका फर्क है।। पश्चिम की सारी खोज विचार की है, भारत की सारी खोज निर्विचार की है। पश्चिम की सारी खोज वाणी की है; भारत की सारी खोज मौन की है।
यह मैं कह रहा था कि दूसरे से जब आप विचार करते हैं तो वह जुंग... कि वहां दो पागल जो विचारशील थे, वे भर्ती हुए। जुंग उनका निरीक्षण करता था। उसने एक दिन देखा, वह बहुत हैरान हुआ! उसने देखा, वे दोनों कमरे में बैठे हैं और जुंग खिड़की के पीछे से छिप कर उनकी बातें सुन रहा है। वे दोनों बातचीत कर रहे हैं। पहला बोलता है दूसरा चुप हो जाता है, जब दूसरा बोलता है तो पहला चुप हो जाता है। बिल्कुल ठीक-ठीक जब एक बोलता है, दूसरा बिल्कुल चुप होकर सुनता है। जब पहला बंद हो जाता है तो दूसरा बोलता है, लेकिन उनके बोलने का एक-दूसरे से कोई संबंध नहीं है। उन्हें जो बोलना है वे बोले जा रहे हैं। जो पहले ने बोला है उसके दूसरे के बोलने से कोई नाता, कोई रिश्ता नहीं है। उसे जो बोलना है वह बोले जा रहा है। लेकिन जब वह रुक जाता है तो दूसरा शुरू करता है, और जो दूसरा शुरू करता है उसका पहले से कोई संबंध नहीं है। जुंग बहुत हैरान हुआ, वह भीतर गया। उसने कहा कि मित्रों, यह मैं देख रहा हूं, आप लोग लेकिन बोलते वक्त बीच-बीच में चुप क्यों हो जाते हो? वे दोनों पागल हंसने लगे।
वे बोले: कनवरसेशन का नियम हमें मालूम है। बातचीत करने का क्या नियम है, वह हमें मालूम है? जब पहला बोलता हो तो दूसरे को चुप रहना चाहिए। इसलिए जब वह बोलता है मैं चुप हो जाता हूं, जब मैं बोलता हूं वह चुप हो जाता है। और आप भी अगर गौर करेंगे अपने भीतर, तो जब आप दूसरे से बातें कर रहे हैं तब आप केवल नियम की वजह से चुप हैं। आपके भीतर अपनी बात चल रही है। वह बाहर वाला आदमी बात कर रहा है, आप अपने भीतर बात किए जा रहे हैं। जब वह चुप हो जाएगा, तब आप शुरू करेंगे।। वहां से नहीं जहां उसने समाप्त किया है, वहां से।। जहां आपके भीतर की बात पहुंच गई है। उसने जहां समाप्त किया है वहां से आप शुरू नहीं करने वाले हैं। आप वहां से शुरू करेंगे जहां आपके भीतर का चलता हुआ सिलसिला पहुंच गया है। हां, बहाने के लिए कोई शब्द पकड़ लेंगे, कोई बात पकड़ लेंगे, खूंटी की तरह।। बस वह एक इशारे की तरह काम देगा, ताकि यह न मालूम पड़े कि आप पागल हैं। और फिर आप अपनी बात शुरू कर देंगे, वह बात बिल्कुल आपकी अपनी है।
सारी दुनिया में यह जो, यह जो पागलपन है बात करने का, इसके पीछे कुछ कारण हैं। इसके पीछे कुछ बुनियादी कारण हैं। सबसे बड़ा बुनियादी कारण यह है कि हर आदमी इसलिए बातचीत करना चाहता है, बातचीत में वह अपने को भूल जाता है। अगर आपको बिल्कुल मौन होने का मौका मिल जाए, आप बहुत घबड़ा जाएंगे। क्योंकि आपको अपनी सारी असलियत, अपने जीवन की सारी व्यर्थता इतने जोर से दिखाई पड़ेगी कि आपको ऐसा लगेगा मैं क्या करूं, क्या न करूं?
अगर हर आदमी को कोई तरकीब हो मौन कर देने की, उसे मौन कर दिया जाए, वह इतना घबड़ा जाएगा, जिसका कोई हिसाब नहीं। बातचीत में भूले रहता है, अखबार पढ़ने में भूले रहता है। इधर-उधर जा कर रेडियो सुनने में, सिनेमा देखने में भूला रहता है। हर आदमी पूरे जीवन यह कोशिश कर रहा है कि किसी भांति स्वयं को भूलने की कोई व्यवस्था हो जाए। खुद का पता न चले।

इसलिए नींद में सुख मिलता है, क्योंकि खुद का कोई पता नहीं चलता। इसलिए नशे में सुख मिलता है, क्योंकि खुद का कोई पता नहीं चलता। इसलिए संगीत में सुख मिलता है, क्योंकि खुद को हम भूल जाते हैं। इसलिए उन सारी चीजों में सुख मिलता है जो किसी न किसी भांति इंटॉक्सिकेंट हैं। जो किसी न किसी भांति मादक हैं, और बातचीत भी एक मादकता है। एक नशा है।
आप, मैं समझता हूं मेरी बात को अनेक उदाहरणों से समझ लेंगे जो आपको खयाल में आएंगे। आपके चारों तरफ ऐसे लोग हैं जिनको कि बातचीत नशा है, लेकिन उनकी फिकर छोड़ दें, अपने बाबत स्मरण करें। आपको पता चलेगा किसी न किसी मात्रा में बातचीत आपको भी नशा है। उसके बिना आप जी नहीं सकते। अगर आपको एक, एक एकांत में, अकेले में बंद कर दिया जाए और कहा जाए और सब सुविधाएं होंगी, बातचीत भर की सुविधा नहीं होगी। आप कहेंगे, मैं सब सुविधाएं छोड़ने को राजी हूं। लेकिन बातचीत की सुविधा रहने दी जाए।
एकांत में आप घबराते क्यों हैं? भीड़ से बाहर जाने में डर क्यों लगता है? सारी दुनिया भीड़ की तरफ बढ़ती जा रही है, आप चौबीस घंटे एक भीड़ से दूसरी भीड़ में, दूसरी से तीसरी भीड़ में।। इस भांति जाते हैं जब तक, जब तक कि नींद न आ जाए। तब तक आप एक भीड़ से दूसरी भीड़ में बदल रहे हैं।
जिस व्यक्ति को स्वयं के भीतर जाना हो, उसे भीड़ से थोड़ा बाहर आना होगा। उसे भीड़ में जाने की बजाय एकांत में जाना होगा। उसे सबके बीच अपने को भूलने की बजाय अकेले होकर अपने को स्मरण करना होगा। और इसलिए बातचीत नहीं, वाणी नहीं, मौन भीतर ले जाता है; वाणी बाहर ले जाती है।
मौन का अर्थ यह नहीं है कि आप चौबीस घंटे चुप हो जाएं, वह मैं नहीं कह रहा हूं। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि आप चौबीस घंटे चुप हो जाएं। मैं आपको यह कह रहा हूं कि बातचीत आपकी उतनी ही हो, जितनी कि पागलपन से मुक्त है। जिसके लिए भीतर वेग नहीं है, आवेग नहीं है कि मैं करूं, किसी से यह बात करूं, और अगर एक ऐसा दिन आ जाए कि कोई करने को न मिले तो फिर आप दीवारों से करें।। लेकिन करें। उस बात को करना ही पड़ेगा। यह जो स्थिति है, यह जो वेग है, यह जो बातचीत की मादकता है, इसे छोड़ देने का नाम मौन है।
मौन होने का मतलब नहीं कि आप चुप बैठ गए हैं कि अब कोई कुछ कहता है... अभी मैं बाहर था। वहां एक सज्जन मेरे साथ थे। उन्होंने आठ दिनों के लिए मौन ले रखा है। लेकिन उनका मौन काहे का है! वह हर चीज इशारे से, हर चीज लिख कर, सब कर लेते हैं।। पूरा का पूरा। वह किसी भी बात पर चुप नहीं रह सकते। मेरे साथ कार में बैठे हुए थे। किसी व्यक्ति ने कहा कि फलां टॉकिज में फलां सिनेमा लगा हुआ है।
उन्होंने फौरन कागज पर लिख कर दिया।। कि गलत, वहां दूसरी फिल्म लगी हुई है।
अब यह आदमी मौन नहीं है, इसके मौन का कोई सवाल ही नहीं उठ रहा। अब इतनी अनावश्यक बात कि किस टॉकिज में कौन सा चित्र लगा हुआ है, इसको भी यह बरदाश्त नहीं कर सका, उसने कहा कि बिल्कुल गलत।
यह जो, यह जो, यह जो पागलपन है, यह पागलपन भीतर क्षीण हो, इसका स्मरण साधक को रखना होगा। उसे यह देखना चाहिए कि मेरी बात कितनी जरूरी है, कितनी आवश्यक है? कितने दूसरे के उपयोग में है? कहीं वह मेरे पागलपन से तो नहीं निकलती, वह दूसरे की आवश्यकता से निकलनी चाहिए। बस इतना ही मैं फर्क करता हूं पागल की बातचीत में और उनकी बातचीत में, जो कि जानते हैं, जो कि वह पागल नहीं हैं। उनकी बातचीत दूसरे की आवश्यकता से निकलती है, पागल की बातचीत अपनी आवश्यकता से निकलती है, वह उसकी मजबूरी है।
एक तो यह है कि मुझे जरूरत हो इस रूमाल की।। मैं उठाऊं।। यह एक बात है।
और मुझे कोई भी जरूरत नहीं है इस रूमाल को उठा कर यहां रखूं, उस सामान को उठा कर वहां रखूं, कोई जरूरत नहीं है। लेकिन मुझे एक भीतरी वेग है कि मैं चीजों को यहां-वहां उठा कर रखता हूं तो आप कहेंगे आप पागल हैं। अगर मैं जरूरत से उठा रहा हूं तो ठीक है, अगर गैर जरूरत उठा कर रख रहा हूं तो पागल हूं।
बुद्ध के पास एक व्यक्ति गया। वह बैठ कर अपने पैर का अंगूठा हिला रहा था। बुद्ध ने कहाः मित्र, जरा देखो तुम्हारे पैर का अगूंठा हिल रहा है। उस

आदमी ने जल्दी से पैर का अगूंठा रोक लिया। बुद्ध ने पूछा कि क्या मैं यह पूछूं कि अंगूठा किसलिए हिला रहे थे?
उस आदमी ने कहा: यूं ही हिलता था।
बुद्ध ने कहाः तुम्हारा अंगूठा, और यूं ही हिले।। यह पागलपन का लक्षण है। यूं ही क्यों हिलेगा?
आपको पता है: आप यूं ही सिर हिला रहे हैं, यूं ही पैर हिला रहे हैं।।
क्यों?
जो आदमी यूं ही सिर हिला रहा है, यूं ही पैर हिला रहा है, ऐसे ही कुछ कर रहा है, ऐसे ही हिल-डुल रहा है।। इसका मन भी ऐसे ही हिलता-डुलता रहेगा, इसकी वाणी भी ऐसे हिलती-जुलती रहेगी। इसके करने में कोई तुक और अर्थ और कोई संगति नहीं है। बस इसके भीतर तो कुछ वेग हैं जो इसे पागल किए जा रहे हैं, कुछ भी किए जा रहा है। इसकी सारी की सारी क्रियाएं विक्षिप्त हैं।
यह विक्षिप्तता क्षीण हो और अपनी वाणी, अपने विचार, अपने व्यवहार के प्रति यह सम्यक बोध हो कि जो आवश्यक है वह हो, जो अनावश्यक है उसे क्षीण होना चाहिए। अगर यह सजगता हो, तो आपको खुद ही अपना पागलपन दिखाई पड़ेगा। खुद ही आप सुबह से उठ कर बगल के पड़ोसी के घर में चले जा रहे हैं।।
किसलिए? आपने अखबार पढ़ लिया है असल में। और अब आपको उसे कुछ न कुछ बताना है जो आपने अखबार में पढ़ लिया है। आप उठे हैं, चले जा रहे हैं। और यह बिल्कुल अनावश्यक है। वहां जा कर आप रास्ते में हैं कि कोई मौका मिले कि मैं कहूं।। इसको जरा देखें अपने भीतर, कि आप बातचीत करने के लिए कैसे पीड़ित हैं?
मौन का अर्थ है: यह जो पीड़ितपन है, यह जो विक्षिप्तता है, इसे क्षीण करने की जरूरत है। बाहर से बहुत संबंध एकदम शून्य हो जाएगा।
अगर दुनिया में अधिकतम लोग केवल उतना बोलते हों, जितनी की बाहर की परिस्थिति की जरूरत है, और चुप रह जाते हों।। इस दुनिया में बहुत उपद्रव बंद हो जाएंगे। बहुत झगड़े, बहुत फसाद, बहुत संघर्ष बंद हो जाएंगे। इस दुनिया में शायद बहुत शांति इकट्टी, घनीभूत हो जाए। ये ही लोग हैं जो निरर्थक बोल रहे हैं, जो निरर्थक वाणी का उपयोग कर रहे हैं; ये ही लोग हैं जो दुनिया की आधी विपत्तियों और उत्पात के कारण हैं। लेकिन दुनिया के लिए हों, ये खुद के लिए बहुत उत्पात के कारण हैं। इनका भीतर की तरफ गमन नहीं हो पाता। क्योंकि बातचीत के लिए दूसरे की जरूरत है और मौन के लिए केवल अपने होने की जरूरत है। बातचीत के लिए हमेशा दूसरा अनिवार्य है, मौन के लिए कोई अनिवार्य नहीं।
तो जिसे अपने भीतर जाना है, बातचीत उसका रास्ता नहीं हो सकता। मौन, वाणी नहीं।। मौन, उसका रास्ता होगा। मौन को साधने का, मौन को स्मरणपूर्वक व्यवस्थित करने का, मौन की तरफ क्रमशः गति रखने का और बोध रखने का। फिर यह भी हो सकता है आप बाहर बोलना बंद कर दें और भीतर बोलना चले तो वह मौन नहीं होगा। बाहर बोलना कम हो, क्षीण हो।। यह प्राथमिक चरण है। दूसरा महत्वपूर्ण चरण यह कि भीतर व्यर्थ की बातचीत बंद हो, आपके भीतर चौबीस घंटे चल रही है। उठते-बैठते आप... कुछ न कुछ भीतर चल रहा है, कर कुछ रहे हैं, मन कुछ और कर रहा है।
अगर आप थोड़े सजग हों तो आपको भीतर लगेगा कि यह मन कैसा पागल है? यह क्या हो रहा है? अगर आपसे मैं कहूं कि थोड़ी देर जो भी मन में चलता हो, एक कागज उठा कर ईमान से लिखते चले जाएं, तो आपको बड़ा डर लगेगा कि इसे कोई पढ़ न ले। कि आपको लगेगा कि इसे कोई पढ़ेगा तो क्या सोचेगा? मुझे तो एक समझदार आदमी समझा जाता है, ये बातें मेरे भीतर कैसे चलती हैं?
अगर दुनिया के हर आदमी के मस्तिष्क को खोलने का कोई उपाय हो, तो हर आदमी हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगेगा कि कृपा कर मेरे मस्तिष्क को मत खोलिए। कहीं सबको पता न चल जाए कि इसके भीतर ये बातें चलती हैं। हर आदमी के भीतर मस्तिष्क बिल्कुल ही पागल स्थिति में है। इस पागल स्थिति को भी सजगता से, बोधपूर्वक यह देखें कि व्यर्थ बात चल रही है।। तत्क्षण उसे छोड़ दें। स्मरणपूर्वक देखें ये व्यर्थ की बात चल रही हैं।। उसे छोड़ दें। उसके

धागे को हाथ से छोड़ दे, क्योंकि कोई बातचीत आपके बिना सहारे के नहीं चल सकती। आपका सहयोग है इसलिए चलती है।
आपका असहयोग हो।। बंद होना पड़ेगा, टूटना पड़ेगा, जाना पड़ेगा। जिस बात
और जिस विचार के पीछे आपका सहयोग है, वही चल सकता है आपके भीतर; और कुछ नहीं चल सकता। आपके भीतर, आपके बिना सहयोग के न कोई वासना चल सकती है, न कोई विचार चल सकता है।
इसे स्मरण रखें, आपका सहयोग आपकी हर स्थिति में है। अगर आप अपने सहयोग
को खींच लें, और भीतर असहयोग साधें, तो जो भी गलत है उसके प्राण अपने से निकल जाएंगे। उसके प्राण आपके सहयोग में है, वह आपके कोपरेशन से चलता है। तो जो-जो बातें व्यर्थ मालूम पड़ती हों भीतर, उनसे अपने सहयोग को खींच लें, अलग कर लें। वे गिरने लगेंगी, वे टूट जाएंगी। ऐसा क्रमशः अभ्यास, क्रमशः साधना से, धीरे-धीरे भीतर भी मौन आना शुरू हो जाता है।
बाहर के जगत के प्रति मौन का भाव।। पहला चरण। बाहर वाणी असम्यक। अनावश्यक न हो, भीतर अनावश्यक व्यर्थ की विचारशृंखलाएं न चलें।। उसके साथ असहयोग, उसके लिए असहयोग। दूसरी खूंटी, जो और भी गहरी है, और वह है मैंने कहा: एक तो मौन साधना, दूसरा शांति साधना। मौन का संबंध बाहर के जगत से है।
बाहर के प्रति मुखरता को क्षीण कर देना, बाहर के जगत से विचार से संबंधित होने को क्षीण कर देना, और शांति का संबंध स्वयं के भीतर एक भाव-बोध से है। जीवन में बहुत कुछ हो रहा है।
सुकरात जब मरने लगा और जब उसे जहर दिया जाने लगा, तो उसके मित्रों ने कहाः उपाय हो सकता है कि हम आपको बचा कर ले चलें। और आपको हम जेल तोड़ कर आपको निकाल तो ले सकते हैं, व्यर्थ अपने हाथ से मृत्यु को क्यों भरम करना। सुकरात ने कहा: क्या तुम मुझे यह विश्वास दिलाते हो कि फिर तुम मुझे मरने नहीं दोगे? सुकरात ने कहाः क्या तुम मुझे विश्वास दिलाते हो कि मैं जेल से भाग जाऊं, मुझे जहर न दिया जाए तो फिर तुम मुझे मरने नहीं दोगे?
वे मित्र बोले: यह तो मुश्किल है, यह हम कैसे विश्वास दिला सकते हैं? मरना तो पड़ेगा ही।
सुकरात ने कहाः जब मरना ही पड़ेगा तो फिर मृत्यु की बात मुझे अशांत नहीं करती। सुकरात ने कहा: जब मरना ही पड़ेगा तो फिर मृत्यु की बात मुझे अशांत नहीं करती। फिर मृत्यु सामने खड़ी हो तो मैं शांत रहूंगा, जब मरना ही पड़ेगा, जब कोई विकल्प ही नहीं है, तो फिर मैं शांत हूं। मैं फिर मृत्यु के प्रति समभाव रख पाता हूं।
शांति का अर्थ है: जीवन के प्रति जो हो रहा है बाहर के जगत में, उसके प्रति अनुद्विग्न चित्त की दशा। क्योंकि जो भीतर उद्विग्न हो जाएगा, उद्विग्नता मनुष्य को फिर बाहर फेंक देती है। मनुष्य की चेतना को बाहर फेंकने के जो तूफान हैं।। वे उद्विग्नता के हैं। जैसे ही आप उद्विग्न हुए, आप बाहर फेंक दिए जाते हैं। जो जितना उद्विग्न होता है, उद्विग्नता की लहरें उतनी ही दूर उसे बाहर फेंक देती हैं। जो जितना अनुद्विग्न है, जो जितना शांत है, उतना ही बाहर की लहरें उसे कंपित नहीं कर पाती हैं।
बुद्ध एक गांव से निकले, कुछ लोगों ने उन्हें गालियां दीं, कुछ लोगों
ने गांव के बाहर जा कर अपमान किया। बुद्ध ने कहाः मित्रों, तुम्हारी बात पूरी हुई हो तो मैं जाऊं, मुझे दूसरे गांव पहुंचना है।
लोगों ने कहाः यह कोई बात है, हमने गालियां दी हैं।
बुद्ध ने कहाः तुमने गालियां दी होंगी, लेकिन मैंने वर्षों हुए, तब से गालियां लेना बंद कर दिया।
उन्होंने कहाः गालियां लेना भी कोई बंद कर सकता है?
बुद्ध ने कहाः निश्चित, मैंने उन सारी चीजों को लेना बंद कर दिया है
जो मेरे भीतर उद्विग्नता पैदा करती थीं। क्योंकि देने का हाथ तुम्हारे बस में है, लेकिन लेना न लेना हमेशा मेरे बस में है। तुमने गालियां दी, हम क्षमा चाहते हैं, हम लेने में असमर्थ हैं। अपनी गालियां वापस ले जाओ। क्योंकि दूसरे गांव में मैं अभी गया था, वे मेरे लिए बहुत से मिष्ठान लाए थे। मेरा पेट भरा था। मैंने कहाः मित्रों, मेरा पेट भरा है, मैं लेने में असमर्थ हूं। वे थालियां वापस ले गए। जैसे वे अपनी थालियां वापस ले गए, मैं

दुखी हूं तुम्हें भी अपनी गालियां वापस ही ले जानी पड़ेंगी। तुम बिल्कुल गलत आदमी के पास आ गए हो।
चित्त में शांति का अर्थ है: बाहर के जगत में जो भी हो रहा है, उसमें
से निरंतर आप पर आघात पड़ रहे हैं। जब तक जीवन है, तब तक आघात है। तब तक हवाओं के थपेड़े आपको लगेंगे, बाहर से क्रोध के तूफान आएंगे, बाहर से अपमान आएगा, बाहर से असफलता आएगी, दुख आएंगे, पीड़ाएं आएंगी।। वह सब आप पर आक्रमण करेंगी। अगर आप उनसे उद्विग्न होते हैं, तो वे सफल हो जाती हैं और आपको बाहर ले जाती है। अगर आप अनुद्विग्न खड़े रहते हैं और कहते हैं, क्षमा करें, मैं उस कुछ को भी लेने में समर्थ नहीं हूं, "उस कुछ" को भी लेने में समर्थ नहीं हूं।। जो मुझे बाहर फेंक देता है।
तो आज नहीं कल।। यह बोध, यह अस्वीकार, यह इंकार... मैंने सुना है कि जो मनुष्य किन्हीं चीजों को इंकार करने में असमर्थ है, जिसे सब चीजें लेनी ही पड़ती हैं, जो किसी भी चीज को अस्वीकार करने में असमर्थ है, उस मनुष्य से कमजोर और दूसरी क्या, क्या स्थिति होगी! मैं आपको गाली दूं तो आप लेते हैं, प्रेम दूं तो आप लेते हैं, घृणा दूं तो आप लेते हैं; दुनिया जो दे आपके दरवाजे खुले हैं।। आने दो। आपके भीतर कोई रेसिस्टेंस, कोई रुकावट, कोई नियंत्रण, कोई इंकार... कि कचरा मेरे घर में मत फेंको, यह तो आप कह देते हैं। अगर पड़ोसी आपके घर में कचरा फेंके तो आप खड़े हो जाएंगे लड़ने को कि कचरा मत फेंको। कचरे का भी इतना आप प्रतिरोध करते हैं। लेकिन एक आदमी गालियां आपके भीतर फेंक देता है, आप बड़े प्रेम से संजो कर रख लेते हैं कि उसने मुझे गालियां दी, अब रख लो। जब कोई गालियां देता है तो आप सम्हाल कर रख लेते हैं, और कचरा कोई फेंके तो लड़ते हैं।
कचरा कोई फेंके तो क्या बिगाड़ लेगा, कचरा फेंके तो क्या बिगड़ जाएगा! लेकिन जब कोई गालियां सम्हाल कर भीतर रख लेता है तो इतना बिगड़ जाता है, जिसका हिसाब नहीं। क्योंकि वे गालियां उसे बाहर ले जाने लगती हैं। जो भी उद्विग्न होता है।। बारह से, वह बाहर से लिया जाता है। बाहर से उद्दिग्न होने का अर्थ है: बाहर चले जाना। बाहर से अनुद्विग्न होने का अर्थ है: भीतर बने रहना।
तो दूसरा सूत्र हैः बाहर की सब स्थितियों में समता से शांति को बनाए रखना। और यह कठिन नहीं है। अगर हमें चीजों के सुदंर पहलू दिखाई पड़ने लगें, तो यह कठिन नहीं है। अगर हमें चीजों के भीतर अपनी शांति को, अनुद्विग्नता को बनाए रखने के सूत्र दिखाई पड़ने लगें तो यह कठिन नहीं है।
एक संध्या जोर की आंधी आई और एक फकीर का, एक झोपड़े का आधा छप्पर उड़ा कर
ले गई। वह सांझ को लौटा। आषाढ़ के दिन, पानी गिरने को बादल घिरे हो गए हैं। उसका साथी भी वापस लौटा। उसका साथी देख कर बोला कि वाह! हे प्रभु, यह कैसा अन्याय है कि हम गरीबों के इस दरिद्र झोपड़े को, तुमने उसके छप्पर को आधा उड़ा दिया, अब वर्षा में क्या होगा? और हम भिखारी अब क्या करेंगे इस वर्षा में?
उसने परमात्मा को कहा कि तुमने बहुत अन्याय किया, कैसे परमात्मा हो?
और दूसरा फकीर चुपचाप खड़ा रहा। उसने ऊपर हाथ जोड़े, उसकी आंखों में बड़ी कृतज्ञता थी। उसकी आंखों में बड़ी कृतार्थता थी।
उसने कहा: हे परमात्मा! आंधियों का क्या भरोसा था, पूरा झोपड़ा भी उड़ा
ले जा सकती थीं? आंधियों का क्या भरोसा, क्या विश्वास पूरा छप्पर भी ले जा सकती थीं? धन्य है तेरी कृपा कि आधा छप्पर तूने बचा लिया। वर्षा निकल जाएगी। रात उसने एक गीत लिखा और उस गीत में उसने लिखा है।।
कैसी सुख की होंगी ये रातें!
चांद निकलेगा।
आधे में हम सोएंगे, आधे में चांद दिखाई पड़ेगा।
कैसी सुख की होगी यह बरसात!
आधे में हम सोएंगे, आधे में बूंदें टपकेंगी।
उनका संगीत सुनाई पड़ेगा।
आधे में हम, आधे में वर्षा,
धन्य हैं परमात्मा!

यह भी एक दृष्टि है। और जिन्हें जीवन में अनुद्विग्नता साधनी हो उनकी यही दृष्टि है। यह आस्तिक की दृष्टि है। यह साधक की दृष्टि है कि आधा छप्पर उड़ गया तो वह कहेगा: धन्य है, आंधियां पूरा ले जा सकती थीं। आधे को छोड़ा है, प्रभु की कृपा है। यह उसे अनुद्विग्न करेगा, शांत करेगा।
वह नास्तिक की दृष्टि है। उद्विग्न होने वाले की दृष्टि है, बाहर जाने वाले की दृष्टि है। वह चिल्लाया।। अन्याय हो गया। अन्याय हो गया कि वर्षा आने को है और छप्पर आधा टूट गया, अब क्या होगा? वह उद्विग्न होगा, वह पीड़ित होगा।
वे दोनों साधु उसी मकान में रहते थे। उस रात वे दोनों साधु उसी झोपड़े में सोए। एक रात भर बेचैन था।। सो नहीं सका, क्योंकि वर्षा आने को है, आधा छप्पर उड़ गया। दूसरा उस रात बड़ी गहरी नींद में सोया, कि परमात्मा की दया है, कि आधा छप्पर बच गया।
इतना ही सूत्र है। जब आपका आधा छप्पर उड़े, और स्मरण रखें, पूरा छप्पर जीवन में कभी किसी का उड़ता नहीं है। जब भी उड़ता है, आधा ही उड़ता है। पूरा उड़ ही नहीं सकता, नहीं तो आप फिर जिंदा ही नहीं रह सकेंगे। स्मरण रखें, जब भी छप्पर उड़ता है आधा उड़ता है।
और जो दो तरह के लोग होते हैं, जो रात शांति से सोते हैं, या फिर रात बेचैनी से सोते हैं। जो बेचैनी से सोते हैं वे बाहर फेंक दिए जाते हैं; जो शांति से सोते हैं वे भीतर प्रवेश कर जाते हैं।
एक सूत्र हैः मौन। दूसरा सूत्र हैः शांति।
मौन और शांति इन्हें जो साधता है उसके लिए तीसरा सूत्र हैः साक्षीभाव।
जो इन दो को साधता है वह तीसरे सूत्र को, अवेयरनेस को, अपसमर्थता को, जागरूकता को या साक्षी चैतन्य को साध पाता है।
साक्षी चैतन्य का अर्थ है कि मैं केवल प्रत्येक स्थिति में, प्रत्येक घटना में मात्र चेतना मात्र हूं, साक्षी मात्र हूं, केवल देख रहा हूं। और यह सच है। अगर मेरा पैर तोड़ दिया जाए तो यह भ्रम है, मुझे लग रहा है कि मेरा पैर टूट गया, सत्य केवल इतना है कि मैं ये देख रहा हूं कि पैर तोड़ दिया गया। एपिटेक्टस करके यूनान में एक साधु हुआ। गुलामों के एक बाजार में उसको बेचा गया।
उन दिनों तो गुलाम बिकते थे। बाजार भरते थे। जानवरों की तरह आदमी बेचे जाते थे।
एपिटेक्टस बड़ा स्वस्थ और सुंदर साधु था, नंगा घूमता था। कुछ लुटेरों
ने उसे पकड़ लिया और उन्होंने कहाः हमारे साथ चलो।
उसने पूछाः कहां ले चलते हो, चलें।
क्योंकि क्राइस्ट का एक वचन है कि कोई तुम्हारा कोट छीने तो कमीज भी
दे देना। पता नहीं उसे कमीज की भी जरूरत हो। क्राइस्ट का एक वचन है कोई तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, तो दूसरा सामने कर देना, पता नहीं इतने में उसका क्रोध अभी न निकला हो।
तो उन एपिटेक्टस को डाकुओं ने पकड़ा और उन्होंने कहा कि हमारे साथ चलो।
एपिटेक्टस ने कहाः चलो, कहां चलते हो? वे भी बहुत हैरान हुए! उन्होंने जंजीरें बांधी। वह हंसने लगा।
वे बोलेः क्यों?
उसने कहाः हम तो यूं ही चले चलते थे, जंजीरें बांध कर खर्च क्यों करते
हो व्यर्थ मेरे ऊपर। हम तो चलते हैं। हम तो तुम्हारे प्रेम से बंधे हैं, तुमने कहा कि हमारे साथ चलो। वे बहुत हैरान हुए कि हम डाकू हैं और ये पागल प्रेम से बंध गया! इससे प्रेम हमारा क्या हो गया। लेकिन ले गए उसे। उसे बीच बाजार में जब खड़ा किया तो सारे खरीददारों की नजर उस पर पड़ी।। वैसा सुंदर आदमी, वैसा शांत आदमी। और उसमें किट्टी पर खड़े होकर जब उसकी नीलामी की जाने लगी तो उसने चिल्ला कर कहा कि इस बाजार में ऐसा दुबारा मुश्किल से होगा। एक मालिक गुलामों के बीच बिकने आया है। तो कोई गुलाम की मर्जी हो तो इस मालिक को खरीद ले। लोग बहुत हैरान हुए कि यह पागल है!

एक राजा ने कहाः आदमी बहुत बढ़िया है, कुछ अजीब विचार का आदमी मालूम होता है। खरीद लिया, जो भी दाम थे दे दिए। खरीद कर उसे ले चला। रास्ते में उससे पूछा कि तुमने यह क्यों कहा कि तुम मालिक हो?
एपिटेक्टस ने कहाः इसलिए कि मुझे कोई गुलाम बना सके, यह संभव ही नहीं है। जब उन्होंने मुझसे कहा चलो, हमने कहा: चलें। जब वह मुझे हाथों में जंजीरें डालने लगे तो हम भी देख रहे थे कि वह जंजीरें डाल रहे हैं और वह भी देख रहे थे। मुझ पर कोई जंजीरें नहीं डाली गई थीं। जिस देह पर डाली गई थी, वह मैं नहीं हूं। क्योंकि हम तो मालिक हैं।। पता है। क्योंकि देह से जिस दिन हमने अपना संबंध तोड़ लिया, उसी दिन मालिक हो गए। अब गुलाम होने का या बनाने का कोई उपाय नहीं है। जिस आदमी ने भीतर की उस सत्ता को जान लिया, वह स्वतंत्र हो गया। और स्वतंत्र का अर्थ ही नहीं होता, स्व को जाने बिना कोई स्वतंत्र हो नहीं सकता। उसके पहले सब गुलामी के रूपांतरण हैं, एक गुलामी से दूसरी, दूसरी से तीसरी।
उस राजा ने कहाः ऐसा है कि तुम साक्षी हो। उसने अपने दूसरे गुलामों को कहा, इसके पैर तोड़ दो। तो दो गुलाम उसका पैर तोड़ने लगे।
उस एपिटेक्टस ने कहाः देख, तूने इस शरीर पर बहुत पैसा खर्च किया। अगर
इस भांति पैर मरोड़ा गया तो मैं कह देता हूं पैर टूट जाएगा। उस एपिटेक्टस ने कहाः देख, तूने इस शरीर पर बहुत पैसा खर्च किया है, उसका काम ले ले। अगर इस भांति पैर मरोड़ा गया तो पैर टूट जाएगा, मैं कहे देता हूं।
राजा ने अपने गुलामों को कहाः टूटने दो।
पैर जब टूट गया तो एपिटेक्टस ने बोलाः देख, पैर टूट गया।
राजा बोलाः तो यूं क्यों कहते हो कि पैर टूट गया, यह क्यों नहीं कहते
हो कि मेरा पैर टूट गया?
एपिटेक्टस ने कहाः मेरा तो इस जगत में कोई कुछ भी नहीं तोड़ सकता है। मैं देख रहा हूं कि पैर टूट गया, मैंने पहले ही कहा था कि पैर टूट जाएगा। अब मैं देख रहा हूं कि यह देह लंगड़ी हो गई, जिसके दो पैर थे अब एक रह गया है। तीसरा सूत्र हैः साक्षीभाव। शांति को और मौन को जो साध लेता है वह साक्षीभाव को साध सकता है। जीवन में जो भी हो रहा है, हम मात्र उसके द्रष्टा हैं। हम केवल देख रहे हैं। हम केवल चैतन्य पुरुष हैं जो उसको देख रहे हैं और जान रहे हैं। और ये सच है, यही सत्य है। लेकिन क्रमशः जब साक्षीभाव में प्रतिष्ठा होगी तो इस सत्य का उदघाटन होता है।
मौन, शांति और साक्षीभाव तीन की सम्यक साधना मनुष्य को समाधि में ले जाती है। समाधि का अर्थ मेरा ऐसा नहीं है कि कोई घंटे भर बैठा है, और समाधि में हो गया। वह सब ऑटो-हिप्नोटिक, वे सब आत्म-सम्मोहन की दशाएं हैं। वे कोई समाधियां नहीं हैं।
सम्यक समाधि का अर्थ हैः चौबीस घंटे, सतत, अखंड रूप से व्यक्ति का आत्म-भाव में प्रतिष्ठित हो जाना। मूर्च्छित हो जाना एक बात है अर्थ है चौबीस घंटे, सतत, अखंड रूप से व्यक्ति का आत्म-भाव में प्रतिष्ठित हो जाना। मूर्च्छित हो जाना एक बात है। कि कोई मंत्र जपते-जपते मूर्च्छित हो जाए। मंत्र जपने से अक्सर मूर्च्छा आ जाती है। क्योंकि कोई भी एक चीज को रिपीट करें, एक शब्द को बार-बार दोहराएं, तो मन सो जाता है और मूर्च्छा आ जाती है। उस मूर्च्छा को आप समाधि मत समझ लेना। कोई जमीन में पड़ा रहे पंद्रह दिन और जिंदा निकल आए, उसको समाधि मत समझ लेना। ये सब आत्म-सम्मोहन की दशाएं हैं। समाधि।। सम्यक समाधि तो अखंड है और साक्षीभाव में, आत्म-भाव में प्रतिष्ठित होने में है। और वह इन तीन सूत्रों से क्रमशः फलित होती है।
और जब समाधि मिलती है, जब वह दशा मिलती है जब कि व्यक्ति स्वयं में प्रतिष्ठित हो जाता है, तो उसके जीवन में अनंत आनंद के, अनंत सौंदर्य के, अनंत सेवत्व के द्वार खुल जाते हैं। उसके सारे जीवन में क्रांति हो जाती है, वह दूसरा मनुष्य हो जाता है। उसका दूसरा जन्म हो जाता है। अभी हमारा जो जन्म है वह प्रकृति में हुआ है, तब जो जन्म होता है वह परमात्मा में हो जाता है। एक जन्म है जो प्रकृति में हुआ है, फिर एक जन्म है जो परमात्मा में हो जाता है।

जो प्रकृति के जन्म पर रुक जाते हैं वे अभागे हैं, जो परमात्मा के जन्म तक पहुंच जाते हैं।। सौभाग्य केवल उन्हीं का है। प्रभु वैसा सौभाग्य सभी को दे यह कामना करता हूं।

मेरी इन बातों को इतने प्रेम से सुना है, उससे अनुगृहीत हूं। सबके भीतर बैठे परमात्मा को मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

धर्म की यात्रा
चौथा प्रवचन

सुख की कामना दुख लाती है

खोज, क्या जीवन में आप पाना चाहते हैं? खयाल आया उसी संबंध में थोड़ी आपसे बातें करूंगा तो उपयोगी होगा।
मेरे देखे, जो हम पाना चाहते हैं उसे छोड़ कर और हम सब पाने के उपाय करते हैं। इसलिए जीवन में दुख और पीड़ा फलित होते हैं। जो वस्तुतः हमारी आकांक्षा है, जो हमारे बहुत गहरे प्राणों की प्यास है, उसको ही भूल कर और हम सारी चीजें खोजते हैं। और इसलिए जीवन एक वंचना सिद्ध हो जाता है। श्रम तो बहुत करते हैं और परिणाम कुछ भी उपलब्ध नहीं होता; दौड़ते बहुत हैं लेकिन कहीं पहुंचते नहीं हैं। खोदते तो बहुत हैं; पहाड़ तोड़ डालते हैं, लेकिन पानी के कोई झरने उपलब्ध नहीं होते। जीवन का कोई स्रोत नहीं मिलता है। ऐसा निष्फल श्रम से भरा हुआ हमारा जीवन है। इस पर ही थोड़ा विचार करें। इस पर ही थोड़ा विचार आपसे मैं करना चाहता हूं।
क्या है हमारी खोज?
यदि हम अपने पर विचार करेंगे, देखेंगे, आंखें खोलेंगे तो क्या दिखाई पड़ेगा? क्या हम खोज रहे हैं! शायद साफ ही हमें अनुभव हो कि हम सारे लोग सुख को खोज रहे हैं, और लगेगा कि मनुष्य का प्राण तो सुख चाहता है। मनुष्य का ही क्यों, और सारे पशुओं की भी आकांक्षाएं सुख को पाने के लिए हैं, ऐसा हम विचार करेंगे। हर कोई सुख चाहता है, लेकिन मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूं--प्रथम ही। और फिर उस पर विस्तार से आपको समझाने के प्रयास करूंगा। सुख की खोज झूठी खोज है। वस्तुतः हम सुख नहीं चाहते हैं। हम कुछ और चाहते हैं। हम क्या चाहते हैं, वह मैं आपसे कहूंगा। और सुख हम क्यों नहीं चाहते हैं, वह भी मैं आपसे कहूंगा। लेकिन आमतौर से ऐसा प्रतीत होता है कि हम सभी लोग सुख खोज रहे हैं। यह सुख की खोज चाहे किसी रूप में प्रकट हो रही हो--धन के रूप में, यश के रूप में, पद के रूप में। और चाहे ये सुख की खोज जमीन पर चल रही हो और चाहे स्वर्ग की कल्पनाओं में, लेकिन हमारा मन जाने- अनजाने सुख के लिए पागल है।
क्या कभी यह विचार किया कि आज तक जमीन पर बहुत लोगों ने सुख खोजा है लेकिन किसी ने सुख पाया है? क्या कभी ये विचार किया कि करोड़-करोड़ अरब-अरब लोग जिस बात को खोज चुके हैं और असफल हो गए, क्या मैं उसमें अपवाद सिद्ध हो जाऊंगा? और क्या कारण है कि सुख इतने लोग खोजते हैं लेकिन सुख उपलब्ध नहीं होता है? जैसे ही किसी सुख को हम पा लेते हैं वैसे ही वह व्यर्थ हो जाता है और हमारी आकांक्षा आगे बढ़ जाती है। ऐसा क्यों होता है? किस कारण से यह होता है? क्या सुख का स्वभाव ऐसा है कि हम उसे पाएं तो वह व्यर्थ हो जाए या कि असलियत यह है कि सुख की खोज में हम किसी और खोज को छिपाए रहते हैं अपनी आंखों से। सुख की दौड़ में हम किसी और बात को अपनी आंखों से ओझल किए रहते हैं। कोई और है हमारी खोज और हम सुख की दौड़ में उस खोज को भुलाए रखने का उपाय करते हैं। जैसे ही सुख मिल जाता है, सुख की दौड़ बंद हो जाती है। वैसे ही भीतर का दुख फिर दिखाई पड़ने लगता है। फिर हमें किसी नये सुख की खोज शुरू करनी पड़ती है, ताकि दुख को फिर भुलाया जा सके। जब तक सुख मिलेगा नहीं, दौड़ रहेगी, मन उलझा रहेगा तो लगेगा कि सुख मिलने वाला है। जैसे ही सुख मिलेगा-- दौड़ बंद होगी, मन खाली होगा। भीतर के दुख के दर्शन फिर शुरू हो जाएंगे। सुख जब तक पाने की चेष्टा चलती है, आकांक्षा चलती है, इच्छा चलती है तब तक तो दुख भुला रहता है। और जैसे ही सुख मिला, दौड़ बंद हुई, मन खाली हुआ, मन थोड़ा काम से विश्राम में गया और भीतर का दुख फिर दिखाई पड़ने लगता है। फिर हमें नये सुख की खोज फिर शुरू कर देनी पड़ती है। सुख की खोज ज्यादा से ज्यादा दुख को भुलाने का काम करती है। सुख की खोज ज्यादा से ज्यादा एक नशे का काम करती है; लेकिन कहीं पहुंचाती नहीं और न कहीं पहुंचा सकती। सुख की कितनी ही बड़ी खोज हो भीतर का दुख नष्ट नहीं हो सकता है। यह असंभव है। यह इतना असंगत है इन दोनों का कोई मेल नहीं है।

मैंने सुना है, एक मुसलमान बादशाह था। एक रात अपने महल में सोया हुआ था। अंधेरी रात है, आधी रात है, ठंड के दिन हैं, सर्दी जोर से है। उसने देखा, उसकी छप्पर पर कोई ऊपर चल रहा है। पुराने जमाने के मकान थे।... वह दुख में पड़ता जाता है।
और जो दुख के मिटाने को खोजता है, वह सुख को उपलब्ध होता चला जाता है। क्या कारण है? क्यों हम इस तथ्य को नहीं देखते कि हमारे भीतर दुख है।
आप क्यों सुख को खोज रहे हैं? निश्चित ही जब आप सुख को खोज रहे हैं यह इस बात का प्रमाण है और सुबूत है कि आप दुखी हैं। अगर कोई आदमी दुखी नहीं है तो सुख को क्यों खोजेगा? अगर कोई आदमी निर्धन नहीं है तो धन को क्यों खोजेगा? इसलिए जो आदमी जितना ज्यादा धन खोजता हो--जानना चाहिए उतना ही गहरा वह निर्धन होगा, नहीं तो क्यों खोजेगा? जो आदमी बीमार नहीं है वह स्वास्थ्य को क्यों खोजेगा? और जो ज्यादा से ज्यादा स्वास्थ्य को खोजता हो--जानना चाहिए वह उतना ही गहरा बीमार है।
एक फकीर था। एक बहुत बड़े बादशाह से उसका बड़ा प्रेम था। उस फकीर के गांव के लोगों ने कहा कि बादशाह तुम्हें इतना आदर देते हैं, इतना सम्मान देते हैं, उनसे कहो कि गांव में एक छोटा सा स्कूल खोल दें।
उसने कहा: मैं जाऊं, मैं जाऊंगा। मैंने आज तक कभी किसी से कुछ मांगा नहीं। लेकिन तुम कहते हो तो तुम्हारे लिए मांगूंगा।
वह फकीर गया। वह राजा के भवन में पहुंचा। सुबह का वक्त था और राजा अपनी सुबह की नमाज पढ़ रहा है, फकीर पीछे खड़ा हो गया। नमाज पूरी की, प्रार्थना पूरी की। बादशाह उठा, उसने हाथ ऊपर फैलाया और कहा--हे परमात्मा! मेरे राज्य की सीमाओं को और बड़ा कर, मेरे धन को और बढ़ा, मेरे यश को और दूर तक, आकाश तक पहुंचा। जगत की कोई सीमा न रह जाए--जो मेरे कब्जे में न हो, जिसका मैं मालिक न हो जाऊं। हे परमात्मा! ऐसी कृपा कर। उसने प्रार्थना पूरी की। वह लौटा, उसने देखा कि फकीर सीढ़ियां नीचे उतर रहा है। उसने चिल्ला कर आवाज दी कि क्यों वापस लौट चले?
फकीर ने कहाः मैं सोच कर आया था किसी बादशाह से मिलने जाता हूं। यहां देखा कि यहां भी एक भिखारी मौजूद है। और मैं तो दंग रह गया। इतनी बड़ी जिसकी मांग हो, उतना ही बड़ा वह भिखारी होगा। तो आज मैंने जाना कि जिसके पास बहुत कुछ है। बहुत कुछ होने से कोई मालिक नहीं होता, मालिक की पहचान तो इससे होती है--कितनी उसकी मांग है। अगर कोई मांग नहीं तो वह आदमी मालिक है, बादशाह है। और अगर उसकी बहुत बड़ी मांग है तो उतना ही बड़ा भिखारी है। इसलिए दुनिया बहुत अजीब है। यहां जो बहुत मांग रहे हैं, बहुत धन है, और बहुत खोज रहे हैं, बहुत पद हैं--जानना कि भीतर बहुत निर्धन और दरिद्र होंगे। उसी को भुलाने के लिए सब उपाय कर रहे हैं, अन्यथा और कोई कारण नहीं है। इसलिए दुनिया में बड़े से बड़ा धन है, आदमी अपने भीतर बहुत गहरा निर्धन होता है। और बड़े से बड़े पदों पर बैठा हुआ व्यक्ति अपने भीतर बहुत दयनीय और दरिद्र होता है। और बहुत बड़ी महत्वाकांक्षा के लोग जो दुनिया को जीत लेने की आकांक्षा रखते हैं, भीतर बहुत कमजोर होते हैं और अपने को जीतने में बिल्कुल असफल और असमर्थ होते हैं।
यह जो मैंने कहा: यह हमारी जो खोज है--चाहे धन की, चाहे यश की, चाहे सुख की--मूलतः तो सुख की खोज है। यह हम सुख इसलिए खोजते हैं कि वह जो हमें दुख प्रतीत होता है वह मिट जाए, लेकिन क्या यह उचित होगा? क्या यह उचित होगा कि दुख भीतर है उसे मिटाने के लिए हम सुख खोजें, या यह उचित होगा कि दुख अगर भीतर है तो उसके कारण को खोजें, पहचानें कि कौन सा कारण है मेरे भीतर जिसके कारण मैं दुखी और पीड़ित हूं। और उस कारण को मिटाएं और उस कारण से मुक्त हो जाएं।
क्या यह वैज्ञानिक होगा या पहली बात वैज्ञानिक होगी? क्या कोई बीमारी
हो तो उसके कारण को खोज कर उस बीमारी को नष्ट करना होगा, या कि किसी काल्पनिक स्वास्थ्य को खोजने के लिए हिमालय और पहाड़ों पर जाना होगा। लेकिन, लेकिन हमें ऐसा दिखाई पड़ता है और यह मनुष्य की बुद्धि के सबसे बड़े भ्रमों में से, सबसे बड़े झूठे तर्कों में से एक तर्क है कि जब उसे दुख

अनुभव होता है तो वह सुख को खोजने लगता है। यह खोज वास्तविक न होकर दुख को मिटाने वाली न होकर दुख को भुलाने वाली हो जाती है।
और स्मरण रखें, दुख से भी खतरनाक बात दुख को भुला देना है। क्योंकि जो चीज भूल जाती है ऊपर से, वह भीतर तड़पती रहती है और फैलती चली जाती है। इसलिए ऊपर हम सुख को खोजते जाते हैं और भीतर दुख घना होता जाता है। और भीतर चित्त की परत पर और गहरे अचेतन और गहरे मन के कोनों में, भवन के, मन के भवन के बहुत दूर के कमरों में प्रकोष्ठों में तलघरों में हमारा दुख फैलता चला जाता है। ऊपर हम सुखों को खोजते रहते हैं भीतर दुख घना होता जाता है। जितना ज्यादा बाहर सुख की खोज होगी, उतने ज्यादा दुख के कारण मजबूत हो जाएंगे; और भीतर दुख घना हो जाएगा और व्यापक हो जाएगा। सुख के खोजी अंत में पाते हैं कि दुख में गिर गए हैं। इसलिए मैं प्रारंभ में ही यह बात आपको कहना चाहा। इस संबंध में ही थोड़ी आपसे बात करूं।
यह, यह सुख की खोज एकमात्र भ्रांति है, एकमात्र अज्ञान है। सुख की खोज
से दुख नहीं मिटेगा। दुख के निदान, दुख के कारण को जानने-पहचानने और मिटाने से दुख मिटेगा। तो पहली तो बात यह कि यह सुख की खोज भ्रांत है, और दुख को स्पर्श भी नहीं करती। दुख के ऊपर-ऊपर फैल जाती है और भीतर दुख मजबूत बना रहता है, उसे कहीं भी नहीं छूती। यह वैसे ही है जैसे कोई एक वृक्ष हो और हम उसकी जड़ों को तो काटें नहीं, और उसके पत्तों को काटते रहें! क्या आप जानते हैं कि पत्तों के काटने से और ज्यादा पत्ते वृक्ष में आ जायेंगे? क्या कोई वृक्ष पत्तों के काटने से नष्ट होता है? नहीं, और भी सघन हो जाता है और भी घना हो जाता है और भी उसके विकास के मार्ग खुल जाते हैं।
वृक्ष नष्ट होता है जड़ों को नष्ट करने से। सुख की खोज दुख के पत्तों
को छांटने जैसी है, दुख की जड़ को नष्ट करने जैसी नहीं है। जो व्यक्ति सुख की खोज कर रहा है उसे मैं अधार्मिक कहता हूं। और जो व्यक्ति दुख के कारणों को नष्ट करने की खोज कर रहा है उसे मैं धार्मिक कहता हूं। उनको धार्मिक नहीं कहता--जो मन्दिर जा रहे हों, प्रार्थनाएं कर रहे हों। क्योंकि हो सकता है उनका मंदिर जाना और प्रार्थना करना भी सुख की खोज हो, दुख को मिटाने का वैज्ञानिक उपाय नहीं।
इस बात को ठीक से समझ लेना। यह हो सकता है कि मंदिर में उनकी प्रार्थना सुख को पाने की ही खोज का हिस्सा हो। और वह भगवान को भी सुख की खोज में माध्यम बनाना चाहते हों, और वहां भी जाकर प्रार्थना कर रहे हों-- सुख को पाने की। और अगर भगवान उन्हें सुख देता हुआ मालूम पड़े तो वे मानेंगे कि भगवान हैं, और कुछ नारियल चढ़ाएंगे, फूल चढ़ाएंगे। और अगर सुख देता हुआ न मालूम पड़े तो वे इंकार करेंगे कि भगवान का कोई प्रमाण नहीं मिलता, क्योंकि हम तो दुखी। उनके सुख की खोज ही उन्हें दुकान से हटा कर मंदिर तक ले जा सकती हैं।
लेकिन सुख के खोजी को मैं धार्मिक नहीं कहता हूं।
एक दुनिया है जहां हम धना कमा रहे हैं, भवन बना रहे हैं, यश-प्रतिष्ठा
को इकट्ठा कर रहे हैं, संग्रह कर रहे हैं, परिग्रह कर रहे हैं। एक सीमा आती है कि मनुष्य को दिखाई पड़ता है इससे तो दुख मिटता नहीं और मुझे चाहिए सुख। तो यह भी हो सकता है कि इसकी प्रतिक्रिया में, इसके रिएक्शन में वह सारा घर-द्वार छोड़ दे, संपत्ति छोड़ दे, साधु हो जाए। कष्ट झेलने लगे, शरीर को पीड़ा देने लगे, भूखा रहने लगे, शरीर को कोड़े मारने लगे, कांटों पर सोने लगे, धूप में पड़ा रहने लगे, नंगा रहने लगे, जितने कष्ट शरीर को दे सकता है--देने लगे।
लेकिन स्मरण रहे, यह हो सकता है कि यह सारा कष्ट और पीड़ा भी स्वर्ग में, इस लोक में, परलोक में, इस जन्म में, अगले जन्म में--कहीं सुख को पाने की आकांक्षा से किया जा रहा हो। तो ये सारे कृत्य अधार्मिक हो जाते हैं। और ये तो आपको ज्ञात ही होगा। सारे धर्मों ने स्वर्ग की कल्पना की है और स्वर्ग में उन सभी सुखों की व्यवस्था की है जो यहां हमें उपलब्ध नहीं हैं। या जिनके यहां वर्जना हैं और निषेध। ये किस बात का सुबूत है? ये इस बात का सुबूत है कि जो लोग इस लोक में सुख पाने में असमर्थ हो जाते हैं, उनकी

आकांक्षाओं की हद नहीं है। वह परलोक में उन्हीं सुखों को पाने की कामना से फिर पीड़ित हो जाते हैं।
ऐसा मुल्क है, ऐसे लोग हैं जिन्होंने स्वर्ग में कल्पना की है कि वहां शराब के झरने बहते हैं। यहां शराब निषिद्ध है। धर्म कहते हैं: यहां शराब पीना बुरा है। लेकिन बड़े आश्चर्य की बात है वे धर्म जो कहते हैं शराब पीना बुरा है, वे ही कहते हैं कि--जो शराब नहीं पीएंगे, वे ऐसे स्वर्ग में जाएंगे जहां शराब की नदियां बहती हैं! यह विरोध दिखाई पड़ता है। यह समझ में आता है कि जिन्होंने यहां शराब छोड़ी है उन्होंने इस वजह से भी छोड़ी हो सकती है कि ऐसे स्वर्ग में प्रवेश पाना चाहते हैं जहां शराब के झरने बहते हों, नदियां बहती हों! यहां जिन-जिन कामनाओं को निषेध किया गया है, उन्हीं-उन्हीं कामनाओं की परिपूर्ण तृप्ति की व्यवस्था स्वर्ग में कर दी गयी है। ये सब बुभुक्षित, प्यासे और भूखे और सुख लोभी लोगों की कल्पनाओं से ज्यादा नहीं हो सकते।
और इसलिए दुनिया के जिस मुल्क में जिस तरह की बात सुख मानी जाती है उस मुल्क के लोगों ने अपने स्वर्ग में उसकी व्यवस्था कर ली है। सभी मुल्कों के स्वर्ग एक जैसे नहीं हैं। क्योंकि सभी मुल्कों की सुख की कामनाएं भिन्न-भिन्न हैं। अगर आप तिब्बत में पैदा हों, तो वहां सर्दी बहुत दुखद है। वहां ठंड बहुत पीड़ा देती है। इसलिए उन्होंने अपने स्वर्ग में--ऊष्ण। वहां सर्दी बिल्कुल नहीं है, बर्फ बिल्कुल नहीं है, पहाड़ बिल्कुल नहीं हैं--मैदान हैं। तिब्बती का जो स्वर्ग है, वहां सर्दी बिल्कुल नहीं है। बड़ा उत्तप्त वातावरण है। लेकिन हमारा जो स्वर्ग है, वहां शीतल हवाएं बहती हैं। यह गर्म मुल्क का स्वर्ग अलग होगा।
तिब्बतियों का जो नरक है, वहां बर्फ ही बर्फ हैं। वहां जो पड़ेगा, गल जाएगा। हमारा जो नरक है, वहां आग की लपटें जलती हैं, उसमें जलाया जाएगा। हम गर्म मुल्क के लोग हैं, गर्मी कष्ट देती है। हमने नरक में कष्ट की व्यवस्था कर रखी है। और शीतलता सुख देती है तो स्वर्ग को एयरकंडीशन कर रखा है। ठंडे मुल्क के लोग हैं, उनकी कल्पना में ठंड बहुत पीड़ा दे रही है। उन्होंने अपने स्वर्ग में गर्मी की व्यवस्था कर ली है और नरक में सर्दी की व्यवस्था कर दी। ये हमारी सुख-दुख की कामनाओं के प्रक्षेपण हैं, उसके ही प्रदक्षण हैं, उसका ही विस्तार है। हम जिन सुखों को यहां नहीं पा पाते, बहुत से लोग जो यहां पीड़ित रह जाते हैं, यहां अनुभव करते हैं कि नहीं मिलता--उससे भी वे जागते नहीं। उससे भी उन्हें यह खयाल नहीं आता कि मेरी सुख की खोज गलत है! बल्कि यह खयाल आता है: इस संसार में सुख की खोज गलत है, उस संसार में सुख खोजना चाहिए! सुख की खोज मौजूद रह जाती है।
अगर सुख की खोज के पीछे कोई संन्यास में गया हो तो वह संन्यासी भी, वह साधु भी संसारी का हिस्सा है, वह संसार के बाहर नहीं है। क्योंकि उसकी खोज अभी टूटी नहीं। अभी उसे ये स्मरण नहीं आया कि सुख की खोज ही भ्रांत है-- चाहे इस लोक में, चाहे उस लोक में। उस लोक में तो और भी ज्यादा भ्रांत है, और भी ज्यादा। क्योंकि और भी ज्यादा कल्पना की बात हो गई। हम कल्पना में उन्हीं बातों की व्यवस्था कर लेते हैं जो हमारे भीतर कहीं हमारे चित्त को पकड़े रहती हैं।
मैंने सुना है, एक घर में एक कुत्ते और बिल्ली दोनों का आवास था। दोनों साथ-साथ रहते थे तो मैत्री हो गई थी। एक रात दोनों सोए। सुबह उठे तो बिल्ली बहुत प्रसन्न थी। उसकी आंखों में बड़ा रोष था। बड़ी अकड़ कर चल रही थी तो कुत्ते ने पूछा, बात क्या हो गई?
उस बिल्ली ने कहा: रात तो गजब हो गया! वर्षा आने को है, बादल घिर गए हैं, रात मैंने क्या देखा! रात मैंने देखा कि इस वर्ष वर्षा में पानी की वर्षा नहीं हो रही, बल्कि चूहे बरस रहे हैं।
उस कुत्ते ने कहा: नासमझ, मूर्ख बिल्ली, जब देखती है गलत बात देखती है। कभी ऐसा हुआ है? जब भी वर्षा होती है तो साथ में हड्डियां बरसती हैं। चूहे आज तक न कभी बरसे हैं और न कभी बरस सकते हैं। कुत्ते के स्वर्ग में हड्डियां होंगी। बिल्ली के स्वर्ग में चूहे होंगे। बिल्ली के सपने में वही होगा जो उसका सुख है, कुत्ते के सपने में वही होगा जो उसका सुख है।

क्या आपको पता है स्वर्ग में जिन लोगों ने अप्सराओं की व्यवस्था कर रखी है और उनके अंग-अंग का वर्णन किया है--क्या ये वे ही लोग नहीं होंगे जो स्त्रियों से यहां अतृप्त रह गए? क्या यह सच्चाई नहीं है भीतर? क्या ये मनःशास्त्र इतना भी नहीं समझ सकता? क्या हम इतने अंधे हैं कि ये भी नहीं जान सकते कि जिन्होंने स्वर्ग में अप्सराओं के अंग-प्रत्यंग की बड़ी-बड़ी सुंदर-सुंदर कल्पनाएं की हैं, और एक-एक अंग का वर्णन किया है--ये लोग वे ही होंगे जो स्त्री से यहां अतृप्त रह गए हैं और स्त्री की कल्पना वहां तक चली गई। क्या आपको ये पता है--स्वर्ग में अप्सराएं कभी वृद्ध नहीं होतीं; सदा युवा रहती हैं, चिर युवा रहती हैं। क्या आपको पता है कि स्वर्ग में कल्पवृक्ष होते हैं जिनके नीचे बैठते ही सब कामनाएं पूरी हो जाती हैं। जो धर्म कहते हैं: सब कामनाएं छोड़ दो। वे ही धर्म कहते हैं: कामना छोड़ने वाले लोगों को स्वर्ग मिल जाएगा। जहां कल्पवृक्षों के नीचे बैठ कर सारी कामनाएं तृप्त हो जाती हैं।
यह सब सुख का ही विस्तार है, यह कोई धर्म की खोज नहीं है। यह कोई वास्तविक जीवन की दिशा नहीं है और इस अर्थ में सारी दुनिया के धर्मों ने उन लोगों को, जो उनकी बातों को मानेंगे--स्वर्ग की व्यवस्था दे दी है। और उन लोगों को जो उनकी बातें नहीं मानेंगे--नर्क की व्यवस्था दे दी। जो उनकी बातों को मानेंगे, उनको सुख का आयोजन है। और जो नहीं मानेंगे, उनके लिए दुख की बड़ी व्यवस्थाएं हैं।
और कितना आश्चर्यजनक है--स्टैलिन को, हिटलर को या मुसोलनी को भी जिन बातों का पता नहीं होगा कि आदमियों को किस-किस भांति कष्ट दिए जाएं, उनके बहुत पुराने गुरुओं ने सब ग्रंथों में लिख दिया है। नर्क में कौन-कौन से कष्ट दिए जा सकते हैं, कौन-कौन सी कल्पनाएं की जा सकती हैं, वह बहुत पहले कर ली गई है।
अभी बाद में, फेसिस्ट मुल्कों में आदमियों को परेशान करने की बहुत ईजादें निकालीं। अगर उनको समझ होती और वह सारे पुराने ग्रंथ पढ़ लेते, और नरक में क्या-क्या योजनाएं की गई हैं अगर उसको जान लेते, तो उनके कारागृह और भी समृद्ध हो जाते। वहां वह और परेशान करने के, टॉर्चर करने के, लोगों को पीड़ा देने की नई-नई ईजादें जान सकते थे। लेकिन जिन लोगों ने ये कल्पनाएं की हैं कि जो हमारी बातें नहीं मानेंगे, उनको इस-इस तरह के दंड दिए जाएंगे--ये लोग कोई अच्छे लोग नहीं रहे होंगे।
असल में जो अपने लिए सुख खोजता है, वह सदा दूसरे के लिए दुख खोजने का आकांक्षी होता है। यह तो नियम की बात है: जो अपने लिए सुख खोजता है, वह अनिवार्यतया दूसरे के लिए दुख खोजने की व्यवस्था रखता है। इसलिए तो मैंने कहाः सुख का खोजी अधार्मिक होता है। अगर आप सारा सुख छीन लेना चाहते हैं-- तो कैसे छीनेंगे, जब तक कि दूसरे लोगों का सारा सुख आपके पास न आ जाए--आप कैसे सुखी हो जाएंगे? सबका सुख छीन लो!
ये सुख के कामियों ने नरक की भी कल्पना की है जहां कि जो उनके विरोध में हों, उन्हें डाल दिया जाएगा। और आप हैरान हो जाएंगे! छोटे-छोटे निर्दोष पापों के लिए, जिनको कि पाप भी कहना कठिन है, उनके लिए भी इटरनल कंडेमनेशन की व्यवस्था है--अनन्त काल के लिए भी!
एक आदमी जिन्दगी में कितने पाप कर सकता है? अगर मैं हिसाब लगाऊं तो जितने पाप किए होंगे, कल्पना में सोचे होंगे, अगर सबका भी... कोई सख्त से सख्त मजिस्ट्रेट से फैसला करवाऊं, तो भी पांच-सात साल से ज्यादा सजा मिलनी मुश्किल है। दस-पांच साल की सजा होगी, सौ साल की सजा होगी, लेकिन इटरनल कंडेमनेशन! अनन्त काल तक नर्क में पड़े रहना! जरूर किन्हीं दुष्ट मनों की, किन्हीं बहुत वाइलेंट, किन्हीं हिंसक मनों की ये कल्पना है।
लेकिन जो आदमी भी सुख की खोज करता है, वह आदमी हिंसक होता ही है। क्योंकि उसके भीतर होता है दुख, उसके भीतर होती है परेशानी, उसके भीतर होती है अशांति--और सुख की वह खोज करता है। लेकिन भीतर इतना बेचैन, अशांत, परेशान और दुखी होता है कि वह कभी किसी दूसरे को सुख में नहीं देख सकता।
दूसरे को सुख में देखना उसे कठिन हो जाएगा। वह तत्क्षण दूसरे के सुख को मिटा देना चाहेगा। चाहेगा कि मुझे सब मिल जाए, और से सबका सब छीन जाए।

ये जो दोष क्राइस्ट को जिस दिन सूली दी गई, उस दिन उनके सारे शिष्य उनके पास इकट्ठे थे। और उन शिष्यों ने क्राइस्ट से पूछा कि यह खतरा मालूम होता है कि शायद आप पकड़ लिए जाएं और आपको सूली दे दी जाए, तो कृपा करके ये तो बता दें कि हमने जो आपके साथ इतनी तकलीफें सहीं, मरने के बाद स्वर्ग में हमारी पद-प्रतिष्ठाएं क्या होंगी? आपको पता है ये क्राइस्ट से उनके शिष्यों ने पूछा कि अब आप कल अगर मर गए, तो कम से कम इतना तो आश्वासन दे दें कि जब आप मर जाएंगे और जब हम भी मर कर स्वर्ग में आएंगे, तो कौन कहां बैठेगा? परमात्मा के आस-पास किसकी क्या व्यवस्था होगी? किसका क्या पद होगा?
ये कैसे लोग रहे होंगे! और क्राइस्ट के मन को कैसा नहीं लगा होगा, कैसी दया नहीं आई होगी, कैसे पागल लोग! जो कहते हैं हमने इतना छोड़ा, हमने इतना खोया, आपके पीछे इतनी तकलीफें उठाईं।
वह जो आदमी गहरी भूख से मर रहा है, उपवास कर रहा है, शरीर को कष्ट दे रहा है, ऐसे फकीर हुए हैं शरीर को कोड़े मार रहे हैं जिंदगी भर--क्योंकि ये खयाल है कि शरीर को जितना सताओगे, परमात्मा उसके प्रतिफल में उतना ही परलोक में सुख देगा--ये सब सुखवादी हैं, ये सब मैटीरियलिस्ट हैं, ये सब हैडोनिस्ट हैं, ये सब के सब सुख की खोज कर रहे हैं। ये उस जगत में सुख की व्यवस्था करने के लिए तकलीफें झेल रहे हैं। यह तकलीफ वास्तविक नहीं है। यह तपश्चर्या झूठी है।
तपश्चर्या तभी वास्तविक है जब वह सुख की खोज के लिए न हो, बल्कि दुख के मूल कारण मिटाने के लिए हो। जब वह दुख के भीतर से मूल कारण नष्ट करने के लिए हो तो सबसे पहली जरूरत तो यह है कि हम यह जान लें और यह पहचान लें कि चाहे इस लोक में, चाहे परलोक में सुख की जो आकांक्षा है--वही भटकाने वाला तत्व है, वही भ्रांत दिशा में ले जाने वाला खयाल है। और क्यों है भ्रांत दिशा में ले जाने वाला! भ्रांत दिशा में ले जाने वाला इसलिए नहीं है कि दूसरों ने कहा है, शास्त्रों ने कहा है, आदमियों ने कहा है, गुरुओं ने कहा है--इसलिए नहीं।
अगर आप खुद ही अनुभव करें, विचार करें तो आपको दिखाई पड़ेगा--सुख कहीं
भी ले जाने में समर्थ नहीं है। कभी आप कल्पना में भी विचार करें, जो भी सुख आपने पाना चाहा है, अगर उसे पा लें तो फिर क्या करेंगे? फिर क्या होगा? फिर उसके बाद बात खत्म हो जाएगी।
ययाति का उल्लेख है। पुरानी कहानी है। ययाति सौ वर्ष का हो गया था। मरने को हुआ। एक पुराना राजा था। अब काल्पनिक कथा होगी। मरने को हो गया, मौत करीब आ गयी। ययाति ने कहा: ये क्या! जिसे हम सुख की खोज मान कर चलते हैं कभी कोई उपलब्धि नहीं हुई है; न हो सकती है, न हो सकने का कारण है।
पहली बात, जो आदमी सुख को खोजता है--जैसा मैंने कहा: उसके भीतर दुख तो बना ही रहता है; वह तो कहीं जाता नहीं, सुख उसे छूता भी नहीं। सुख की नई-नई झलक विलीन हो जाती है, दुख फिर खड़ा हो जाता है।
इसलिए सारी दुनिया में सुख के जो पागल हैं वह नये से नये सेंसेशंस की,
नई से नई संवेदनाओं की खोज करते हैं, नई से नई संवेदनाओं की खोज करते हैं। और यही कारण है कि विज्ञान ने बहुत सी नई संवेदनाएं खोज दी हैं जिसको हम सुख की संवेदनाएं कहें।
और यही कारण है कि विज्ञान और ये स्वर्गवादी धार्मिक जो हैं, विरोध में पड़ गए। दो तरह के सुखवाद हो गए दुनिया में। दोनों में झगड़ा शुरू हो गया। और लोग विज्ञान के सुखवाद की ओर जल्दी झुक गए क्योंकि परलोक की रोटी का क्या विश्वास? इस लोक में जो रोटी मिलती है, वह ज्यादा विश्वस्त है, असंदिग्ध है। उस पर शक नहीं किया जा सकता।
जब तक दुनिया में विज्ञान नहीं था--धर्म का, यह तथाकथित धर्म का, यह जो स्वर्ग और नरकवादी धर्म है, यह जो सुख का विश्वास दिलाने वाला धर्म है कि जो ऐसा करेगा उसे सुख मिलेगा, और जो ऐसा नहीं करेगा उसे दुख मिलेगा। ऐसा जो धर्म है जिसका प्रलोभन और भय से नाता है, जो प्रलोभन देता है कि ये-ये सुख देंगे तुमको, इस तरह का जीवन जीओ--तो जो सुख पाने के आकांक्षी हैं, उस तरह

का जीवन जीने को राजी हो जाते हैं। इस तरह का जो धर्म है, विज्ञान का जब तक जन्म नहीं हुआ था--अकेला था। सारी दुनिया धार्मिक मालूम पड़ती थी।
फिर एक नया प्रतियोगी पैदा हुआ इधर तीन सौ वर्षों में। और विज्ञान ने कहा: छोड़ो स्वर्ग की बकवास; हम यहीं बनाए देते हैं, छोड़ो अप्सराओं की फिकर; हम अप्सराएं यहीं जमीन पर खड़ी किए देते हैं, छोड़ो यह फिकर; हम यहीं भवन बनाए देते हैं--जो कि सुखद होंगे।
और बड़ी जोर से पागलपन शुरू हुआ जमीन को ही स्वर्ग बनाने का। धार्मिक लोग घबड़ा गए, वह झूठे धार्मिक लोग, सब घबड़ा गए। क्योंकि बड़ी दिक्कत हो गई। इसमें ग्राहक छीन जाने का डर बहुत जोर से पैदा हो गया। क्योंकि ग्राहक परलोक की दुकान पर अब राजी नहीं हो सकते थे, अब जब यहां प्रत्यक्ष मिलता हो तो कल्पना में कौन फिकर करे।
इसलिए विज्ञान का जोर से प्रभाव हुआ। सारी दुनिया में विज्ञान का भौतिकवाद प्रभावी हो गया। धार्मिक लोग गाली देने लगे--कि हम आध्यात्मिक हैं और ये भौतिकवादी हैं।
मैं आपको कहूं: भौतिकवाद का ही भौतिकवाद से विरोध हो सकता है।
अध्यात्मवाद का भौतिकवाद से विरोध नहीं हो सकता।

धर्म की यात्रा
पांचवां प्रवचन

स्वयं को जानना कौन चाहता है?

अब वह कर्म-योग को भी मानने वाले लोग ऐसा समझते हैं और इस मुल्क में ढेरों उनके व्याख्याकार हैं, वे करीब-करीब ऐसे व्याख्याकार हैं जिनका कहना यह है कि कर्म करते रहो, आसक्ति मत रखो तो कर्म-योग हो जाएगा। ये बिल्कुल झूठी बात है। अब मेरा कहना ये है कि कर्म में आसक्ति रखना और अनासक्ति रखना आपके बस की बात नहीं है। अगर आपको आत्म-ज्ञान थोड़ा सा है तो कर्म में अनासक्ति होगी; अगर आत्म-अज्ञान है तो कर्म में आसक्ति होगी। यानी आसक्ति रखना और न रखना आपके हाथ में नहीं है। अगर आत्म-ज्ञान की स्थिति है तो कर्म में अनासक्ति होती है और अगर आत्म-अज्ञान की स्थिति है तो कर्म में आसक्ति होती है। आप आसक्ति को अनासक्ति में नहीं बदल सकते हैं, अज्ञान को ज्ञान में बदल सकते हैं। वह मेरा मामला तो वही का वह है, वह मैं कहीं से भी कोई बात हो। मामला मेरा वही का वह है। बात मैं वही, एक ही है।
सतपुरुषों ने कहा हैः अपने को जानो। नो दाई सेल्फ। लेकिन इतनी महत्वपूर्ण बात भी, इतनी जरूरी और तत्क्षण अनुभव में आए।। ऐसी बात भी बहुत कम लोग क्यों साधते हैं? बहुत कम लोग क्यों साधते हैं? बहुत कम लोग इस सत्य को उपलब्ध क्यों होते हैं? अधिक लोग क्यों नहीं हो पाते? प्रश्न तो बड़ा महत्वपूर्ण है। यह तो कितनी बार, रोज ही तो।। सारी चर्चा, सारे प्रवचन, सारे शास्त्र इसी बात से भरे हैं कि अपने को जानो।
लेकिन हम अपने को जान ही क्यों नहीं पा रहे? इसके दो कारण हैं। और अधिक लोग क्यों इसमें संयुक्त नहीं हो पाते, इसके दो कारण हैं। एक कारण तो यह है कि शास्त्रों को लगता होगा।। कि ये मोस्ट अरजेंट नीड है। और जिन्होंने अपने को जाना।। उन्हें लगता हो कि ये तत्काल उपलब्ध करने की चीज है।। यह आपको नहीं लगता।
आप सुनते हैं, सुनते वक्त प्रभावित हो सकते हैं। लेकिन आपको ऐसा नहीं लगता कि ये बिल्कुल जरूरी चीज हैं जो इसी वक्त जाननी चाहिए। आपको लगता है कि अभी जरूरी चीजें और दूसरी हैं, इसको कल भी जाना जा सकता है, परसों भी जाना जा सकता है। जीवन की जरूरतें दूसरी हैं; आत्मा जीवन की जरूरत नहीं। आपको आत्मा जीवन की जरूरत नहीं मालूम होती। फिजूल समय की बातचीत मालूम हो सकती है। नहीं, आपके लिए वह अर्जेंट नहीं है। और अगर कोई आदमी आपसे कहे, एक दफा ऐसा हुआ है।
एक साधु ने एक सम्यक सभा के बीच खड़े होकर कहा कि जो-जो मोक्ष चाहते हैं
वे तत्क्षण खड़े हो जाएं। क्योंकि मुझे कुछ ऐसा सूझा है कि अभी-अभी मोक्ष, इसी वक्त उन्हें दिलाया जा सकता है। उस सभा में एक आदमी खड़ा नहीं हुआ। और एक आदमी जो बहुत देर से मोक्ष के बाबत पूछता था।। उससे, उस साधु ने कहाः कम से कम तुम तो खड़े हो जाओ।
वह बोलाः मैं जरा कल सोच कर बताऊंगा।
क्योंकि सवाल यह है कि मोक्ष।। आप विचार बहुत करते होंगे। लेकिन अगर
अब भी कोई देने को राजी हो जाए तो आप भाग ही खड़े होंगे उस आदमी से कि यह, यह ठीक नहीं है। तो मोस्ट अरजेंट नीड जो आपने लिखा।। लगती नहीं आपको, और लग नहीं सकती और न लगने का कारण है। और जो लोग आपको समझाते हैं, वे ही गलत रास्ते से समझाते हैं।। इसलिए नहीं लग सकती। आपको आत्मा को जानना तब आपकी आत्यंतिक जरूरत बनेगी, जब आप आपके भीतर जो दुख है उसका अनुभव करेंगे। साधु वे नहीं हैं।। जो बतलाते हैं कि आत्मा को जानना चाहिए। साधु वे हैं जो आपको आपके दुख का साक्षात करा रहे हैं। अगर आपको अपने भीतर अपने दुख का पूरा साक्षात हो जाए, अपनी पूरी इस दुखद स्थिति का और मृत्यु से घिरे हुए जीवन का अनुभव हो जाए, आपको ज्ञात हो जाए कि आप किस फिसलती हुई रेत पर खड़े हैं, और आपको ज्ञात हो जाए कि किन कागज की नावों में आप समुद्र में यात्रा करने निकल पड़े हैं, अगर आपको नीचे पता चल जाए कि सब निराधार है

और अधर में लटके हैं।। उस घबड़ाहट में पहली दफा आपको आत्मा जाननी है।। इसकी अरजेंट नीड पैदा होगी। उसके पहले नहीं हो सकती।
आप जिनके पास जाते हैं, जिनसे समझते हैं वे जरूर कहते हैं कि आत्मा को जानो, आत्मा को जानना बहुत जरूरी है। आत्मा को जानना बिल्कुल जरूरी नहीं हो सकता जब तक कि आप उस दुख को न जान लें, उस पीड़ा को न जान लें, उस परेशानी को न जान लें।। जिसका उपाय आत्मा को जानना है। यानी जिसको मिटाने का उपाय आत्मा को जानना है। तो आप यह जो सुन लेते हैं।। जाकर, आत्मा को जानना वगैरह... । बजाय इससे आपको दुख का साक्षात होने के, आपके दुख से पलायन होता है।
यानी मेरा कहना हैः धार्मिक आप तब बनेंगे जब आपको दुख का साक्षात होगा। और अभी आप धार्मिक इसलिए बने फिरते हैं कि किसी भांति दुख का साक्षात न हो जाए। अभी आप तरकीबें निकाले हुए हैं। आप सुन लेते हैं कोई कहता हैः आत्मा अमर है, बड़ा अच्छा लगता है। क्योंकि मरने से बचना चाहते हैं, मरना नहीं चाहते। डर लगता है मृत्यु का। तो आत्मा की अमरता अच्छी मालूम होती है। आत्मा की अमरता दो तरह से मालूम हो सकती है। एक तो उनको।।
जो मर कर देखेंगे। और एक उनको जो मरना नहीं चाहते और मरने से बचना चाहते हैं। जो मरने से बचना चाहते हैं और आत्मा की अमरता को मान लेते हैं।। वे कभी न जान सकेंगे। उनके लिए कोई जरूरत नहीं है। उनके लिए एक एस्केप है, एक पलायन है, एक बचाव है।
जो मरने की हिम्मत करेंगे। जो जीते-जी मरने की हिम्मत करेंगे। कल या परसों मैं इसके बाबत चर्चा किया हूं आपसे, जो जीते-जी मरने की हिम्मत करेंगे। सारा योग मरने की हिम्मत है। मरने की हिम्मत उस सबको छोड़ देने की जिसे हम जीवन समझते हैं। उस सबसे हटते जाने की जिसे हम जीवन समझते हैं। और उसमें डूबते जाने की जिसे दुनिया मृत्यु समझती है।
संन्यासी का नाम इसीलिए पहले बदल देते थे क्योंकि हम मान लेते थे वह आदमी मर गया। उसका दूसरा नाम रखने की जो परंपरा बनी। वह इसलिए बनी कि वह आदमी मर गया।। जिसे हम जानते थे। यह दूसरा आदमी है, इसको दूसरा नाम दे देते हैं। उसने सब तोड़ लिया अपना। वह सब जो वह जानता था कि जीवन है।। वह मर चुका है। और जो मुर्दे के संस्कार करते थे, वे ही संन्यासी के भी करते थे।। उसका सिर मूंड देना, उसे चिता के पास लिटा देना, उसे मरा हुआ घोषित कर देना। उसको नया नाम दे देना। यह तो, यह तो औपचारिकता थी। लेकिन मूल बात इतनी थी कि आदमी मर गया। वह जिस-जिस चीज को जीवन समझता था, अपने को उसने अलग कर दिया। इतना साहस जिसमें हो तो उसे दुख का बोध होगा, पीड़ा, परेशानी, भीतर इतनी का अनुभव होगा। आप इतने विक्षिप्त होने लगेंगे, इतने घबड़ा जाएंगे भीतर देख कर वह घबड़ाहट आपको पकड़ ले, तब आपको प्यास उठेगी कि मैं आत्मा को जानूं। क्योंकि उसको जाने बिना इस घबड़ाहट से छुटकारे का कोई उपाय नहीं होगा।
अब कोई आपको समझाए कि पानी बहुत जरूरी है, बहुत जरूरी है। शास्त्र के शास्त्र लिख डाले, समझा डाले। आप कहेंगे कि भई आप तो बहुत कहते हैं कि पानी बहुत जरूरी है, लेकिन हमको तो उसको खोजने की कोई इच्छा पैदा होती नहीं। पानी की जरूरत से पानी खोजने की इच्छा पैदा नहीं होती। प्यास से पानी खोजने की इच्छा पैदा होती है। और आत्मा को जानना बहुत अच्छा है, बहुत कीमती है।। इससे प्यास पैदा नहीं होती। वह पीड़ा का अनुभव होगा तो प्यास होगी। तो धर्म कुछ गलत रास्ते पर गया है।
पंडित आपको।। आत्मा अमर है, आत्मा को जानना चाहिए, ये समझाते हैं। संत
जो थे, सतपुरुष जो थे, वे यह नहीं समझाते थे। वे आपको आपकी पीड़ा का और दुख का दर्शन कराते हैं। वह आपकी स्थिति क्या है वास्तविक, इसमें आपको प्रवेश देते थे। उस स्थिति में जो घबड़ाहट होती थी, आप पूछते थे: इस घबड़ाहट से मैं कैसे मुक्त हो जाऊं, कैसे इसके बाहर हो जाऊं, कैसे यह विसर्जित हो जाए।। तो आप में प्यास पैदा होती है।
यानी प्यास आत्मा के समझाने से पैदा नहीं होती। प्यास आपके भीतर जो दुख की स्थिति, जो नरक मौजूद है।। उसको जानने से पैदा होती है। वह अगर हो तो बड़ा फायदा हो सकता है। जिस साधु के पास से आप तृप्त और संतुष्ट लौटें।।
समझना वहां जाना व्यर्थ है। और जिसके पास से जाकर आप अपने दुख के बोध से भर

कर, असंतुष्ट, पीड़ित और प्यासे होकर लौटें।। समझना वहां जाना सार्थक हुआ। उससे पैदा होगी कोई बात। फिर कभी इस पर चर्चा करेंगे और भी बहुत बातें पूछी हैं, कभी इस पर बात करेंगे।
वह कोई अर्थ के नहीं रह जाते हैं, क्योंकि मैं वही समझा रहा हूं, क्योंकि मैं वही समझा रहा हूँ, क्योंकि मैं वही समझा रहा हूं।। उसका कोई खास मूल्य नहीं है, कोई खास मूल्य नहीं है मैं आपको...
अगर आपके चित्त की स्थिति परिवर्तित हो जाए। आपका असात्विक भोजन अपने
आप छूटना शुरू हो जाएगा। यानी मेरा कहना है, असात्विक भोजन वह है।। जो शांत व्यक्ति न कर सके। अब मेरी जो परिभाषा हैः असात्विक भोजन वह है।। जो शांत व्यक्ति न कर सके। सात्विक भोजन वह है।। जो शांत व्यक्ति कर सके। ऐसा हुआ है।
मेरे पास एक वकील हैं।। मांसाहारी हैं। वे मेरे पास आते थे। मैंने उनसे कई दफा कहा कि आप कभी ध्यान के लिए आएं। ध्यान का शिविर था। वे बोले मैं आऊं तो मुझे यही डर लगता है कि जरूर आप वहां ये समझाएंगे कि मांस और शराब।। ये छोड़ देना चाहिए। ये मैं तो नहीं छोड़ सकता। अगर आप ठीक समझेंगे, ये चलते हुए ध्यान चल सके। मेरे जीवन को तो आप न छुएं, वह जैसा है रहने दें; और ध्यान चल सके, तो मैं जरूर आऊंगा।
मैंने कहाः मैं तो किसी के जीवन को नहीं छूता। वह जैसा है, आप जैसे हैं, वैसा चल रहा है। जब तक आप वैसे हैं, वैसे ही चलेगा। मैं उसे बिल्कुल नहीं छूता। आप जो करते हों, बिल्कुल किए चले जाएं।। मुझे उससे कोई मतलब नहीं है। मुझे तो आपसे मतलब है, आप आ जाएं।
वे आए, उन्होंने वे सात दिन प्रयोग करते थे, फिर तीन महीने तक उन्होंने सतत प्रयोग किया। तीन महीने के बाद उन्होंने मुझसे आकर कहा कि आपने मुझे धोखा दिया। आपने कहा: मैं आपके जीवन को नहीं छूऊंगा। लेकिन मेरा जीवन सब गड़बड़ हो गया।
मैंने उनसे कभी बात नहीं की।। उनके शराब और मांस के बाबत। लेकिन उनके चित्त में जो शांति का आगमन शुरू हुआ, वे मुझसे बोले कि मैं हैरान हूं अब यह सोच कर कि मैं मांस कैसे खाता रहा, कि मुझे खयाल नहीं आता कि मैं मांस खाता रहा, यानी मुझे कल्पना नहीं पड़ती कि मैं खाता रहा, मेरे लिए असंभव हो गया।
चित्त शांति में जो भोजन आप ले सकें; वह सात्विक आहार है। यानी सात्विक आहार से चित्त शांत नहीं होता। चित्त शांत हो तो सात्विक आहार हो जाता है। और असात्विक आहार से चित्त अशांत नहीं होता; चित्त अशांत होता है तो असात्विक आहार की इच्छा पैदा होती है। यानी मेरी बुनियादी बातें हैं।।
जहां आपमें सब भीतर से बाहर की तरफ आता है, बाहर से भीतर की तरफ कुछ नहीं आता, कुछ भी नहीं।
जिसे खाना मिल गया है वह खाने के बाबत नहीं सोचता, सोचने की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि भूखा आदमी सोचेगा। आपको पानी मिल गया है तो आप पानी की बाबत नहीं सोचते। लेकिन प्यासा आदमी सोचेगा। तो स्वाभाविक भी है।
तो जिसको आप उपवास कह रहे हैं उस उपवास में आत्मा के निकट तो वह बिल्कुल नहीं होता; शरीर के निकट जितना कभी नहीं था, उतना निकट होता है। उपवास से बिल्कुल विपरीत है जिसे आप उपवास कह रहे हैं।
एक साधु मेरे पास उस दिन थे। एक हिंदू संन्यासी थे। वे मुझसे, मेरे पास जिस दिन आए थे तो मुझसे बोले: आज मैं... मैं खाने को जाता था। मैंने उनसे कहा: आप खाना लेंगे।
वे बोले मन भोजन कर रहा है और कुछ भी नहीं कर रहा।
तब मैं देखता हूं उपवास करने वाले को, पहले खूब खाएगा; फिर उपवास कर लेगा, फिर चिंतन करेगा, उस दिन पूरा कि कल क्या करना है, कल क्या खाना है? फिर कल सुबह होते ही से वह खाने में लग जाएगा। इसको उपवास कहिएगा? जिसके आगे भी खाना है, जिसके पीछे भी खाना है।। वह प्रताड़ना हो सकती है, उपवास कैसे हो सकता है? और बीच में भी चिंतन उसी का है, उसी का है!
उपवास की ही भांति हमारे सारे क्रियाकांड छोटे और दो कौड़ी के हैं। उनका कोई मूल्य नहीं है, और गलत हैं। वह जितनी जल्दी छूट जाए, दुनिया में

आदमी को धार्मिक होना उतना आसान हो जाए। अब आपको दिक्कत यही लगेगी कि इसका मतलब यह हुआ कि मैं सब छोड़ देने को कहता हूं। सब क्रियाकांड छोड़ दूं, फिर हम क्या करें?
मैं आपको सच में कुछ करने को नहीं कहता, मैं तो आपके भीतर जो आप हैं।।
उसको अज्ञान से ज्ञान की तरफ जागृत करने को कहता हूं। वह जितना जागरण की तरफ होगा, उतना ही आप पाएंगे कि जीवन में बाहर अपने आप परिवर्तन होते चले जा रहे हैं। यही मेरी एनथ्रेसिसोजू है। अब इसे अगर ऊंची बात समझ कर टाल दें, तो बात अलग है।
कई दफे यूं होता है कि हम बहुत सी बातों को ऊंची इसलिए कह देते हैं कि करने से डरते हैं और करने से बचना चाहते हैं। एक एस्केप, एक पलायन खोजना चाहते हैं। जो बड़ी ऊंची बात है, इसे छोड़ो। और मैं इस संदर्भ में आपको कहूं कि महावीर को हमने भगवान बना दिया, क्राइस्ट को ईश्वर-पुत्र बना दिया, मोहम्मद को पैगंबर बना दिया, कृष्ण को स्वयं भगवान का अवतार बना दिया।।
इसके पीछे आदर कम हैं, इसके पीछे तरकीबें ज्यादा हैं। हमने एक तरकीब खोज ली कि हम सामान्य लोग हैं।। ये सब ईश्वर और भगवान, तीर्थंकर, बड़े-बड़े लोग हैं। ये जो कर सकते हैं हम कैसे कर सकते हैं।

धर्म की यात्रा
छठवां प्रवचन

जीवन के प्रेमी बनो, निंदक नहीं

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी बात की चर्चा आज मैं इस बात पर करना चाहता हूं। एक गांव था
और उस गांव के द्वार पर ही अभी जब सुबह का सूरज निकलता है, एक बैलगाड़ी आकर रूकी। एक बूढ़ा उस गांव के बाहर बैठा हुआ है द्वार पर। उस बैलगाड़ी के मालिक ने गाड़ी रोक कर पूछा कि क्या इस गांव के संबंध में मुझे कुछ बता सकेंगे कि इस गांव के लोग कैसे हैं? मैं उस गांव की तलाश में निकला हूं जहां के लोग अच्छे हों। क्योंकि मैं कोई नया गांव खोज रहा हूं।। बस जाने के लिए। इस गांव के लोग कैसे हैं क्या आप मुझे बता सकेंगे? मैं अच्छे लोगों की तलाश में निकला हूं, किसी अच्छे गांव की।
तो उस बूढ़े ने उस बैलगाड़ी के मालिक को नीचे से उपर तक देखा और कहा: इससे पहले कि मैं कुछ कहूं, एक प्रश्न का उत्तर चाहता हूं। मैं ये पूछना चाहता हूं कि उस गांव के लोग कैसे थे, जिसे तुम छोड़ कर आ गए हो?
उस आदमी ने कहा: उस गांव के लोगों से क्या संबंध है, इस गांव के लोगों
के बाबत बताने के लिए। फिर भी तुमने याद दिला दी, तो मेरा मन क्रोध से भर गया है। उस गांव जैसे दुष्ट लोग पृथ्वी पर कहीं भी नहीं होंगे, उन्हीं दुष्टों के कारण तो मुझे वह गांव छोड़ना पड़ा। और एक ही कामना लेकर निकला हूं कि किसी दिन समय मिला, शक्ति मिली तो उस गांव के लोगों को बताऊं गा कि उन्होंने क्या मेरे साथ किया है? उस गांव में बड़े रद्दी लोग हैं, उस गांव के लोगों की याद भी मत दिलाना, मेरा हृदय क्रोध से और आग से भर जाता है।
वह बूढ़ा हंसने लगा, उसने कहा कि नहीं-नहीं मैं क्यों याद दिलाऊंगा, लेकिन इतना बता दूं मैं इस गांव में सत्तर साल से रहता हूं, इस गांव के लोग उस गांव से भी ज्यादा बुरे हैं। आप आगे बढ़ जाएं, कोई और गांव खोज लें।
वह आदमी आगे बढ़ भी नहीं पाया था, अजीब संयोग कि एक और घुड़सवार वहां आकर रुक गया और उसने भी उस बूढ़े से पूछा कि मैं कोई नया गांव खोज रहा हूं, जहां बस जाना है, इस गांव के लोग कैसे हैं?
बूढ़ा बोला: हैरानी, आश्चर्य! अभी-अभी मैं उत्तर देकर चुका हूं, फिर भी तुमसे पूछे देता हूं कि उस गांव के लोग कैसे थे, जहां से तुम आते हो?
वह आदमी हंसने लगा, जैसे कोई मीठी याद उसकी आंखों में खुशी बन गई। और
वह कहने लगा, उस गांव के लोगों की याद भी एक संगीत से मन को भर देती है, बड़े प्यारे लोग थे। उस गांव को छोड़ना पड़ा मजबूरी में। लेकिन एक ही कामना लेकर, एक ही प्रार्थना लेकर निकला हूं कि कभी फिर जब दिन फिर जाएंगे तो उस गांव में वापस लौट जाऊं गा। मेरी कब्र उसी गांव में बने।। यही प्रार्थना है। बहुत भले थे वे लोग, और उसकी आंखों में खुशी के आंसू आ गए।। याद के।
उस बूढ़े ने कहा: घोड़े से नीचे उतर आओ, हम स्वागत करते हैं। मैं सत्तर साल से इस गांव में रहता हूं, मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं, इस गांव के लोग तुम्हारे गांव के लोगों से बहुत अच्छे हैं। तुम्हें लौटने की कभी जरूरत नहीं पड़ेगी। आओ, यह गांव बहुत अच्छा है।
अगर आप भी उस गांव के दरवाजे पर खड़े होते तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाते! मैं उस गांव के दरवाजे पर खड़ा था और बहुत मुश्किल में पड़ गया। मैंने दोनों ही उत्तर सुन लिए थे, इसलिए मुश्किल में पड़ गया। वह बूढ़ा बड़ा अजीब आदमी था। एक को कहने लगा कि गांव के लोग बहुत बुरे हैं, कहीं और खोज लो! एक को कहने लगा, गांव के लोग बहुत भले हैं, आ जाओ, स्वागत है!
बूढ़ा पागल था क्या?
नहीं; बूढ़ा पागल नहीं था। सत्तर साल के अनुभव ने उसे बता दिया था कि गांव वैसा ही हो जाता है जैसे हम हैं। गांव वैसा ही हो जाता है जैसे हम हैं। आदमी बुरा है तो गांव बुरा हो जाता है, आदमी अच्छा है तो गांव अच्छा हो जाता है। हम ही फैल कर तो गांव बन जाते हैं, हम ही फैल कर तो जीवन बन जाते हैं, हम ही फैल कर तो जगत बन जाते हैं। मैं जैसा हूं, वैसी ही दुनिया हो जाती है। मैं कांटों से भरा हूं तो सब तरफ कांटे ही कांटे हो जाते हैं। और

मेरे हृदय में फूल उगते हैं तो सारी दुनिया में फूल ही फूल खिल जाते हैं। हम जो देखते हैं, वह हमारे ही भीतर का प्रक्षेपण है, प्रदक्षण है। हमारे भीतर ही जो छिपा है, वही बिखर कर चारों तरफ दिखाई पड़ने लगता है।
दुनिया आपको कैसी दिखाई पड़ती है? इससे यह पता नहीं चलता कि दुनिया कैसी है? इससे यह पता चलता है कि आप कैसे हैं? जीवन आपको कैसा दिखाई पड़ता है? इससे ये पता नहीं चलता कि जीवन कैसा है? इससे ये पता चलता है कि आप कैसे हैं? यही जीवन किसी को स्वर्ग दिखाई पड़ सकता है और यही जीवन किसी को नरक। यह कैसे हो सकता है कि एक ही जीवन नरक हो, और एक ही जीवन स्वर्ग। यह कैसे हो सकता है कि एक ही जीवन आनंद बन जाए, और एक ही जीवन दुख और पीड़ा। एक ही रास्ता हो सकता है।। कि दुख, पीड़ा और आनंद।। जीवन को देखने के हमारे ढंग हैं। जीवन कोरा है, जीवन खाली है। जीवन की किताब में कुछ भी नहीं लिखा है, हम जो लिखते हैं वही लिख जाता है।
क्यों इस बात से मैंने यह सुबह की चर्चा उठा लेनी चाही।
इसलिए कि विगत सैकड़ों वर्षों से आदमी को धर्म के नाम पर एक बुनियादी रूप से गलत शिक्षा दी जा रही है। उसे कहा जा रहा है कि संसार बुरा है, असार है, जीवन पाप है।। ये समझाया जा रहा है आदमी को। ये समझाया जा रहा है कि यह सब बुरा है, यह सब पाप है, यह सब.असार है, यह सब छोड़ देने योग्य है। आदमी को यह समझाया जा रहा है कि जीवन का एक ही लक्ष्य है कि किस भांति जीवन को छोड़ने में सफल हो जाओ। आवागमन से कैसे मुक्ति मिले। इस तरह की नासमझी की बात आदमी को समझाई जा रही है। जीवन बुरा है, इससे कैसे छुटकारा हो जाए। जन्म बुरा है, मृत्यु बुरी है, जीवन बुरा है, सब बुरा है।। किस तरह छुटकारा हो जाए! जीवन से हम कैसे बच जाएं, ये समझाया जा रहा है आदमी को!
स्वभावतः इस दुर्भाग्यपूर्ण शिक्षा का जो परिणाम हो सकता था।। वह हो गया। जीवन बुरा हो गया, जीवन फसाद हो गया। क्योंकि हमारी दृष्टि, जीवन को देखने की दृष्टि गलत हो गई। हम भीतर से तैयार हो गए जीवन में असार देखने को, व्यर्थ देखने को, पीड़ा देखने को। हमने तैयारी कर ली कि जीवन बुरा है, हमने ये निर्णय ले लिया कि जीवन बुरा है। फिर जीवन बुरा हो गया और जीवन बुरा हो गया तो हमारा निर्णय बिल्कुल प्रमाणित हो गया, सिद्ध हो गया।। कि बिल्कुल ठीक था।
जीवन न बुरा है न भला। जीवन न सार है न असार। जीवन वैसा है जैसा देखने
की हमने तैयारी कर ली, और मन को निश्चित कर लिया। जीवन हमारे संकल्प का विस्तार है। यह जो आज सारे जगत में उदासी मालूम पड़ती है।। अर्थहीनता, मीनिंगलेसनेस मालूम होती है कि जीवन में कुछ भी नहीं, सब बेकार मालूम होता है। यह किन्होंने कर दिया यह जीवन को बेकार? उन शिक्षकों ने, उन टीचर्स ने, जिन्होंने कहा: जीवन असार, जीवन असार, जीवन असार। बुरा है: सब व्यर्थ है, सब छोड़ो। ये जो सबको छुड़ा देने वाले, सबसे अलग करा देने वाले।। जीवन को उदास और वैराग्य और जीवन की रिक्तता को समझाने वाले लोगों ने इस सारे जीवन को उदास कर दिया और पीड़ित कर दिया।
आदमी की आंखों में आज जो ये दुख के आंसू हैं, इन आंसुओं में उन लोगों
का हाथ है जिन्होंने उदासी की, वैराग्य की, त्याग की शिक्षा दी। यह जो जीवन था, व्यर्थ दिखाई पड़ने लगा है। इस व्यर्थता के पीछे उन लोगों का हाथ है। लेकिन आज भी हम कोई जाग गए हों, सचेत हो गए हों।। ऐसा नहीं है। आज भी हम उन्हीं बातों को दोहराए चले जाते हैं, आज भी वही दोहराए चले जाते हैं। आज भी वही कहे चले जाते हैं।
मैंने सुना है एक बार स्वर्ग के एक कैफे में... स्वर्ग में भी कैफे तो होंगे ही। क्योंकि जो आदमी यहां से मर-मर कर जाते हैं, वहां कुछ न कुछ इंतजाम करते ही होंगे। यहां की वापस वहां कुछ व्यवस्था करते होंगे। पुरानी किताबों में नहीं लिखा है ये कैफे हैं, कॉफीहाऊस हैं। क्योंकि पुराने दिनों में जमीन पर वह नहीं होते थे। पुराने दिनों में जमीन पर जो होता था।। वहां है।
एक कैफे में स्वर्ग के जहां अप्सराएं नाचती हैं, तीन अदभुत लोग बैठे हुए थे। एक टेबल के पास बुद्ध, कनफ्यूशियस और लाओत्सु बैठे हुए थे। और एक

अप्सरा नाचती हुई, हाथ में एक सुराही लिए हुए है।। उनके पास आई है, और बोली है: जीवन का रस पीएंगे।
जीवन का रस!
बुद्ध ने फौरन आंखें बंद कर लीं और कहा: क्षमा कर, क्षमा कर, जीवन तो दुख है कौन पीएगा। मैं देखना भी नहीं चाहता, पीना तो बहुत दूर है। दूर हट जा! बुद्ध पीठ फेर लिए।
कनफ्यूशियस ने आधी आंखें खोल कर देखा और कहा: एकदम से कहना मुश्किल
है कि जीवन का रस कड़वा है कि मीठा, थोड़ा सा चखे बिना कुछ भी कहना ठीक नहीं है। बुद्ध से कहा, मैं थोड़ा चख कर देखे लेता हूं क्योंकि बिना कुछ स्वाद लिए, कहना ठीक नहीं। एक छोटी सी प्याली में जीवन का रस लेकर उसने चखा और कहा कि नहीं; न मीठा है न कड़वा है, न पीने जैसा न त्यागने जैसा है।
वह जो तीसरा आदमी लाओत्सु बैठा हुआ था, उसने पुरानी सुराही हाथ में ले ली, उसने कहा सिर्फ चखने से कुछ भी पता नहीं चलता जब तक ये पूरा जीवन पी न लिया जाए। एक घूंट से क्या पता चलेगा? जब तक कि पूरा पी न लिया जाए। वह पूरी सुराही गटक कर पी गया। और पीकर नाचने लगा और उसने कहाः आंखें खोलो, बुद्ध से कहा, उसने कहाः आंखें खोलो। क्योंकि बहुत अलग था जीवन। उसने कनफ्यूशियस को कहा चूक गए तुम, क्योंकि तुमने घूंट लिया। पूरा पीते तो ही पता चलता, क्योंकि पूर्णता के बिना किसी चीज का कोई पता नहीं चलता है। ये घटना किसी पुराण में नहीं लिखी है। कहते हैं भविष्य... कोई पुराण लिखा जाएगा, उसमें लिखी जाएगी। भविष्य पुराण में लिखी जाएगी।
यह जो हम जीवन के, जीवन के रस के आसपास खड़े हुए लोग हैं, हम भी ये तीन व्यवहार करते हैं। या तो हम आंख बंद करके खड़े हो जाते हैं, जीवन को पीने से वंचित, जानने से वंचित और चिल्लाते रहते हैं।। असार है, असार है, व्यर्थ है, व्यर्थ है। और ये जो लोग इस भांति असार है और व्यर्थ कहते चले जाते हैं, इनके लिए तो असार और व्यर्थ हो जाता है। इसलिये नहीं कि वह असार और व्यर्थ था, बल्कि इसलिए कि इन्होंने असारता की दृष्टि को अपना लिया। या फिर कोई एकाध थोड़ा बहुत चखता है।
और थोड़े बहुत चखने से कुछ पता चलता है? कोई कविता में से एक पंक्ति को निकाल ले और उस पंक्ति की जांच-परख करे, तो पूरी कविता का कोई पता चलता है? कोई एक बड़े चित्र में से एक छोटा सा टुकड़ा काट ले, और उस टुकड़े की जांच-परख करे तो पूरे चित्र के संबंध में कुछ पता चलता है? कोई एक संगीत से, कोई एक वीणा को बजाता हो, और छोटे से चार स्वरों के टुकड़ों को तोड़ ले अलग, और उनसे जांच-परख करे तो कुछ पता चलता है? कुछ भी पता नहीं चलता।
जीवन के सारे अनुभव।। परिपूर्णता के, टोटेलिटी के, समग्रता के अनुभव हैं। समग्रता में ही पता चलता है कि क्या था? एक आदमी है, कोई उसके हाथ को काट ले और हाथ की जांच-परख करे और पूरे आदमी के बाबत निर्णय ले, उसका निर्णय सच होगा? उसका निर्णय बिल्कुल असच होगा।
क्योंकि खंड से उसने अखंड के बाबत जानने की कोशिश की, अखंड बहुत बड़ा था। हाथ कुछ नहीं कहता, सिर कुछ नहीं कहता, पैर कुछ नहीं कहता।। आदमी तो वह था जो सबका जोड़ था, और इकट्ठा था। वह इकट्ठेपन में, वह होलनेस में, वह उसकी इकट्ठेपन में ही।। वह खूबी थी, वह जादू थी, वह आत्मा थी।। जो पहचानी जाती तो शायद पता चलता; नहीं तो पता नहीं चल सकता। एक टुकड़े को आदमी चखता है, और फिर कह देता है कि नहीं कुछ स्वाद नहीं, लेकिन पूरे जीवन को आकंठ पी जाने वाले लोग बहुत कम हैं। जो पूरे जीवन को आकंठ पी जाता है, उसे मैं धार्मिक आदमी कहता हूं। और वही आदमी जीवन के सत्य को अनुभव कर सकता है।
ध्यान की तीसरी सीढ़ी है जीवन को आकंठ पी जाना, जीवन को पूरा पी जाना। आंख बंद करके जीवन के प्रति खड़े मत हो जाना। टुकड़े और खंड को चखने के बाद निर्णय मत ले लेना। पूरे जीवन को जैसा जीवन है उसकी समग्रता में, उसके अंश-अंश में, उसके रग-रग में, वैसे-वैसे में, कण-कण में जैसा जीवन है उसे पूरा आत्मसात कर लेना।। तो प्रकट होगी प्रभु की तस्वीर, तो प्रकट होगा परमात्मा।
क्योंकि जीवन के अतिरिक्त परमात्मा और कहां हो सकता है। लेकिन नहीं, हमें तो उलटी बात सिखाई गई है। हमें तो सिखाया गया है कि परमात्मा में और

जीवन में कोई बुनियादी विरोध है। कोई बुनियादी विरोध है।। जीवन और परमात्मा में। कोई शत्रुता है। तो जो जीवन के आनंद में संलग्न होता है वह परमात्मा का दुश्मन हो जाता है, और जो जीवन के आंनद को छोड़ कर रिक्त और उदास होता है वह परमात्मा का प्यारा हो जाता है।। ऐसी बात सिखाई गई है, जो बड़ी अजीब है!
अगर परमात्मा जीवन का विरोधी है तो जीवन के होने की कोई गुंजाइश न थी, कोई संभावना न थी। अगर परमात्मा जीवन का विरोधी है तो जीवन क्यों है, किसलिए है? जीवन के होने का फिर वजह क्या है, कारण क्या है, आधार क्या है? परमात्मा जीवन का विरोधी नहीं हो सकता। परमात्मा तो जीवन का अंतर्स्तप्राण है। इसलिये जीवन के विरोध में जो जाते हैं, वे परमात्मा तक कभी नहीं पहुंच पाते।
जीवन में जो लीन होते हैं और जीवन को जो पूरा पीते हैं, जीवन के साथ जो पूरा आत्मसात करते हैं, वे ही जीवन का साक्षात्कार भी कर पाते हैं। यह बात थोड़ी ठीक से समझ लेनी जरूरी है क्योंकि इसकी विरोधी जो बात है, उसकी जड़ें हमारे भीतर बहुत गहरी हो गईं। जीवन को सब तरफ से छोड़ देने का भाव हमारे भीतर हजारों साल से है। हमारे अनकॉन्सश तक, हमारे अचेतन तक प्रविष्ट हो गया है।
भोजन करो तो अस्वाद से भोजन करना, स्वाद लेना पाप है। शिक्षक समझाते हैं कि स्वाद लेना पाप है।। अस्वाद। स्वाद मत लेना। संगीत मत सुनना, क्योंकि संगीत का रस तो इंद्रिय का सुख है, कान का सुख है। सौंदर्य मत देखना, क्योंकि सौंदर्य।। सौन्दर्य तो रूप है। आंख फोड़ लेना तो तुम त्यागी हो। क्योंकि सौंदर्य तो रूप है, आंख का सुख है, ये तो सब इंद्रिय के सुख हैं, इन सबको छोड़ देना, इन सबको त्याग देना।
और इंद्रिय के सारे द्वार बंद कर दिए जाएं तो आदमी क्या बचा रहता है, पता है आपको?
कुछ भी नहीं।। नकार। इंद्रिय से सब तरफ दरवाजे बंद कर दिए तो आदमी क्या बचता है, नकार, ना कुछ। उसके अनुभव के सारे स्रोत अगर विषाक्त कर दिए, कह दिया कि यह रूप है, कह दिया कि यह स्वर है, कह दिया कि यह स्वाद है, कह दिया कि यह स्पर्श है।। तो जीवन से संबंधित होने के द्वार बंद हो गए, तो जीवन को पीने के द्वार बंद हो गए, तो जीवन का रस आप तक पहुंच सके।। उसके सब द्वार बंद हो गए। अब स्वभावतः आदमी उदास हो जाएगा, दुखी हो जाएगा, पीड़िति हो जाएगा, घबड़ा जाएगा, बेचैन हो जाएगा।
और इस बेचैनी, उदासी और दुख में परमात्मा को पा लेगा क्या?
परमात्मा को वही पाता है जो आनंद की पुलक से भर जाता है, दुख के आंसुओं
से नहीं, जो आनंद के गीत से भर जाता है। प्रभु के द्वार तक वे लोग पहुंचते हैं जो नाचते और मुस्कुराते पहुंचते हैं, रोते लोगों के लिए उस द्वार पर कोई जगह नहीं। दुख में रोते हुए लोगों के लिए कोई जगह नहीं। दुख और पीड़ा से भरे हुए लोग तो कुंठित लोग हो जाते हैं। दुख और पीड़ा से भरे हुए लोग उदास, और उदासीन लोग तो भीतर सिकुड़ जाते हैं। उनका फैलाव आपको पता होगा।
दुख में आदमी सिकुड़ता है, आनंद में फैलता है। आपको पता होगा दुख पकड़ लेता है तो आदमी कहता है मैं किसी से मिलना नहीं चाहता।
दुख में कोई किसी से नहीं मिलना चाहता, क्यों?
दुख सिकोड़ता है आदमी को, तोड़ता है। दुख में एक आदमी द्वार बंद कर लेता है, अपने कोने में बैठ जाता है।। क्यों? दुख सिकोड़ता है, दुख संकुचित करता है, दुख कुंठित करता है, दुख ज्यादा हो जाए तो एक आदमी आत्महत्या कर लेता है। ----आत्महत्या के द्वारा ----रूप से अपने को सिकोड़ लेता है अब किसी से संबंधित होने की कोई जरूरत नहीं।
आत्महत्या का और क्या मतलब है? इतना मतलब है कि अब मैं किसी से संबंधित नहीं होना चाहता। अब मैं किसी के जीवन में भागीदार नहीं होना चाहता। अब मैं कोई ऐसा मौका नहीं छोड़ना चाहता जहां कि मेरे अतिरिक्त मैं किसी और से जुड़ जाऊं। आत्मघात अपने को आखिरी रूप से सिकोड़ लेने से ज्यादा और क्या है।
लेकिन आनंद में... आनंद में आदमी फैलता है।

अगर एक आदमी कमरे के भीतर बंद है और आनंद से भर जाए।। तो तोड़ देगा दीवाल, भागेगा और नाचेगा खुली धूप में, और लोगों के पास जाएगा, अपना आनंद बांटना चाहेगा। आनंद में आदमी साझीदार बनता है, बांटता है, फैलता है।। दुख में सिकुड़ता है। और जितना मनुष्य फैलता है, उतना ही फैले हुए परमात्मा से एक होता है। परमात्मा क्या है।। फैलाव, विस्तार।
ब्रह्म का तो अर्थ ही होता है जो फैला हुआ है। वह जो अंतहीन पैदा हुआ है, वह जिस फैलाव का कोई अंत नहीं है, कहीं भी चले जाएं।। वह फैलता ही चला गया, फैलता ही चला गया और फैलता चला गया। कहीं नहीं पहुंच सकते हैं जहां पता चल जाए कि फैलाव का अंत आ गया।। उसी को तो ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म यानी विस्तार। ब्रह्म यानी अंतहीन विस्तार। तो जो आदमी जितना सिकुड़ जाएगा, उतना ही इस विस्तार से टूट जाएगा।
जो आदमी जितना फैल जाएगा, वह उतना ही इस विस्तार से एक हो जाएगा। इसलिए आनंद तो परमात्मा से जोड़ता है, दुख तोड़ता है। दुखवादी दृष्टि, वह पेसिमिस्ट, वह निराश विषादवादी दृष्टि, जीवन की निंदा की दृष्टि तोड़ देती है, सिकोड़ देती है, एक बिंदु पर ठहरा देती है।
आनंद, आशा, जीवन का रस और जीवन का छंद और जीवन के गीत के साथ तल्लीन हो जाने की पात्रता फैला देती है, फैला देती है, फैलाती चली जाती है। धीरे- धीरे फैलाव रह जाता है।। एक अंतहीन। उसी फैलाव का नाम प्रभु है, उसी फैलाव में जाना चाहता हूं।
और स्मरण रखें, जितना आदमी फैलता है उतना ब्रह्म हो जाता है। जितना सिकुड़ता है, उतना अहम हो जाता है। जितना सिकुड़ जाएगा, उतना ईगो का, अहंकार का एक बिंदु रह जाएगा कि मैं, "मैं"। जितना फैल जाएगा, जितना विस्तीर्ण हो जाएगा, उतना ही अहंकार का बिंदु खाली हो जाएगा, शून्य हो जाएगा। खो जाएगा हम, खो जाएगा सब। दुख मैं बनाता है, आनंद सब के साथ एक कर देता है।
जगत में धर्म की पराजय होती चली गई, क्योंकि धर्म दुखवादियों के हाथ में पड़ गया है। धर्म आनंदवादियों के हाथ में नहीं पहुंचा। धर्म दुखवादियों का अड्डा हो गया। जितने दुखवादी हैं वह सब धार्मिक हो जाते हैं, और उन दुखवादियों ने आनंद की इस भांति निंदा की है, इस भांति कंडेमनेशन किया है कि आनंद की तो बात ही करनी कठिन हो गई। आनंद तो पाप हो गया, मुस्कुराहट पाप हो गई है।
देखें संतों की लंबी परंपरा। उसमें रोते, उदास संत तो दिखाई पड़ेंगे, नाचते और मुस्कुराते हुए संतों की इतनी कमी है जिसका कोई हिसाब नहीं। मुस्कुराहट तो जैसे कहीं कोई न कोई पाप से जुड़ी हुई चीज है। उदास, मृत चेहरे, रोते चेहरे, कोई खुशी की खबर नहीं। खुशी तो, खुशी कहां! धर्म का खुशी से क्या संबंध है? उदासी।। ये जो दुर्भाग्यपूर्ण छाया उदासवादी की पड़ी है धर्म के ऊपर, इससे धर्म धीरे-धीरे क्षीण हो गया। रुग्ण लोगों का अड्डा हो गया, स्वस्थ लोगों का नहीं। रुग्ण आदमी की घोषणाएं होती हैं कुछ, अस्वस्थ आदमी के लिए कुछ घोषणाएं होती हैं।
ईश्वर रुग्ण और अस्वस्थ लोगों के पंजे में पड़ गया इसलिए बहुत मुश्किल
हो गई।
तो सुनी होगी न आपने बात कि एक लोमड़ी एक अंगूर के पास पहुंच गई थी। भलीभांति सुनी होगी, वह लोमड़ी हर गांव में रहती है, हर कोई पहचानता है। अंगूर के गुच्छे थे बहुत शानदार। बहुत रस से भरे हुए। स्वभावतः लोमड़ी छलांग लगाने लगी उन्हें पाने को, लेकिन लोमड़ी की छलांग छोटी थी, अंगूर के गुच्छे दूर थे। नहीं पहुंच सकी, नहीं पहुंच सकी, पहुंचने की कोशिश की थी बहुत। फिर वापस लौट चली और रास्ते में कहती गई, अंगूर बहुत खट्टे। अंगूर जो कि पाए ही नहीं गए थे, खट्टे हो गए थे।
अंगूर खट्टे नहीं थे, लोमड़ी की छलांग छोटी थी। लेकिन अहंकार ये मानने
को राजी नहीं होता है कि हम जिसे पाने में असमर्थ हो गए हैं वह पाने योग्य भी होगा। जिसे हम पाने में असमर्थ हो जाते हैं वह पाने योग्य ही नहीं है, अहंकार इसी भाषा में बोलता और सोचता है। जो लोग जीवन के रस को पाने में असमर्थ हो जाते हैं। वे फिर जीवन में प्रचार करते फिरते हैं।। जीवन असार है, जीवन व्यर्थ है, जीवन दुख है। यह मानने को राजी नहीं होते कि हम शायद

असफल, असफल हो गए जीवन के रस को पाने में। शायद हम हार गए, शायद हमारी छलांग छोटी पड़ गई। झुक के टूट गए।। ये बातें अहंकार राजी नहीं मानने को।
कोई राजी नहीं होता यह बात को मानने को कि मैं हार गया हूं। अहंकार इस भाषा में सोचता है, वह चीज जीतने लायक ही न थी। जीत कर करते भी क्या? हमने जीतना ही नहीं चाहा, इसलिये नहीं जीते। हमने छोड़ने दिया जीतने का खयाल। वह चीज ही व्यर्थ थी, कचरा था, सब व्यर्थ था, असार था।
एक संन्यासी के पास मैं मिलने गया। वे संन्यासी मुझे अपना एक गीत सुनाने लगे। वे एक बड़े संन्यासी, और हजारों संन्यासियों के गुरु। वे मुझे एक गीत सुनाने लगे और उनके भक्त जो वहां दस-पचास थे, वे सिर हिलाने लगे। बहुत, बहुत सुंदर, आप भी होते, आप भी सुंदर कहते।। गीत सुंदर था।
गीत में उन्होंने कहा था कि मैं तो एक फकीर हूं, धूल में पड़ा हुआ। तुम
एक राजा हो, तुम एक महाराज हो स्वर्ण-सिंहासनों पर बैठे हुए। लेकिन मुझे तुम्हारे स्वर्ण-सिंहासन की कोई फिकर नहीं, मुझे कोई मतलब नहीं, मेरी कोई चाह नहीं, मैं अपनी धूल में मजे में हूं।। ऐसा कुछ गीत था। स्वभावतः हमारी ऐसी पकड़ है, ये अच्छा लगा।
मैंने उनसे कहा कि आपने कभी सोचा, अगर आपको फिकर नहीं है स्वर्ण-सिंहासन की, तो कविता किसलिए लिखी स्वर्ण-सिंहासन के बाबत। ये बार-बार कहने की क्या जरूरत है कि मैं अपनी धूल में मजे में हूं। मुझे तुम्हारे स्वर्ण-सिंहासन से कुछ भी नहीं लेना। अगर कुछ भी नहीं लेना तो ये स्वर्ण-सिंहासन की याद भी क्यों आई। और मैंने अब तक नहीं सुना कि स्वर्ण-सिंहासन पर बैठे हुए किसी आदमी ने गीत लिखा हो कि मैं अपने स्वर्ण-सिंहासन पर मजे में हूं, तुम अपनी धूल में पड़े रहो, मुझे तुम्हारी धूल से कुछ नहीं लेना। आज तक किसी ने नहीं लिखा, ऐसा गीत ही नहीं लिखा।
यह बड़ी अजीब बात है। कहीं भीतर स्वर्ण-सिंहासन को पाने की कोई लालसा
रह गई है। अंगूर के गुच्छे कहीं दूर रह गए। कहीं कोई घटक, कहीं कोई पीड़ा, कहीं कोई घाव भीतर रह गया, वह बदला ले रहा है, वह घाव बदला ले रहा है, वह घाव कविता बन रहा है, वह घाव कह रहा है कि कंडेम करो इस स्वर्ण-सिंहासन को, निंदा करो इसकी।। कि है ही नहीं पाने योग्य, हमें क्या लेना-देना, हम अपनी धूल में मजे में हैं।
धूल में आप मजे में हो तो रहो मजे में, मजे में रहने वाला किससे कहने जाता है। क्या जरूरत है? ये चिल्लाने की क्या जरूरत है, क्या प्रयोजन है? यह स्वर्ण-सिंहासन दिखाई क्यों पड़ता है?
एक, एक गांव का एक लकड़हारा लकड़ियां काट कर लौट रहा था। बहुत सीधा और
भला और बहुत प्यारा आदमी था। साधु आदमी था। उसकी पत्नी भी उसके पीछे थी, वह दोनों चले आते थे। बहुत दरिद्र, बहुत दीन-हीन थे। लकड़ियां काटते, बेचते और गुजारा कर लेते। पत्नी तो पीछे थी, पति ने देखा कि राह के किनारे किसी, किसी घुड़सवार का, किसी यात्री की शायद पसनी गिर गई है, थैली गिर गई है।।
स्वर्ण अशर्फियों की। कुछ अशर्फियां बाहर पड़ी हैं, कुछ अशर्फियां झोली के भीतर हैं, थैली के भीतर हैं।। हजारों होंगी। ठहरा एक क्षण, उसे ख्याल आया कि मैं तो ठीक हूं, मैंने तो स्वर्ण के ऊपर विजय पा ली, लेकिन कहीं मेरी पत्नी का मन न डोल जाए।
पतियों को कभी भरोसा ही नहीं आता कि पत्नियों की भी कोई सामर्थ्य हो सकती है। पुरुष को कभी विश्वास नहीं आता कि स्त्री भी मोक्ष जा सकती है। उसको कोई... कहीं, मैं तो ठीक हूं लेकिन पत्नी? उसने जल्दी से गड्डे में सरका दी वे अशर्फियां और थैली और मिट्टी डाल दी। उठ भी नहीं पाया था, मिट्टी डाल ही रहा था कि पत्नी बीच में आ गई। उसने पूछा: क्या कर रहे हैं आप? कैसे रुक गए, क्या हुआ?
अब कसम ली थी कि सत्य ही बोलेंगे, असत्य बोलना नहीं है, बड़ी मुश्किल हो गई। कसम लेने वालों के साथ ये ही झंझट हो जाता है। कसम ले ली तो रोज झंझट। क्योंकि अक्ल तो होती नहीं ---- कोई विवेक तो होता नहीं, ---- जिनके पास बुद्धि और विवेक होते हैं वे कभी प्रश्न नहीं पूछते... उस वृक्ष से अपने को बांध लिया. अब बड़ी कसम, अब बड़ी मुश्किल! अब सामने क्या करें, क्या न करें?

झूठ बोल नहीं सकते फिर मजबूरी कि सच बोलना पड़ा। और मजबूरी में बोला गया सत्य सारा सौंदर्य खो देता है।
जब आनन्द से सत्य निकलता है तो सुंदर और जीवित होता है। और जब मजबूरी
से, परेशानी से निकलता है, तब असत्य से भी ज्यादा कुरूप हो जाता है। लेकिन व्रत वाले आदमी से ऐसे ही कुरूप सत्य निकलते हैं, क्योंकि उसका तो सारा जीवन परेशानी का और जबरदस्ती का जीवन है।
कहा मजबूरी से कि तू नहीं मानती तो कहे देता हूं, यहां अशर्फियां पड़ी हैं। और उन्हें मैंने यह सोच कर कि कहीं तेरा मन न डोल जाए, उनको गड्ढे में सरका दिया, मिट्टी से ढंक दिया। अब वह पत्नी खूब हंसने लगी।
उस दिन होना था कि सारी दुनिया उस जंगल में होती तो समझ लेती कि वह पत्नी क्यों हंसने लगी! उस दिन सबकी जरूरत थी कि वहां होते हैं, और सुन लेते हैं कि वह पत्नी खूब हंसने लगी, और खूब हंसने लगी।
उसके पति ने कहा: इतनी हंसती क्यों हो, पागल हो गई क्या?
उसने कहा मैं इसलिए हंसती हूं कि मैं हैरान हो गई, तुम्हें अब भी स्वर्ण दिखाई पड़ता है! और फिर मैं यह पूछती हूं कि तुम्हें मिट्टी पर मिट्टी डालते हुए जरा भी लाज न आई, शर्म न आई। तुम्हें स्वर्ण दिखाई पड़ता है! और मिट्टी पर मिट्टी डाल रहे हो, और सोच रहे हो कोई बहुत बड़ा काम कर रहे हो। मैं तो सोचती थी कि तुम स्वर्ण को जीत लिए, लेकिन नहीं, अभी जीत बहुत दूर है, अभी स्वर्ण तुम्हें दिखाई पड़ता है।
मैंने उन संन्यासियों को कहा: आपको राज-सिंहासन दिखाई पड़ते हैं, आपको धूल में और राज-सिंहासन में फर्क दिखाई पड़ता है।। फिर मामला बहुत दूर है। और कहीं कोई घाव रह गया, कहीं कोई पीड़ा रह गई जो कंडेम कर रही है।
ये जो साधु-संन्यासी जीवन के हर भोग को इतनी निंदा करते दिखाई पड़ते हैं, इसका कोई और कारण नहीं है सिवाय इसके कि भीतर भाव रह गए। जीवन के हर सुख का, जीवन के हर रस का जो निरंतर खंडन और निंदा चलती है, उसके पीछे और कोई मनोवैज्ञानिक कारण नहीं है, पीछे घाव रह गए हैं। वे घाव बदला ले रहे हैं। वह जिन लोगों को भी उन सुखों में देख रहे हैं, उनसे बदला ले रहे हैं। उनको कह रहे हैं कि तुम पापी हो और नरक जाना पड़ेगा। एक ही, यह ही सहारा है, कोई जहां भी ये बात हुई, जो सुख ले रहे हैं, नरक चले जाएंगे और तो कोई सहारा नहीं है।
भीतर तो मन इन्हीं पापों में जाने का होता है, लेकिन नरक के भय से अपने
को किसी तरह, किसी तरह रोके हुए हैं, जबरदस्ती रोके हुए हैं। ये जो, ये जो कंडेमनेट्री, ये जो निंदक का, ये जो अस्वस्थ, रुग्ण और जीवन के आनंद को उपलब्ध न करने वाले असफल लोगों की लंबी पंक्तिबद्ध परंपरा है।। वह परंपरा धर्म की गर्दन को घोट देती है, उसने घोट ही दी है पूरी तरह से। इन्होंने किस भांति ये सारी की सारी निंदा करने में सफल हो गए। ये असफल रहे, ये रुग्ण होंगे लेकिन ये सफल कैसे हो गए! इन्होंने किस भांति सारी मनुष्य-जाति के ऊपर ये, ये बोझ की तरह बादल घना कर दिया।। काला, कि जीवन का सारा रस, जीवन का सारा छंद छिन्न-भिन्न हो गया!
ये सफल होने का इनका सीक्रेट, इनकी तरकीब, इनकी विधी क्या थी? ये लोग आकस्मिक रूप से सफल नहीं हो सकते। सारे जगत में उदास चेहरा, हंसते हुए चेहरों पर क्यों जीत गया? रुग्ण-चित्त स्वस्थ चित्त के ऊपर हावी क्यों हो गया? इसने कौन सी तरकीब का उपयोग किया कि यह जीत सका, इसका राज क्या है, इसका सीक्रेट क्या था? उसका सीक्रेट।। है।
मैं एक जलप्रपात को देखने गया था, एक पूर्णिमा की रात में और एक निर्जन पहाड़ से गिरती हुई नदी को देखने गया था। अदभुत थी वह रात, अदभुत था वह जलप्रपात, अदभुत थी वे पहाड़ियां।
कौन सी रात अदभुत नहीं है? कौन सा पहाड़ अदभुत नहीं है? कौन सी गिरती हुई नदी अदभुत नहीं है, लेकिन आंख चाहिए।
एक मेरे मित्र मुझे वहां ले गए थे। थोड़ी ही दूर पहाड़ के नीचे रास्ते
पर गाड़ी रोक देनी थी, फिर थोड़ी दूर पैदल जाना था। जिस रास्ते पर गाड़ी रोकी, वहीं से उस निर्जन में, गिरते हुए जलप्रपात का... हवाओं में ठंडक मालूम होने लगी। मैं और मेरे मित्र उतरे और हम बाहर चलने लगे। तो मैंने अपने

मित्र को कहा कि तुम्हारी कार के ड्राइवर को भी बुला लें, वह क्यों यहां बैठा रहे? इतने सौंदर्य के निकट यहां क्यों बैठा रहे, उसे बुला लें।
वह हंसने लगे और कहा: आप ही बुला लें।
मैं कुछ समझा नहीं कि वह हंसे क्यों? लेकिन जब बुलाया उसे तो समझ में आया। मैंने उस ड्राइवर को कहा कि दोस्त तुम भी आ जाओ, क्यों यहां बैठे रहोगे, इस रास्ते पर? आदमी की बनाई हुई सड़क पर क्यों बैठे रहोगे, जब कि परमात्मा का बनाया हुआ प्रपात बिल्कुल पास है, चलो।
वह ड्राइवर हंसने लगा और उसने कहा: जाइए आप। वह ड्राइवर कहने लगा: मैं तो हैरान हूं कि लोग क्या देखने इस पहाड़ पर आते हैं, वहां कुछ भी नहीं है साहब, कुछ पत्थर हैं और पानी गिरता है और कुछ भी नहीं है! वहां कुछ है ही नहीं देखने जैसा, आप लोग काहे के लिए दीवाने हो जाते हैं यही हमारी समझ में नहीं आता! मुझे कई दफा लोगों को लाना पड़ता है। वे वहां देखने जाते हैं और मैं यहां बैठा-बैठा हंसता हूं कि इनको हो क्या गया है? है ही क्या वहां? पहाड़ हैं, पत्थर पड़े हैं, पानी गिर रहा है, आवाज हो रही है।। काहे के लिए दीवाने हुए जा रहे हैं?
मैंने अपने मित्र को कहा कि तुम्हारा यह ड्राइवर गलत धंधा चुन लिया है। इसे धर्मगुरु हो जाता तो ज्यादा सफलता मिलती, काहे के लिए ड्राइवर बना बैठा हुआ है? यह साधु-संत हो जाता तो महात्मा हो जाता। इसको सीक्रेट पता है, ट्रेड सीक्रेट पता है कि जीवन की निंदा कैसे की जाती है?
जीवन की निंदा इस भांति की जाती है। जीवन की वृहत्त इकाई को तोड़ दो टुकड़ों में, और पूछो कि क्या है इसमें? एक जलप्रपात में क्या है? तोड़ दो टुकड़ों में उसे।। पहाड़, पत्थर, पानी।। तोड़ दो टुकड़ों में, फिर पूछो कि यह क्या है इसमें? मामला खतम हो गया।
एक फूल खिला हुआ है, प्राणों को खींचे दिए देता है। लेकिन पूछो कि क्या है इसमें? लाल रंग है, सफेद रंग है, पंखुड़ियां हैं, जाओ लेबोरेटरि में और कैमिस्ट जांच करवा लो तो कुछ कैमिकल्स निकल आएंगे, कुछ खनिज निकल आएगा, कुछ और निकल आएगा।। है क्या इसमें? बस जान निकल गई। अब उत्तर देना बहुत मुश्किल हो गया।। कि क्या है इसमें?
आप किसी को प्रेम करते हैं, कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी को प्रेम करता है, कोई दोस्त अपने दोस्त को प्रेम करता है, कोई मां अपने बेटे को प्रेम करती है; पकड़ लो उसे और पूछो कि क्या है इसमें? है क्या इसमें।। कुछ हड्डियां हैं, कुछ मांस-मज्जा है, और है क्या इसमें जिसके लिए तुम दीवाने हुए जा रहे हो! और जांच करवा लो जाकर किसी डाक्टर से कि क्या है इसमें?
तो क्या निकलेगा? कुछ लंबाई की हड्डियां निकलेंगी, कुछ वजन की मांस-मज्जा निकलेगी, खून निकलेगा, यह सब निकलेगा।। है क्या इसमें? तोड़ दो इनको चीजों को अलग-अलग और पूछो कि क्या पागल हो गए हो? पूछो मजनू से कि पागल हो गए हो, लैला की जांच करवा लो।। है क्या इसमें? और मजनू हार जाएगा बेचारा। क्योंकि लेबोरेटरी में जांच में वही जीतेगा जिसने कहा कि ये-ये चीजें हैं।
वैज्ञानिक कहते हैं कि एक आदमी के शरीर में मुश्किल से पांच रुपये का सामान है, इससे ज्यादा का नहीं।। है भी नहीं। पांच रुपये के सामान के पीछे दीवाने हुए जा रहा है, पागल हुए जा रहा है, कह रहा है कि मर जाऊंगा अगर तुम मुझे नहीं मिलोगे।
पांच रुपये खींसे में डालो, अपने घर जाओ। कुछ थोड़ा सा लोहा है, कुछ कैल्शियम है, कुछ और धातुएं हैं, कुछ फॉसफोरस है, इस तरह की चीजें हैं शरीर में, और कोई अस्सी परसेंट तो पानी है। सो सड़क-सड़क पर मिल रहा है नल से, क्या इतनी परेशानी हो जाएगी। तोड़ दो चीजों को टुकड़ों में और फिर पूछो क्या है इसमें? और आप जीत गए। और दूसरी तरफ कोई उत्तर खोजना मुश्किल मामला है। धर्म गुरु को ये तरकीब पता चल गई, बहुत पुराने जमाने से, चीजों को तोड़ दो, दूसरा आदमी हार जाएगा। उत्तर देना फिर बिल्कुल कठिन नहीं है। क्योंकि वह जो है।। जोड़ में है। वह जो है, जो पकड़ता है और खींचता है, फूल में जो सौंदर्य है, वह न तो कैमिकल्स का है, न खनिज का है, न रंगो का है। इन सबके जोड़ में कोई अरूप प्रकट हो जाता है। आदमी में जो प्रकट हो रहा है, वह हड्डी-

मांस-मज्जा नहीं है। लेकिन इन सबके जोड़ से वह सिचुएशन बनती है, वह भूमिका बनती है कि वह जो अरूप है, वह प्रकट हो जाता है। वह जो आत्मा है, वह प्रकट हो जाती है।
प्रेम उसकी तरफ बहा जा रहा है।। न कैल्शियम की तरफ, न फॉसफोरस की तरफ,
न हड्डी की तरफ, न कुएं की तरफ, न पानी की तरफ। लेकिन इनको तोड़ के अलग कर दो तो वह अरूप विलीन हो जाता है। और लेबोरेटरि में यही चीजें रह जाती हैं। मार्कट्वेन का नाम आपने सुना होगा, अमरीका का एक खूब हंसने वाला हंसोड़ा आदमी था। और कई बार उतरे हुए चेहरे जो शास्त्रों में नहीं लिख पाते, वह हंसता हुआ आदमी किसी एक छोटी बात में कह जाता था। मार्कट्वेन का एक मित्र था, वह बहुत बड़ा उपदेशक था। बहुत बड़ा पंडित और ज्ञानी था। उसने मार्कट्वेन को कहा कि कभी तुम मेरा प्रवचन सुनने नहीं आए?
मार्कट्वेन ने कहाः क्या रखा है प्रवचन में? हम भी बोलना जानते हैं, सभी बोलना जानते हैं, बोलने में क्या रखा हुआ है? और सब उधार बाते हैं, सब चुराई हुई बातें हैं, इधर से चुरा ली, उधर से चुरा ली और बोल दिया।। है क्या इसमें? कौन सी नई बात है, जो मैं सुनने आऊं?
उसके मित्र ने कहा: फिर भी एक बार तो तुम आओ।
उसने कहा: मैं कल आता हूं। उसके मित्र ने बहुत सोचा, बहुत विचारा कि मार्कट्वेन कल आएगा तो कुछ मौलिक, कोई विचारपूर्ण चिंतन नहीं मिला तो क्या सोचेगा मन में? उसने बहुत सोचा उसके मन में जो-जो, जो-जो गहरे से गहरे अनुभव थे, वे सारे उसने उस प्रवचन में कहे, जिसमें मार्कट्वेन मौजूद था, वह सामने ही बैठा था।
लेकिन मार्कट्वेन बिल्कुल सख्त, जैसे स्कूल में परीक्षक बैठता है बच्चों के सामने।। ऐसा बैठा हुआ है। जैसे वह इंस्पेक्टर बैठता है पुलिस थाने में चोर के सामने।। ऐसा बैठा हुआ है। बिल्कुल हिलता-डुलता नहीं, चेहरे पर भाव भी नहीं आते खुशी के, इसके-उसके, बिल्कुल उपेक्षा से सुन रहा है। वह बेचारा घबराया जा रहा है, बार-बार देखता है ट्वेन की तरफ कि शायद, शायद वह मुस्कुराए, शायद उसके मन पर कोई भाव आए। लेकिन नहीं, वह बिल्कुल धर्मगुरु है, वह बिल्कुल बैठा हुआ है। वह घबड़ाए जा रहा है, उसका पसीना छूटा जा रहा है कि अब तो, इसको तो जरा भाव ही नहीं आते, इसकी आंख जरा झपकती भी नहीं, इससे इशारा भी नहीं मिलता, यह तो बिल्कुल पत्थर बना हुआ बैठा है जैसे मैं बिल्कुल बेकार की बातें कह रहा हूं। फिर प्रवचन भी पूरा हो गया। बाकी तो------मंत्रमुग्ध होकर सुन रहे हैं। वे दीवाने हो गए, वे पागल हो गए हैं। फिर वे दोनों मार्क ट्वेन को लेकर मित्र की गाड़ी में बैठ गए। रास्ते में उसने पूछा डरते-डरते, कैसा लगा, मैंने जो कहा वह कैसा लगा?
मार्क ट्वेन ने कहाः क्या लगना था उसमें, था क्या? किसको पूछते हो क्या लगा, घंटा भर खराब कर दिया, सिर फार डाला, था क्या वहां?
उस आदमी ने कहा: कुछ भी नहीं था? मैंने जो कहा, वह कुछ भी नहीं था?
कुछ भी नहीं था। शब्द-शब्द ही शब्द थे, और तुम्हें मैं बता दूं शायद तुम्हें पता न हो कि मैं पिछले सप्ताह एक किताब पढ़ रहा था, उसमें यह सबके सब, जो-जो तुमने कहा, एक-एक शब्द उसमें मौजूद है। सब नकल और चोरी है। सब बॉरोड, सब उधार। इसमें मौलिक कुछ भी नहीं है। खयाल छोड़ दो।। भ्रम, कि बड़े मौलिक चिंतक हो। उन लोगों ने किताब नहीं पढ़ी, इसलिए ताली बजा रहे थे। मैंने वह किताब पढ़ी है। वह आदमी तो बहुत हैरान हुआ, क्योंकि उसने कोई किताब पढ़ कर नहीं बोला था वह।
उसने कहा: यह तो हो भी सकता है कि मैंने जो कहा उसमें से कोई बात किसी किताब में हो, लेकिन तुम कहते हो एक ही किताब में सब शब्द।
उसने कहाः एक-एक शब्द और चाहो तो शर्त लगा लो। उस व्यक्ति ने शर्त लगा
ली कि ठीक है, सौ डालर की शर्त रही कि अगर तुम वह किताब मुझे बता दो, जिसमें मैंने जो कहा है, एक-एक शब्द हो।
उसने कहा: सुबह मैं किताब भेज दूंगा। किताब मेरी टेबल पर रखी है।
मित्र तो बड़ा हैरान था, पक्का करके घर लौटा कि सौ रुपये हार गए बातचीत के जोश मे आकर।

लेकिन गलती में था वह मार्कट्वेन सौ डालर जीत लेगा। उसने एक डिक्शनरी शब्दकोश भेज दिया, कि इसमें सब एक-एक शब्द हैं। सौ डालर भेज देना, नौकर के हाथ किताब मैं भेजता हूं। इस शब्दकोश में सब शब्द हैं जो-जो आप बोले हैं। एक-एक खोज लें, जो भी न मिले, मुझे बता दें। ये फलां शब्द नहीं मिलता। यह जीत गया, जीत जाएगा, जीत गया।
लेकिन ये व्यंग्य बड़ा अर्थपूर्ण है। धर्मगुरु ऐसे ही जीत गए जीवन भर। विश्लेषण, ऐनालिसिस कर दी, चीजों को तोड़ दिया। उनमें जो भी था महत्वपूर्ण, वह उनके जोड़ में था, उनके इंटीग्रेशन में था। वे चीजें इकट्ठी थीं।। तब था। एक गीत में क्या है? शब्द ही तो होते हैं। लेकिन शब्दों के जोड़ से कोई चीज प्रकट होती है जो शब्दों से ज्यादा है, शब्दों से ऊपर है, शब्दों से बहुत ज्यादा है। चीजें जोड़ से ज्यादा हैं, चीजें जोड़ ही नहीं हैं। अगर चीजें जोड़ ही हैं तो जगत में फिर कोई परमात्मा नहीं है, फिर कोई आत्मा नहीं है।
चीजें जोड़ से ज्यादा हैं। गणित का जोड़ नहीं हैं कि दो और दो चार ही होते हैं। हड्डी और मांस-मज्जा का जोड़, हड्डी और मांस-मज्जा का जोड़ ही नहीं है, कुछ चीज इस जोड़ से ज्यादा प्रकट हो जाती है। जोड़ केवल एक अवसर है, एक मौका है, जिसमें वह जो ट्रांसेंडेंट है, वह जो पार है, अतीत है, वह प्रकट होता है।
एक कवि ने चार शब्द इकट्ठे किए हैं, उस भाव को प्रकट करने के लिए।। जो शब्दों से पार है, उन चार शब्दों के जोड़ में वह भाव स्पंदित होता है। एक चित्रकार ने रंग इकट्ठे किए हैं और एक चित्र बनाया है। चित्र रंगों का जोड़ नहीं है, चित्र रंगों का जोड़ नहीं है। रंगों के जोड़ से उसे प्रकट करने की कोशिश की है।। जो रंगों में नहीं आता। शब्द से उसे कहने की कोशिश की जाती है, जो निःशब्द है।
मैं प्रेम से आपका हाथ अपने हाथ में ले लेता हूं। लेकिन प्रेम से लिया गया हाथ, और मैं क्रोध से आपका हाथ अपने हाथ में ले लेता हूं। इन दोनों हालतों में विज्ञान कोई फर्क नहीं कर सकता कि दो हाथों के जोड़ में क्या फर्क है। क्रोध से हाथ में लिया गया हाथ, प्रेम से हाथ में लिया गया हाथ।।
अगर इन दोनों हाथों की वैज्ञानिक परीक्षा की जाए, तो हड्डी-मांस-मज्जा एक दूसरे को जकड़े हुए मिलेंगे, और कुछ भी नहीं है। लेकिन प्रेम से हाथ में लिए गए हाथ में फर्क है, क्रोध से हाथ में लिए गए हाथ में फर्क है।। क्या फर्क है?
दो हाथों का मिलना दो हाथों का जोड़ नहीं है, उससे ज्यादा भी कुछ है।
और वह ज्यादा, किसी लेबोरेटरि में, किसी तराजू पर पकड़ में नहीं आता।। वह ज्यादा, पकड़ में नहीं आता है। वह ज्यादा क्योंकि पकड़ में नहीं आता है, पकड़ से छूट जाता है, एकदम छूट जाता है।। जहां हमने चीजों को तोड़ा, वह विलीन हो जाता है।। बस। यह तरकीब है सारे जीवन को निंदित कर देने की। भोजन में क्या है? स्वाद में क्या है? थोड़ी सी लार, और क्या है? जीभ और उसमें थोड़े से जीभ के जो संवेदनशील हिस्से हैं, वे थोड़े प्रभावित हो जाते हैं।
तो ठीक है थोड़ी सी हलचल मच जाती, थोड़े रस सूख जाते हैं, है ही क्या? संगीत में क्या है? एक पागल आदमी ठोंके चला जा रहा है तारों को, और आप बैठे सुन रहे हैं। दिमाग खराब। एक आदमी तार ठोक रहा है और आप बैठे सुन रहे हैं। कर क्या रहा है वह आदमी? सितार में है क्या? तार कसे हैं और एक आदमी ठोंके चला जा रहा है। कानों के पर्दों पर थोड़ी आवाज की चोट पड़ रही है, और है क्या? नहीं; लेकिन।। है। बहुत कुछ है। वह सितार के तार ही नहीं, आदमी के हाथ
ही नहीं, वह तंबूरा ही नहीं, कान पर पड़ती चोट ही नहीं, इन सबके इकट्ठे जोड़ से कुछ प्रकट हो गया है।। जो जोड़ से बाहर है, और अतीत है और पार है। वह जो पार है, वही जीवन का रस है, वही जीवन का छंद है। लेकिन गणितज्ञों ने, निंदकों ने तोड़ कर रख दिया है जीवन को और कह दिया जीवन असार है।। कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं।
यह जो जीवन की असारता अगर मन में पकड़ गई हो, जीवन की व्यर्थता अगर मन में पकड़ गई हो, जीवन का दुख अगर मन में पकड़ गया हो, तो परमात्मा और आपके बीच अलंघ्य खाइयां आपने खड़ी कर ली हैं। परमात्मा अगर कुछ है तो रस है,

परमात्मा अगर कुछ है तो छंद है। परमात्मा अगर कुछ है तो काव्य है, परमात्मा अगर कुछ है तो अरूप का स्पंदन। वह जो टुकड़ों में छूट जाता है और समग्र में इकट्ठा हो जाता है।। वह है। और उसे पाने के लिए यह गलत दृष्टि मन से हट जानी चाहिए। निंदक का भाव मन से हट जाना चाहिए। भोजन भी ऐसे, इतने आनंद से जैसे मंदिर की प्रार्थना, तब आपको पता चलेगा कि भोजन क्या है? भोजन भी ऐसे जैसे मंदिर की पूजा और प्रार्थना, भोजन भी ऐसे जैसे भगवान का प्रसाद।। तब अन्न भी ब्रह्म हो जाए तो आश्चर्य नहीं है। क्योंकि वह भाव फिर भोजन के स्वाद में एक नये अर्थ को प्रकट कर देगा।
जीवन के क्षुद्रतम में भी विराट मौजूद है, लेकिन क्षुद्रतम को विराट
की दृष्टि से देखने की क्षमता और पात्रता।। क्षुद्रतम में भी। एक-एक आंख में भी उसकी झलक है, लेकिन देखने का सवाल! एक-एक फूल में भी वह है, एक-एक पत्ते में भी वह है, लेकिन देखने की बात! और जब देखने से कोई तैयार हो जाता है तो वह दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है।। वह तो है। लेकिन हमने तो विरोधी रुख बना कर रखा है, हम तो पीठ किए खड़े हैं, निंदक हमेशा पीठ किए हुए खड़ा है, उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ता है।
इस तीसरे सूत्र में मैं आपसे कहना चाहता हूं जीवन के निंदक नहीं, जीवन
के प्रेमी। अगर ध्यान की परिपूर्ण प्रणाली में प्रवेश करना है तो जीवन का प्रेम।। आमूल, समग्र जीवन का प्रेम, बिना निषेध के प्रेम।। फूल का भी और कांटे का भी। क्योंकि फूल शायद न हो सकता, अगर कांटा न होता। कांटे के बिना शायद फू ल न हो सकता। फिर जिस जड़ से फूल निकलता है, उसी से कांटा निकलता है। तो कांटे और फूल के भीतर गहराइयों में कहीं न कहीं कोई तादात्मय, कहीं न कहीं कोई एकता, कहीं न कहीं एक ही बात होनी चाहिए, नहीं तो फिर कांटा और फूल एक से ही कैसे निकल आता है! जहां से फूल निकलता है, वहीं से कांटा निकलता है।। उसी जड़ से, उसी बीज से।
तो कांटे और फूल में ऊपर हमें विरोध दिखाई पड़ रहा है और लेकिन भीतर गहरे में विरोध नहीं हो सकता।। अविरोध है। तो फूल को भी प्रेम, कांटे को भी प्रेम; प्रकाश को भी प्रेम और अंधकार को भी प्रेम; भले को भी प्रेम और बुरे को भी प्रेम। क्योंकि शायद जैसे फूल और कांटा एक ही जगह से निकलता है; भला और बुरा, अंधेरा और प्रकाश भी एक ही जगह से जन्म पाते हैं, और निकलते हैं। शायद हम उनकी गहरी यूनिटी को नहीं खोज पाते इसलिए हमें विरोध दिखाई पड़ता है कि अंधेरा बुरा और प्रकाश अच्छा। ऐसा कैसे हो सकता है।। अंधेरा बुरा और प्रकाश अच्छा? क्योंकि अंधेरा न हो तो प्रकाश के होने की भूमि ही मिट जाती है। प्रकाश है क्योंकि अंधेरा है, फूल है क्योंकि कांटा है, राम हैं, क्योंकि रावण है। राम के होने की जड़ बन जाती है?
समग्र जीवन के प्रति प्रेम का भाव, तो इस सारे जीवन में एक यूनिटी, एक एकात्म, एक तार फैला हुआ मालूम पड़ेगा। वह जो इनर यूनिटी है, वह जो अंतरक्त एकता है उसी का नाम परमात्मा है। जीवन के भीतर जो अंतरस्थ एकता है।। अखंड, कांटे और फूल में भी नहीं टूटती और जुड़ी है; अंधेरे और प्रकाश में भी नहीं टूटती और जुड़ी है; जीवन और मृत्यु में भी नहीं टूटती और जुड़ी है। वह जो अखंड सूत्रबद्धता है; हमें तो उलटा दिखाई पड़ता है, जीवन तो अच्छा लगता है, मौत बुरी लगती है।। पर आप पागल हो गए हैं!
अगर जीवन अच्छा है और मौत बुरी है, और मौत न हो तो जीवन हो सकता है? मौत
है इसलिए जीवन है। मौत और जीवन किसी आंतरिक इकाई के दो हिस्से हैं। किसी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और सिक्का अगर बचाना है तो दोनों पहलुओं को ही बचाना पड़ेगा, एक पहलू नहीं बचाया जा सकता। ऐसा नहीं हो सकता कि एक पहलू बचा लें, दूसरा फेंक दें। जीवन के प्रति प्रेम, जिस दिन मौत के प्रति भी प्रेम बन जाता है; फूल के प्रति प्रेम, जिस दिन कांटे के प्रति भी प्रेम बन जाता है; प्रकाश के प्रति प्रेम, जिस दिन अंधकार के प्रति भी प्रेम बन जाता है।। सारे जीवन के, इकट्ठे, पूरे जीवन के प्रति प्रेम।। उस दिन, उस दिन ही केवल ध्यान की परिपूर्णता उपलब्ध हो सकती है, उसके पहले नहीं।
निंदक का भाव छोड़ दें, तोड़ने वाले का भाव छोड़ दें, वह ऐनालिस्ट, विश्लेषक का भाव छोड़ दें। एक सिंथेटिक ऐटिट्यूड, चीजों के इकट्ठे होने का

भाव; तो फिर, फिर जीवन में घटना घट सकती है, फिर घट सकता है।। वह, फिर उतर सकता है।। वह।
लेकिन हम... पूरी मनुष्यता पीड़ित रही है इस निंदा के भाव से। उन निंदकों ने सब चीजों को दो हिस्सों में तोड़ दिया। यह भाव अधार्मिक है। निंदक का भाव। धार्मिक व्यक्ति का भाव प्रेमी का भाव है। परिपूर्ण प्रेम का भाव। तो जीवन के प्रति प्रेम की सरिता को बहने दें।। बेशर्त। क्योंकि शर्त लगाई कि निंदा शुरु हो गई। यह मत कहें कि मैं इसको प्रेम करूंगा और उसको नहीं, क्योंकि इसको और उसको के बीच कोई आंतरिक एकता है। यह मत कहें कि मैं इसको चाहूंगा और उसको नहीं, यह मत कहें कि यह मुझे पसंद है और वह नहीं। क्योंकि जो आपको पसंद है और जो आपको पसंद नहीं है।। वह दोनों एक ही जगत में एक साथ मौजूद हैं, उनके भीतर कोई आंतरिक एकता है। यह मत कहें कि मैं स्वर्ग जाऊंगा, नरक नहीं; यह मत कहें। यह मत कहें कि मैं सुख ही चाहूंगा, दुख नहीं। यह मत कहें कि मैं जन्म ही चाहता हूं, मृत्यु नहीं।
एक सूफी फकीर औरत थी राबिया। वह एक दिन एक गांव में भागी हुई चली जाती थी। उसके हाथ में एक मशाल थी, और एक हाथ में एक पानी का घड़ा। लोगों ने पूछा कि राबिया यह क्या हो गया, भागती जाती, पागल हो गई हो? यह हाथ में मशाल और घड़ा किसलिए? उसने कहा कि मैं जा रही हूं कि मशाल से स्वर्ग में आग लगा दूं और पानी से नरक को डुबो दूं।
उन्होंने कहा, क्या हो गया है तुम्हें? उसने कहा कि इन दो ने, स्वर्ग
और नरक के फासले ने धार्मिक आदमी को नष्ट कर दिया है। धार्मिक आदमी चुनाव करने लगा कि नर्क मुझे जाना नहीं, स्वर्ग मुझे जाना है। और जिसने जगत में चुनाव किया, उसने पूरे परमात्मा को स्वीकार नहीं किया।
पूर्ण के स्वीकार का अर्थ है: मेरी कोई च्वाइस नहीं, मेरा कोई चुनाव नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि यह पसंद और वह नापसंद। मैं यह कहता हूं: जो है वह भी भीतर है, जो है वह प्रेम का पात्र है।। जो है। अगर मुझे उसमें कुछ पसंद नहीं पड़ता तो यह मेरी गलती होगी, यह मेरी भूल होगी, यह मेरी नासमझी होगी, क्योंकि वे दोनों एक साथ हैं। तो उन दोनों के भीतर कोई आंतरिक संबंध है, कोई आंतरिक इकाई है, कोई आंतरिक जोड़ है। और जो पूरे को जानता होगा वह जानता होगा कि ये दोनों एक साथ ही हो सकते हैं, अलग-अलग नहीं हो सकते।
जिस दिन इतना च्वाइसलेस, इतना चुनाव रहित चित्त हो जाता है, उस दिन ध्यान हो गया। तो ध्यान को मैं कहता हूं: च्वाइसलेसनेस। ध्यान को मैं कहता हूं: अचुनाव, अनिर्णय, अभेद। जीवन की समग्रता को, उसकी समग्रता में जैसा है, वैसी स्वीकृति। तब फिर ध्यान के आने में देर कहां रही? फिर कहां रही बाधा, फिर कहां रहे पहाड़, कहां रही दीवालें, जिन्हें पार करना है।। गिर गए वे।
तो यह मैं तीसरा सूत्र आपको कहना चाहता हूंः जीवन के प्रति प्रेम। बहुत जो चुकी जीवन की निंदा, और उसका फल भी बहुत भोगा जा चुका है। जीवन के निंदकों ने ही यह जगत ऐसा गंदा, ऐसा कुरूप और ऐसा व्यर्थ बना दिया, काश! जितनी निंदा की गई जीवन की, इतने जीवन के प्रेम के गीत गाए गए होते, काश! जीवन के आनंद की इतनी उदभावनाओं को उठाया गया होता, काश! जीवन की क्षुद्रतम बातों के प्रति भी प्रेम की गंगा बहाई गई होती।। तो यह पृथ्वी कुछ और होती, कुछ दूसरी होती, बिल्कुल दूसरी होती।
यह सुदंर होती, यह शिव होती, यह सत्य होती, लेकिन यह नहीं हो सका। क्योंकि धर्म रुग्ण, निंदकों के हाथ में रहा है। अब तक धर्म हंसते हुए चेहरे का नहीं बन पाया है, रोते हुए चेहरे का है।
यह तीसरा सूत्र स्मरण रखेंगे। इसे थोड़ा जीवन में प्रयोग करेंगे तो उसके बहुल परिणाम आने सुनिश्चित हैं। अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे दस मिनट के लिए।

धर्म की यात्रा
सातवां प्रवचन

समाज अनैतिक क्यों है?

मेरे प्रिय आत्मन्!
तीन दिनों की चर्चाओं के कारण बहुत से प्रश्न इकट्ठे हो गए हैं। उनमें जो प्रश्न केंद्रीय हैं या जो प्रश्न बहुत-बहुत लोगों ने पूछे हैं, उन पर आज अंतिम दिन मैं विचार कर सकूंगा। बहुत लोगों ने यह पूछा है कि देश में, समाज में समाज सुधारक हैं, साधु हैं, नेता हैं।। वे सब तरह का प्रयास कर रहे हैं। लेकिन समाज की नैतिकता सुधर नहीं रही; भ्रष्टाचार सुधर नहीं रहा, समाज का जीवन ऊपर नहीं उठ रहा। इसका क्या कारण है?

एक छोटी सी कहानी से मैं कारण समझाने की कोशिश करूं।
एक गांव में एक स्कूल में, सुबह ही सुबह स्कूल का निरीक्षण करने के लिए इंस्पेक्टर का आगमन हुआ। सुबह ही थी अभी। इंस्पेक्टर आया निरीक्षण को। स्कूल की जो सबसे बड़ी कक्षा थी उसमें वह गया। और उसने जाकर विद्यार्थियों से कहा कि मैं निरीक्षण करने आया हूं। लेकिन समय मेरे पास ज्यादा नहीं। मैं ज्यादा लोगों से प्रश्न नहीं पूछ सकूंगा। तो कक्षा में जो तीन विद्यार्थी श्रेष्ठतम हों।। प्रथम, द्वितीय, तृतीय जो हों।। वे ही केवल तीन मेरे प्रश्न का उत्तर दे दें तो पर्याप्त होगा। उसने तख्ते पर प्रश्न लिखा और कहाः जो कक्षा में जो प्रथम विद्यार्थी हो, वह आगे आ जाए। जो प्रथम विद्यार्थी था।। वह उठा, बोर्ड के पास गया, प्रश्न को हल किया। उसने प्रश्न ठीक हल किया था। वह वापस अपनी जगह जाकर बैठ गया। फिर नंबर दो का विद्यार्थी आया। उसने भी प्रश्न हल किया। वह भी अपनी जगह जाकर बैठ गया। फिर नंबर तीन का विद्यार्थी उठा। लेकिन नंबर तीन का विद्यार्थी उठते में झिझका, डरा, भयभीत सा तख्ते के पास आया। उसके भय और डर को देख कर इंस्पेक्टर ने उसे गौर से देखा, तो उसे शक हुआ कि यह तो मालूम होता है जो पहली बार आया था, वही लड़का है। दुबारा आ गया है। तो उसने उसे पकड़ा और कहा कि क्या तू मुझे धोखा देना चाहता है। मालूम होता है तू पहली बार भी आकर सवाल हल कर गया है।
उस लड़के ने कहाः धोखा तो नहीं देना चाहता। लेकिन मैं वही लड़का जरूर हूं जो पहली बार भी आया था।
शिक्षक, उसने कहा कि फिर दुबारा क्यों आया?
उस लड़के ने कहा: हमारी कक्षा का जो नंबर तीन का लड़का है, वह आज क्रिकेट
का मैच देखने चला गया है। और मुझसे कह गया है कि उसका कोई काम पड़ जाए, उसकी जगह मैं कर दूं। तो मैं उसकी जगह आया हूं।
इंस्पेक्टर ने कहाः पागल, तुझे यह भी पता नहीं है कि परीक्षा किसी दूसरे की जगह नहीं दी जा सकती। यह धोखा है, यह बेईमानी है, यह असत्य की शिक्षा है। तू अभी से, इस उम्र से बेईमानी सीख रहा है। बहुत डांटा, बहुत चिल्लाया। वह विद्यार्थी कंपता हुआ, घबड़ाया हुआ अपनी जगह बैठ गया। फिर वह इंस्पेक्टर शिक्षक की तरफ मुड़ा, जो बोर्ड की तरफ एक कोने में चुपचाप खड़ा था।
उस इंस्पेक्टर ने कहाः महाशय, यह बच्चा तो धोखा दे रहा था सो ठीक है।
आप क्या कर रहे हैं खड़े हुए? आपने क्यों नहीं कहा: यह लड़का दुबारा आया है? मैं तो पहचानता भी नहीं, लेकिन आप तो पहचानते हैं?
उस शिक्षक ने कहाः माफ करें, मैं इन लड़कों को बिल्कुल नहीं पहचानता।
इंस्पेक्टर ने कहाः आप स्कूल के शिक्षक, इस कक्षा के शिक्षक हैं। लड़कों को नहीं पहचानते?
तो उसने कहाः नहीं, असल बात यह है कि मैं पड़ोस की कक्षा का शिक्षक हूं।
इस कक्षा का शिक्षक तो क्रिकेट का मैच देखने चला गया है। वह कह गया है कि उसकी जगह कोई काम पड़ जाए तो मैं जरा खड़ा हो जाऊं। तो मैं तो उसकी जगह खड़ा हुआ हूं। माफ करिए, मैं लड़कों को नहीं पहचानता हूं।

अब तो इंस्पेक्टर के आगबबूला होने का वक्त आ गया कि यह क्या मामला है? तुम भी धोखा दे रहे हो। तुम भी किसी की जगह खड़े हुए हो। बहुत चिल्लाया और कहाः नौकरी से अलग कर दिए जाओगे। यह क्या मामला है? शिक्षक घबड़ाया। बेचारा गरीब शिक्षक, नौकरी से अलग हो जाए तो बहुत मुश्किल! बच्चे भी रोने लगे और घबड़ा गए। इंस्पेक्टर को भी दया आ गई।
फिर उसको दया आई तो उसने कहा: मत घबड़ाओ, मत रोओ। तुम्हारा भाग्य, तुम्हारी किस्मत कि तुम समझो आज तुम बच गए! मैं असल में असली इंस्पेक्टर नहीं हूं। इंस्पेक्टर का मित्र हूं। असली इंस्पेक्टर तो क्रिकेट मैच देखने चला गया है। उसका दोस्त हूं मैं। मुझसे कह गया है कि जरा आज निरीक्षण कर आना। निरीक्षण करने मुझे जाना है। अगर आज असली इंस्पेक्टर होता तो तुम्हें पता चलता कि तुम्हारी क्या हालत हो जाती। वह तुम बच गए, तुम्हारा भाग्य! लेकिन देखो, खयाल रखना आगे ऐसी गलती न हो।
इस कहानी से इसलिए कहना चाहता हूं: इस मुल्क के गिरे से गिरे व्यक्ति
की जो हालत है उसको सुधारने वाले सुधारक और नेता की हालत उससे भिन्न नहीं है। सब एक नाव में सवार हैं। सब एक नाव के यात्री हैं। इसलिए इस मुल्क का कोई नैतिक जीवन ऊपर नहीं उठ पा रहा है। अनुयायी और नेता: कोई फर्क नहीं है। जिन्हें सुधारा जाना है वह, और जो सुधारने की बातें करते हैं उनमें कोई फर्क नहीं है। थोड़ा सा फर्क हो भी सकता है कि जिनको सुधारा जाना है, वे कम चालाक हैं। जो सुधारने की बातें करते हैं, वे ज्यादा चालाक हैं। कनिंगनेस का फर्क है और कोई फर्क नहीं। जो ज्यादा चालाक हैं।। वे नेता हैं, जो कम चालाक हैं।। वे अनुयायी हैं। और इसलिए इन बातों में मत उलझे रहना कि ये नेताओं के भाषण और ये साधुओं के उपदेश कुछ मुल्क के जीवन को ऊपर उठा सकेंगे। इस मुल्क के जीवन को ऊपर उठाना है तो नेताओं का भरोसा बिल्कुल छोड़ दें। फिर किसका भरोसा करेंगे?
इस मुल्क को ऊपर उठाना है तो पहला भरोसा अपना करें। और इस मुल्क की किस्मत को बदलनी है तो पहली बदलाहट अपने से शुरू कर दें। न नेता की प्रतीक्षा करें, न आंदोलन की, न सुधार की। अगर मन में पीड़ा है, और ऐसा लगता है कि इस मुल्क की किस्मत बदलनी चाहिए; नियती बदलनी चाहिए, यह क्या हो रहा है? या क्या अंधकारपूर्ण या क्या नरक बनता जा रहा है देश! तो इतनी हिम्मत करें कि मैं अपने को बदलूंगा। किसी को सुधारने जाने की जरूरत नहीं है आपको। मैं अपने को बदल लूं। मैं अपने को ठीक कर लूं। तो मैं एक पत्थर बनता हूं, एक ईंट बनता हूं।। उस मकान की, जो अच्छा हो सकता है। और एक आदमी भी जब बल जुटा लेता है अपने को बदलने का।। तो उसके बल की छाया; उसके बल का प्रभाव, उसके बल की शक्ति भी फैलनी शुरू हो जाती है। एक वर्तुल उसके आस-पास बनना शुरू हो जाता है।। उसकी ज्योति का, उसकी सुगंध का!
और क्या आपको पता है उपदेश देने से कोई नहीं बदलता। लेकिन जब एक आदमी
की जिंदगी बदलती है और उसकी जिंदगी में सुगंध फैलने लगती है। उस सुगंध को देख कर लोग बदलते हैं। जब एक अंधेरे घर में दीया जलता है, और प्रकाश फूटने लगता है, तो पड़ोस के लोग पूछने आ जाते हैं।। कि हमारे घर भी अंधेरे हैं, तुम्हारे घर में दीया कैसे जल गया? तुम कैसे प्रकाशित हो उठे हो, क्या हो गया है! हम भी दीया चाहते हैं। यह दीया कैसे जलाया जाए? दूसरों को समझाने जाने का सवाल नहीं है। जितना खुद के भीतर दीया जल जाए तो दूसरे पूछने शुरू हो जाते हैं। आने लगते हैं पूछने कि दीया कैसे जल गया?
कौन आदमी अंधेरे में जीना चाहता है? कौन आदमी अनाचार में जीना चाहता है? कौन आदमी पतन के गर्त में जीना चाहता है? लेकिन जब चारों तरफ सभी लोग पतन में जीते हों, तो किसी आदमी को न प्रेरणा मिलती है, न बोध आता है; न संबंल मिलता है, न सहारा मिलता है; न खयाल, न सपना पैदा होता है।। कि हम भी ऐसे हो सकते हैं।
इस समय एक ही बात की जरूरत है कि जिन लोगों के मन में भी पीड़ा हो, वे अकेली हिम्मत से अपना काम शुरू कर दें। वे अपने को बदल लें। और वे पाएंगे कि पड़ोस में, गांव में उनकी हवा फैलनी शुरू हो गई है। और वहां, उनके भीतर से कुछ किरणें लोगों तक पहुंचने लगी हैं।

लेकिन स्मरण रहे, जब भी कोई व्यक्ति सच में अपने जीवन, अपने अंतस और आचरण को बदलता है तो उसका जीवन आनंद की घटना बन जाती है। उसका जीवन आनंद की घटना बन ही जानी चाहिए। अगर कोई आदमी अपने जीवन को बदलता है और दुखी दिखाई पड़ता है, और दिन भर रोता है कि मैं अपनी नैतिकता के कारण बड़ा परेशान हूं। मैं सच्चरित्र हूं, इसलिए बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। मैं सत्य बोलता हूं, इसलिए जगह-जगह असफल हो जाता हूं। अगर कोई आदमी अपने आचरण और सच्चरित्रता के कारण दुख रोता है तो वह आदमी लोगों को दुष्चरित्र बनाने की चेष्टा कर रहा है।
क्योंकि जब लोग देखते हैं कि एक सच्चरित्र आदमी दुख झेल रहा है तो कौन सच्चरित्र बनना चाहे? जो आदमी थो.ड़े से आचरण का प्रयोग करता है उसकी सारी जिंदगी खुशी की एक खबर, आनंद की एक लहर बन जानी चाहिए! ताकि लोग पूछ सकें, इतना आनंद कहां से मिला? ये इतनी खुशी कहां से पाई! ये इतनी चमकती हुई आंखें इस अंधेरे में कहां से मिल गईं! यह कैसे हुआ? यह लोग पूछने लगें, और वह अपनी खुशी की खबर सुनाने लगे।। कोई कठिनाई नहीं है। एक गांव में एक आदमी भी काफी हो सकता है। एक छोटे से बीज से कितना बड़ा वृक्ष पैदा हो जाता है। और एक छोटे से बीज में जब वृक्ष पैदा होता है तो वृक्ष में करोड़ों बीज लग जाते हैं।
वैज्ञानिक कहते हैं: एक छोटा सा बीज इस पृथ्वी को, पूरी पृथ्वी को जंगल से भर सकता है। एक छोटा सा बीज! तो एक छोटा सा आदमी सारे जीवन को बदल नहीं सकता? एक छोटा सा बीज सारी पृथ्वी को हरियाली से भर दे! एक छोटे से अणु का विस्फोट सारी पृथ्वी में आग लगा दे! तो एक आदमी की आत्मा के आचरण की किरणें, क्या पूरे जीवन को नहीं बदल सकतीं? एक गांव को, एक पड़ोस को, एक घर को नहीं बदल सकतीं?
निश्चित बदल सकती हैं। लेकिन जब तक आप नेताओं की तरफ आंखें उठा कर देखते रहेंगे तब तक यह मुल्क कभी नहीं बदल सकता। नेताओं से सावधान! वह चाहे किसी तरह के नेता हों। चाहे धर्म के हों, चाहे राजनीति के हों; उनसे कुछ भी नहीं होने वाला। और आप यह मत सोचना कि वह आपको बदलना चाहते हैं इसलिए भाषण दे रहे हैं। यह आप मत समझना कि वे सच्चरित्रता लाना चाहते हैं इसलिए उपदेश कर रहे हैं। इसलिए आंदोलन चला रहे हैं।। नहीं। ये सब आंदोलन उनको नेता बनाने की तरकीबों से ज्यादा और कुछ भी नहीं हैं। ये सब उन्हें और बड़ा नेता, और बड़ा नेता बनाए चले जाते हैं। सामान्य जन को, इस मुल्क के भाग्य को अपने हाथ में ले लेना होगा।। तो बदलाहट हो सकती है।

कुछ मित्रों ने यह भी पूछा है कि हमारे मुल्क में तो इतने-इतने बड़े सिद्धांत हैं। इतने बड़े शास्त्र हैं। इतने बड़े महापुरुष हो चुके हैं। इतनी ऊँची किताबें हैं। फिर हमारा चरित्र नीचे क्यों गिर गया?

तो फिर मुझे एक कहानी से समझाने का खयाल आता है। एक गांव में, बहुत पुराने दिनों की बात है। गांव के राजा के महल के पास एक आदमी पंखे बेच रहा था। गर्मी के दिन आने के करीब थे। पंखे बेच रहा था। साधारण पंखे, दो-दो आने के पंखे। लेकिन वह जोर से चिल्ला रहा था कि ऐसे पंखे आज तक नहीं बने। यह पंखा अदभुत है! यह पंखा साधारण नहीं है। इस एक पंखे की कीमत सौ रुपया है। लोग तो हंसे सड़क पर कि पागल हो गया है। लेकिन राजा को सुनाई पड़ गई यह आवाज। अगर दो आने का पंखा होता तो राजा को सुनाई न भी पड़ती। क्योंकि दो आने के पंखे राजा नहीं खरीदा करते। सौ रुपये का पंखा कोई बेच रहा है।
दरवाजा खोल कर राजा ने कहाः बुलाओ उस पंखे बेचने वाले को। कैसा पंखा आ गया! पंखा देखा तो राजा भी हैरान हो गया! साधारण बाजार में दो आने में मिलने वाला पंखा। राजा ने पूछा: क्या कर रहे हो? क्या कह रहे हो? होश में हो? सौ रुपये दाम! क्या खूबी है इस पंखे की?
उस बेचने वाले ने कहाः महाराज, आप समझ सकेंगे। यह कोई साधारण पंखा नहीं है। साधारण आदमी समझ भी कैसे सकता है। आप समझ सकेंगे। यह पंखा ऐसा है कि यह सौ साल चलता है। सौ साल के पहले कोई तोड़ दे, तो गारंटी हम देते हैं। सौ रुपये हम वापस कर देंगे।

राजा ने कहाः सौ साल चलेगा, गारंटी भी है!
बिल्कुल गारंटी है। सौ साल चलेगा। और सौ रुपये दाम है।
राजा ने सौ रुपये दे दिए और पंखा ले लिया।
पंखा देख कर हैरानी होती थी। वह बिल्कुल पंखा था। दो आने से भी गया- बीता। वह सात दिन चल जाए यह भी मुश्किल मालूम होता था। लेकिन ठीक है। राजा ने उस दिन से वही पंखा किया। वह तो सात दिन में बिल्कुल ढ़ीला जर-जर हो गया। एक रात उसका हाथ जोर से पड़ गया तो दो टुकड़े हो गए। उसने कहाः बुलाओ उस आदमी को। आठवें दिन सुबह ही वह आदमी बुला कर सामने खड़ा कर दिया गया। राजा ने कहा : यह रहा पंखा। यह तो टूट गया। सौ साल चलने की बातें कहते थे?
पंखा बेचने वाला हंसा। उसने कहाः महाराज, पंखा करना आपको आता है कि नहीं? पंखा कैसे करते हैं यह मालूम है?
राजा ने कहाः तू बोलता क्या है? पंखा करना हमको नहीं आता?
निश्चित! उसने कहाः नहीं आता। सौ साल चलने वाला पंखा सात दिन में तोड़ दिया। गजब करते हैं आप! कुछ गड़बड़ किया है आपने। आपको चलाना नहीं आता मालूम होता है।
राजा ने कहाः अच्छा तो कैसे चलाया जाता है?
उसने कहाः पहले आप बताएं आप कैसे चलाते हैं?
राजा ने कहाः तू बिल्कुल पागल है क्या? पंखा हिला कर बताया।
वह आदमी हंसने लगा। उसने कहाः हो गई गड़बड़। आपको इतने ऊंचे पंखा चलाने
का पता ही नहीं। पंखे को ऐसे मत हिलाइए। पंखे को ऐसा रखिए। सर उसके सामने हिलाइए। पंखा तो बहुत गजब का है। सिर हिलाना आता ही नहीं आपको। हवा की हवा होगी, पंखा का पंखा बना रहेगा। ये सारे सिद्धांत, और ये सारे शास्त्र।। ये बिल्कुल गड़बड़ नहीं हैं। यह पंखा तो बिल्कुल दुरुस्त है, आपको सिर हिलाना नहीं आता। इसलिए सब ग.ड़बड़ हो रही है मुल्क में!
मैं आपसे कहना चाहता हूं: ये सिद्धांत गड़बड़ हैं, आदमी गड़बड़ नहीं है। राजा गड़बड़ नहीं था, उसे पंखा हिलाना आता था। वह आदमी बदमाश था। ये सिद्धांत गड़बड़ हैं।। कहीं। लेकिन हम हमेशा दोष आदमी को देते हैं। पंखा तो बिल्कुल ठीक है, तुम्हें सिर हिलाना नहीं आता! सिद्धांत तो बिल्कुल ठीक हैं। हमने सौ टका सिद्धांत खोज लिए हैं। उनमें तो अब कुछ बदलाहट करने की जरूरत नहीं है। आदमी गड़बड़ है। सारा दोष आदमी का है, सिद्धांत का कोई दोष नहीं है। सच्चाई उलटी है। आदमी में कोई गड़बड़ नहीं है। सिद्धांत बुनियादी रूप से गलत हैं।
तो दो-तीन उदाहरण के लिए मैं सिद्धांत आपको कहूं: जो बुनियादी रूप से गलत हैं। जिनकी वजह से सारा जीवन अनैतिक हो गया। कौन से सिद्धांत बुनियादी रूप से गलत हैं? पहली बात।। सारा मुल्क पाखंडी हो गया, हाइपोक्रेट हो गया है। सारा मुल्क पाखंड में घिर गया है। ये सिद्धांतों के कारण है, आदमी के कारण नहीं। ऐसे सिद्धांत हमने बना रखे हैं जो कि मनुष्य के लिए पूरे करने असंभव हैं। जो ह्यूमनली इंपॉसिबल हैं। जिनको पूरा नहीं किया जा सकता। जिनको सामान्य आदमी, कमजोरी से भरा हुआ आदमी कभी पूरा नहीं कर सकता। ऐसे हमने सिद्धांत बना लिए हैं। और उन सिद्धांतों को हम आदमी के ऊपर थोपना चाहते हैं। उस थोपने का परिणाम यह नहीं होता कि वे सिद्धांत मान लिए जाते हैं। उस थोपने का परिणाम यह होता है कि वह आदमी पाखंडी हो जाता है। सिद्धांतों की बातें ऊपर से करता है, भीतर से दूसरा व्यवहार करने लगता है। पाखंड का मतलब यह है कि ऐसे आदर्श पकड़ लिए हैं हमने।। जो पूरे हो नहीं सकते।
अब जैसे हम यह आदर्श बना लें कि किसी आदमी को जमीन पर नहीं चलना चाहिए। हवा में चलना चाहिए। जो हवा में चलता है वह महापुरुष है, जो जमीन पर चलता है वह पापी है। तो कई लोग यह कहने लगेंगे कि जब हमें कोई नहीं देखता तब हम हवा में चलते हैं। रात में हम हवा में चलते हैं। ऐसे काम चलाने के लिए बाजार वगैरह जाते हैं तो जमीन पर चले जाते हैं। वैसे तो हम हवा में ही चलते हैं। और तब पाखंड पैदा होगा। वे आदमी भलीभांति जानते हैं कि हवा में कोई नहीं चलता। और तब झूठ पैदा होगी। तब आदमी का व्यक्तित्व विकृत होगा।

यह जो जितनी विकृति है, यह पाखंड की विकृति है। पाखंड पैदा होता है।।
असंभव आदर्श के कारण।
इंग्लैंड में लंदन में कोई सौ साल पहले शेक्सपीयर का एक नाटक चल रहा था। सारे गांव में प्रशंसा थी। सारे गांव के लोग दीवाने हो उठे थे नाटक देखने को। जो आर्चबिशप था, लंदन का जो सबसे बड़ा पुरोहित और पादरी था उसके मन में भी खयाल उठा कि मैं भी नाटक देखूं।
आखिर पादरी भी तो आदमी है। कोई पत्थर तो नहीं। तो उसके मन में नाटक देखने का खयाल नहीं उठना चाहिए? लेकिन पादरी कैसे नाटक देखने जाए? और अगर कहीं पादरी मिल जाए नाटक देखता हुआ उन लोगों को।। जिनको रोज समझाता है कि सब असार है, सब नाटक व्यर्थ है, सब यह है वह है।। तो लोग क्या कहेंगे? लेकिन जितनी खबर बनने लगी कि नाटक बहुत अदभुत है, बहुत अदभुत! अभिनय बहुत कुशल हुआ है। पादरी बेचैन होने लगा। उसने कहा: अब क्या करें, क्या न करें बड़ी मुश्किल है? जितना बेचैन होता था उतना ही चर्च में नाटक के खिलाफ बोलता था। और भीतर से सोचता था नाटक कैसे देखूं? गुस्सा भी आता था कि नाटक बड़ी गड़बड़ चीज है। तो सुबह जब चर्च में भाषण करता था तो नाटक को जितनी गालियां दे सकता था।। देता था। आखिर यहां तक कह दिया उसने कि नाटक देखने वालों को नरक जाना पड़ेगा। लेकिन रात रोज योजना बनाता था कि एक बार यह नाटक मैं देख तो लूं, यह नाटक है कैसा? और उसको तो पक्का ही पता था कि नाटक देखने से कोई नरक में नहीं जाता। ये खुद ही उसकी ईजाद है।। कि नरक जाना पड़ेगा। वह तो कोई डर था नहीं। लेकिन नाटक देखे कैसे?
आखिर होशियार आदमी था। उसने नाटक के मैंनेजर को एक चिट्ठी लिखी। और लिखा की भाई मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हुआ हूं। मैं धर्मगुरु हूं। मैं भी नाटक देखना चाहता हूं। लेकिन सामने के दरवाजे से कैसे आऊं? तुम्हारे नाटकगृह में पीछे का कोई दरवाजा नहीं है कि मैं तो नाटक देख सकूं, लेकिन दूसरे नाटक देखने वाले मुझको न देख सकें। ऐसे पीछे से घुस जाऊं चुपचाप, जब अंधेरा हो जाए। फिर पहले ही निकल जाऊं।
थियेटर के मैनेजर ने उत्तर लिखा: पीछे का दरवाजा है। धर्मगुरुओं इत्यादि के लिए बनाना पड़ता है। हर जगह बनाना पड़ता है। आप बेफिकर आएं। पीछे का दरवाजा है। बनाना ही पड़ता है। कुछ सज्जन लोग पीछे के दरवाजे से ही आते हैं। तो आपका स्वागत है। लेकिन एक बात नोट कर लें। उसका जिम्मा मैं नहीं लेता हूं। और वह यह।। कि ऐसा दरवाजा तो है हमारे नाटकगृह में कि नाटक देखने वाले आपको न देख पाएंगे, लेकिन परमात्मा देख पाएगा कि नहीं देख पाएगा।। इसका हम विश्वास नहीं दिला सकते हैं। क्योंकि वह तो पीछे के दरवाजे से भी देख ही लेगा। फिर आपकी मर्जी। पता नहीं वह नाटक देखने गया कि नहीं गया। जहां तक तो गया ही होगा।
यह क्या पागलपन पैदा हुआ? यह पाखंड क्यों पैदा हुआ कि पीछे के दरवाजे
से जाएं? दो शक्लें हैं। एक शक्ल यह दिखाना चाहती है कि मैं नाटक नहीं देखता। और नाटक देखने का भीतर मनुष्य का स्वभाव, जो प्रेरित करता है कि नाटक देखो। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम यह पाखंड उतार दें। यह पाखंड तभी उतर सकता है जब नाटक देखने की सहजता को हम स्वीकार कर लें कि उसमें कोई पाप नहीं है। धर्मगुरु भी नाटक देख सकता है। वह भी आदमी है। कोई एतराज की बात नहीं है। कोई नरक नहीं चला जा रहा, कोई पाप नहीं हुआ चला जा रहा।
जीवन में हमने जीवन-विरोधी आदर्श बना रखे हैं। और उन आदर्शों को पूरा करवाने के लिए हम आदमी पर जोर डालते हैं। वह आदमी बेचारा क्या करे? तीन विकल्प होते हैं उसके सामने। एक विकल्प तो यह होता है कि असंभव आदर्श को पकड़ने की कोशिश में जीवन का सारा रस खो दे। जीवन का सारा अर्थ खो दे। एक रूखा-सूखा मुर्दा आदमी रह जाए। एक तो रास्ता यह रहता है। यह रास्ता भी कोई सुंदर और सुखद रास्ता नहीं है। दुख का रास्ता है।
दूसरा रास्ता यह रहता है कि वह आदमी इंकार कर दे आदर्श को, और पशुओं की जिंदगी जीने लगे। जो ठीक लगे करे। इंकार कर दे कि हम कुछ मानते नहीं। हमको तो जो ठीक लगता है वह हम करते हैं। यह दूसरा रास्ता।। अनाचार का रास्ता है। यह भी कोई शुभ रास्ता नहीं है।

तीसरा रास्ता है: पाखंड का रास्ता। वह आदमी आदर्श की बात करे और व्यवहार जैसा करना हो पीछे के दरवाजे से करता चला जाए।
पुरानी दुनिया में दो ही तरह के लोग थे। पहली और दूसरी तरह के। क्योंकि लोग कम समझते थे। जो समझदार थे, वे तो तब भी पाखंडी थे। लेकिन अब समझदारों की संख्या अनिवार्य शिक्षा के कारण सारी दुनिया में बढ़ती जा रही है। इसलिए पाखंड बढ़ता जाता है। सब समझदार होते जाते हैं। वे कहते हैं: तस्वीर दूसरी। कपड़े खादी के पहनों, अगर दिल काला है। जितना दिल काला है उतना ही सफेद और टिनोफॉल दो धोती में।। कपड़ों में। समझ आ गई, सीधी बात है। काला दिल तो किसी को दिखता नहीं, दिखते तो कपड़े हैं। और गांधी ने और बड़ी कृपा कर दी। खादी के पहनो तो वह और पवित्र हो जाती है। तो पवित्र खादी के कपड़े पहनो।। इससे बड़ी सुविधा हो गई। सामने का आदमी दिखता आदमी अच्छा है। और उसको पता नहीं कि सफेद कपड़े वाला आदमी, कहीं इसलिए तो सफेद कपड़े नहीं पहना कि आपकी नजर बचे, और आपकी जेब काट ले। यह जो, यह जितना आदमी समझदार होता चला जाएगा, पाखंड का विकल्प रह जाएगा उसके लिए। दुनिया में शिक्षा बढ़ेगी और पाखंड बढ़ेगा। अगर हम आदर्शों को असंभव से उतार कर संभव, और मनुष्य की सामर्थ्य के भीतर नहीं लाते तो दुनिया में पाखंड बढ़ना बिल्कुल स्वाभाविक है।
ये जो और दो चार बातें आपसे कहूं: इससे खयाल में आ जाए कि हमने कैसे असंभव आदर्श बिठा रखे हैं। हिंदुस्तान हजारों साल से स्त्रियों को विधवा किए चला जा रहा है। उनको हक नहीं है विवाह का। उनको पति मर जाए तो फिर जीवन भर अनिवार्य ब्रह्मचर्य। बड़े आश्चर्य की बात है! पुरुषों ने अपने लिए ऐसा नियम नहीं लिया कि पत्नी मर जाए तो हम आजीवन विधुर रहेंगे। बह्मचर्य का पालन करेंगे। बड़े होशियार! पुरुष ज्यादा होशियार है।। स्त्री से। और किताबें, और शास्त्र चूंकि पुरुषों ही ने लिखे हैं इसलिए अपने लिए तो इंतजाम रखा है, स्त्री के लिए कोई इंतजाम नहीं रखा। स्त्री को विधवा छोड़ दो। विधवा छूटी स्त्री के सामने क्या विकल्प रह गया? या तो इतनी रुग्ण, और बीमार, और परेशान हो जाए कि आत्मघात कर ले। जैसा कि सती की व्यवस्था में था कि वह जाकर मर जाए।
और पता है आपको कैसे मारते थे।। सती की व्यवस्था में!
किसी का पति मर गया है, वह तो बेचारी रोए जा रही है। वह तो, उसके तो मन में मरने का खयाल वैसे ही आ रहा है। प्रियजन चल बसा है। किसको खयाल नहीं आता है कि मर जाए? और उस मरने के मौके में समझाना चाहिए कि ठहरो, शांति रखो। तो उस वक्त उत्तेजना दी जाएगी कि चलो, मर जाओ। तो उस वक्त तो कोई भी उस उत्तेजना में मर जाए, कोई भी मर जाए। और फिर उसे यह भी पता है कि अगर वह न मरे, सती न हो, तो सारे जीवन के लिए निंदित और कंडेम्ड हो गई। पापिणी हो गई! गांव में लोग उसका चेहरा भी नहीं देखेंगे। एक तो यह कष्ट पड़ा कि उसका प्रियजन मर गया। वह बेसहारा हो गई। दूसरा कष्ट सामने यह खड़ा है कि अगर जिंदा रहती है, तो जिंदा रहना मरने से बदतर हो जाएगा। अब यही रास्ता है कि वह जाए और मर जाए।
लेकिन जिंदा आदमी जब आग में कूदेगा तो कैसा होगा, कभी आपने सोचा? आराम
से सो जाएगा।। जाकर आग में! जरा हाथ जलता है तो आपको पता है क्या होता है? हाथ रखे रहिए आग में, तो पता चलेगा कि क्या होता है?
तो उसे तो अग्नि में कूदना है।। जलते आदमी को। उसकी क्या हालत होगी?
वह भागेगी निकल कर औरत।। आग से। कूदेगी, निकलेगी, भागेगी, चिल्लाएगी। तो सारा इंतजाम किया हुआ था कि बहुत बड़ी चिता बनाएंगे। उसमें उसे लकड़ियों में बिल्कुल खपा कर, हाथ-पैर फंसा कर बिठा देंगे ताकि वह निकल न सके। फिर भी हो सकता है आग लगे, और आग लगे तो जीवन बचाने की इतनी ताकत उठे कि वह कूद कर बाहर आ जाए। तो इतना घी डालेंगे चिता में, कि इतना धुआं हो जाए, कि किसी को दिखाई न पड़े, कि वह निकल रही है बाहर। या उसको भी दिखाई न पड़े। और फिर चारों तरफ जलती हुई मशालें लेकर पंडे और पुरोहित खड़े होंगे, और इतनी जोर से ढोल बजाएंगे, इतने मंत्र पीटेंगे, कि उसका रुदन, उसकी आवाज कुछ भी सुनाई न पड़े। अगर वह भागे, तो वह मशालों से वापस उसको धक्का देकर अंदर चिता में कर देंगे। ये धार्मिक लोग थे!

सती होना तो बंद हो गया। विधवा जिंदा रह गई। अब वह विधवा जिंदा है। उसकी जिंदगी एक बिल्कुल ही असंभव जिंदगी बनाने की हम कोशिश कर रहे हैं। और असंभव जिंदगी बनाने में अगर वह विधवा पीछे के रास्तों से प्रेम में पड़ जाए, अनैतिक हो जाए, भाग जाए और वेश्या हो जाए।। तो कहना कि समाज में अनैतिकता बढ़ रही है। लेकिन जिंदगी को सीधा नहीं देखेंगे। संभव नियम नहीं बनाएंगे। संभव आदर्श तय नहीं करेंगे।
ठीक है कि जवान स्त्री विधवा हो गई है। उचित है कि साल-छह महीने में जब उसका वापस दुख शांत हो जाए, उसके जीवन की नई व्यवस्था की जाए। "आदरपूर्वक", "सम्मानपूर्वक"।। तो हिंदुस्तान में इतनी वेश्याएं न हो, इतना भीतर चलता हुआ व्यभिचार न हो।
लेकिन हम तो बड़े सिद्धांतवादी हैं! हम तो विधवा का विवाह कर नहीं सकते। हम वेश्याएं सह सकते हैं, भागती हुई औरतें सह सकते हैं, घर-घर के भीतर अनाचार सह सकते हैं, गर्भपात सह सकते हैं।। लेकिन नहीं, हम विधवा का विवाह नहीं कर सकते। हम तो बड़ी पुरानी संस्कृति के ठेकेदार हैं। हम तो बड़े नैतिक लोग हैं! हम तो अनीति को कैसे सह सकते हैं? विधवा का विवाह अनीति है। और विधवा।। अविवाहित रह कर जो अनीति का गड्ढा बन जाएगी सारे जीवन के लिए।।
वह। वह तुम्हारी गलती है। हमारा सिद्धांत तो बिल्कुल ठीक है। पंखा करना नहीं आता तो हम क्या करें! सिर हिलाइए, पंखे को सामने रख लीजिए। सिद्धांत तो हमारे ठीक हैं। सिर हिलाते जाइए। सिद्धांत तो बिल्कुल ठीक हैं। आप गड़बड़, गड़बड़ हो हम क्या कर सकते हैं!
हमने सारी की सारी जीवन-दृष्टि असंभव आदर्शों के पास केंद्रित कर दी है। इसलिए हम गड़बड़ में पड़ गए हैं। सामान्य मनुष्य के बाबत कोई चिंतन नहीं किया गया। न उसकी कमजोरियों के प्रति दया बरती गई। ये जिनको आप बहुत दयावान कहते हैं, बहुत करुणावान कहते हैं।। ये उतने करुणावान और दयावान नहीं मालूम होते। ये बहुत कठोर, लीगलिस्ट और कानूनवादी मालूम होते हैं। मनु से लेकर आज तक हिंदुस्तान में कोई दयापूर्ण जीवन-नियमन करने वाला व्यक्ति नहीं हुआ। सब कठोर। और कठोरता उनकी इस बात में है कि वे खुद अपवाद हैं। यह बात सच है। वे खुद उस नियम का पालन कर सकते हैं। और चूंकि वे खुद पालन कर सकते हैं, वे सोचते हैं: हर आदमी पालन कर सकता है। हर आदमी को पालन करना चाहिए। बस यह सारी कठिनाई हो जाती है। वे थोप देते हैं अपने नियम को। अपवाद का नियम। वह जो एक्सेप्शनल आदमी है उसका नियम पूरे समाज पर थोपा जाएगा। समाज का पाखंडी हो जाना अनिवार्य है।। गणित की तरह। दो-दो चार जैसे होते हैं।। ऐसा ही अनिवार्य है।
हिंदुस्तान अपवादी, आत्यतिंक नियमों के भीतर पीड़ित और परेशान हो रहा है। इन सिद्धांतों से मुक्ति चाहिए। हममें सामान्य मनुष्य का सिद्धांत और जीवन देखना चाहिए। उसे पकड़ना चाहिए। "सामान्य", उसको खोजना चाहिए।।
उसकी कमजोरी, उसकी सीमाओं के भीतर। मनुष्य की सीमाओं के भीतर क्या हो सकता है? और जब असंभव आदर्श होता है, और पालन नहीं हो पाता तो परिणाम यह नहीं होता कि आदमी सामान्य रह जाए। आदमी उलटी स्थिति में हो जाता है। ब्रह्मचर्य पालन नहीं होता। तो परिणाम संयम नहीं होता। परिणाम व्यभिचार होता है। एक एक्सट्रीम से आदमी गिरता है।। एक अति से, तो दूसरी अति पर पहुंच जाता है। बीच में नहीं रुकता। ब्रह्मचर्य का जो कौम आदर्श बनाएगी, वह कौम व्यभिचारी हो जाने वाली है। एकाध आदमी के ब्रह्मचर्य से रहने से कोई फर्क पड़ता है? ब्रह्मचर्य का आदर्श जो कौम थोपेगी, वह कौम व्यभिचारिणी हो जाएगी। क्योंकि वह आदर्श तो सम्हलेगा नहीं। और तब, तब दूसरा ही विकल्प रह जाता है।। चोरी छिपे। पीछे के दरवाजे।
मैं... इस मुल्क में सत्तर साल के बूढ़े भी मेरे पास आते हैं। सबके सामने तो वह मुझसे ईश्वर-परमात्मा के प्रश्न पूछते हैं। अकेले में वे कहते हैं कि महाराज, इस सैक्स से हम बड़े परेशान हैं। सत्तर साल की उम्र हो गई, वे कहते हैं कि हम सेक्स से परेशान हैं। यह स्त्री से कैसे छुटकारा होगा। सत्तर साल की उम्र हो गई। कब्र के करीब पहुंच रहे हैं। वे कहते हैं: स्त्री से कैसे छुटकारा होगा! और छोटे-छोटे बच्चों में बैठ कर वही बुड्ढा कहेगा: सिनेमा देखने जाते हो! नंगी तस्वीरें देखते हो! अरे, गंदा!

तुम्हारा जीवन नष्ट हो गया। तुम बरबाद हो गये। यह आदमी अकेले में मुझसे पूछता है कि मैं क्या करूं। मेरा मुश्किल हो गई है। मेरे मन में बस यह स्त्री ही स्त्री और सेक्स ही सेक्स चलता है।
क्या।। यह मामला क्या है! यह बात क्या है! यही बूढ़ा लड़के को कह रहा है
कि तू सिनेमा मत जा। तू कहां का फिल्मी गाना गा रहा है। तू यह कहां कि किताब ले आया।। इसमें नंगी औरत की तस्वीर है। हम अश्लील पोस्टर नहीं चाहते। हम अश्लील पोस्टर के खिलाफ आंदोलन करेंगे। लेकिन यह आदमी।। खुद इसके भीतर क्या चल रहा है?
साधु-संन्यासी मुझे मिलते हैं। सबके सामने वेदांत की चर्चा। अकेले में आज तक मुझे कोई साधु नहीं मिला जिसने सेक्स के बाबत नहीं पूछा हो। जो आखिर में, अंत में यह नहीं पूछता कि यह इससे कैसे छुटकारा हो? यह सेक्स बड़ी मुश्किल किए दे रहा है। दिन में तो दिन भर चलता है, रात सपने में भी यही चलता है। और आप कहे जा रहे हैं: "हमारे पास बड़े ऊंचे सिद्धांत हैं। अब हमारे नीचे क्यों बिगड़ रहा है?" पंखा तो बहुत अच्छा है। लेकिन आपको हिलाना नहीं आता। सिर हिलाइए, पंखे को सामने कर लीजिए।
ब्रह्मचर्य का सिद्धांत बनाए बैठे हैं।। अस्वाभाविक, अवैज्ञानिक, अर्थहीन! और फिर उसके पीछे व्यभिचार पैदा होगा तो गाली देना। युग खराब आ गया है। कलयुग आ गया है। संयत, वैज्ञानिक, स्वभाविक जीवन को ऊंचे उठाने वाले, जीवन को धीरे-धीरे परिवर्तित करने वाले सहज नियम हमारे सामने नहीं हैं। और उनकी वजह से हम पीड़ित और परेशान होते चले जा रहे हैं। पीड़ित और परेशान होते चले जा रहे हैं।
सारी शिक्षा हमारी, सारे आदर्श दमनकारी हैं। सप्रेसिव हैं। और जहां
भी शिक्षा दमनकारी होती है, वहां उलटे परिणाम होते हैं। जिस, जिस चीज का दमन किया जाएगा वही चीज लौट-लौट कर मन में आ जाती है।
अभी इस, यहां हम इतने लोग बैठे हैं। इस भवन के एक दरवाजे पर एक तख्ती टांग दी जाए कि इस दरवाजे के भीतर झांकना मना है। फिर आपको पता है उदयपुर में एक भी ताकतवर आदमी नहीं हो सकता जो बिना झांके निकल जाए। कि है कोई उदयपुर में जो बिना झांके निकल जाएगा? और अगर कोई निकल भी गया बिना झांके तो उसकी मौत हो जाएगी। घर तो पहुंच जाएगा, दफ्तर पहुंच जाएगा, मंदिर पहुंच जाएगा, लेकिन मन इसी दरवाजे के आस-पास घूमेगा कि उस तख्ती के पीछे पता नहीं क्या था। क्यों लिखा था वहां कि झांकना मना है? अगर रात मौका मिल गया।।
बच्चों ने नहीं देखा, पत्नी ने नहीं देखा, किसी ने नहीं देखा तो कहेगा: मंदिर जा रहा हूं। पहुंचेगा इस मकान के पास कि जरा देख ले, झांक ले किसी तरह है क्या मामला? क्यों लिखा है यह कि यहां झांकना मना है? और अगर नहीं मिला मौका, यहां कहीं बच्चे पहले से ही झांकते रहे, तो बेचारा लौट जाएगा। फिर रात सपने में देखेगा कि वहीं पहुंच गया है। तख्ती उठा कर देख रहा है।।
कमरे में क्या है? सपने में देखेगा, लेकिन देखेगा। मन में घाव बन जाता है। जिस चीज को हम इंकार करते हैं।। जोर से, जिस चीज का हम विरोध करते हैं मन के पास। मन पूछने लगता है: बात क्या है?
सिंग्मंड फ्रायड एक, एक दिन सांझ वीना के एक बड़े बगीचे में, जैसे हम बैठे हैं ऐसे एक बड़े बगीचे में घूमने गया। उसकी पत्नी, उसका छोटा बच्चा।।
तीनों। दोनों घूमते रहे। घूमते रहे। जब सांझ हो गई, घंटी बज गई, बगीचे से निकलने के लिए बाहर निकलने लगे। तो दरवाजे पर पत्नी ने कहाः लेकिन बच्चा कहां है? हम तो बातचीत में लग गए। बच्चा कहां गया? और अब दरवाजा बंद होना है। पहरेदार दरवाजा बंद कर रहा है। बड़ा बगीचा है। अब बच्चे को कहां ढूंढेंगे?
फ्रायड ने कहा: घबड़ा मत। तूने उसे कहीं जाने को मना तो नहीं किया था। अगर मना किया हो तो सबसे पहले वहीं चलना चाहिए। अगर तेरे लड़के में थोड़ी भी बुद्धि है तो सौ में से निन्यानबे मौके तो ये हैं कि वह वहीं होगा।। जहां मना किया है। अगर थोड़ी भी बुद्धि है। अगर बिल्कुल निर्बुद्धि, ईडियट है तो फिर मुश्किल है खोजना। कहीं भी हो सकता है।
उसकी पत्नी ने कहा कि मैंने मना किया था कि फव्वारे पर मत जाना। चलो फव्वारे पर। फव्वारे पर लड़का पैर डाले हुए बैठा है पानी में। पत्नी बड़ी

हैरान हुई कि तुम बड़ा जादू कर दिए। तुमने पता कैसे लगा लिया कि यह फव्वारे पर होगा?
फ्रायड ने कहा कि इसमें पता क्या लगाना है? इसी छोटी सी बात को मनुष्यता आज तक पता नहीं लगा पाई। और हमारा मुल्क तो बिल्कुल पता नहीं लगा पाया है कि हम जहां-जहां मना करते हैं, चित्त वहीं-वहीं पहुंच जाता है। जितना बुद्धिमान चित्त है, वह और जल्दी पहुंच जाता है। जड़बुद्धि भर रह जाते हैं।
इंकार निमंत्रण है। निषेध बुलावा है। मत आओ। मत जाओ यहां। यह प्राणों
के लिए चुनौती है। चैलेंज है। जाना पड़ेगा। जाना पड़ेगा। जहां-जहां बच्चों को जाने से आप रोक रहे हैं आप बच्चों को वहीं पहुंचा रहे हैं। लेकिन ये हमें दिखाई नहीं पड़ता। ये हमें हजारों साल से दिखाई नहीं पड़ रहा। पंखा तो बिल्कुल ठीक है। करना हमको नहीं आता है। पंखा सामने कर लीजिए, सिर हिलाते रहिए। सप्रेसिव ईथिक्स, यह सप्रेसिव मॉरेलिटी, यह दमनकारी नीति।।
अनैतिकता का मूल है।
एक फकीर था।। नसरुद्दीन। एक सांझ अपने घर से निकल रहा था।
बड़ा अदभुत फकीर था। बड़े गहरे मजाक उसने आदमी की जिंदगी पर किए। शायद दुनिया में दो-चार लोग ऐसे हुए जिन्होंने ऐसे तीखे छाती में छिद जाने वाले मजाक किए हैं। और जिन मजाकों से जाहिर कर दीं कुछ बातें।। बड़ी कीमती! सांझ निकल रहा था अपने घर से कि देखा एक मित्र चला आ रहा है। घोड़े से उतरा है मित्र। फकीर नसरुद्दीन ने कहा कि दोस्त तुम रुको। मैं जरूरी काम से दो-तीन मित्रों को मिलने जा रहा हूं। तो वहां मुझे जाना है। मैं घंटे भर में लौट आऊंगा, तब तक तुम आराम करो। रुको, मैं अभी आता।
मित्र ने कहा कि घंटे भर, मैं तो बेचैन हुआ जाता तुमसे मिलने को। चलो मैं भी साथ चला चलता हूं। घंटे भर रास्ते में बात भी कर लेंगे।
नसरुद्दीन ने कहाः ठीक है चलो।
लेकिन उस मित्र ने कहाः कपड़े मेरे गंदे हो गए हैं। रास्ते की धूल-धवांस। क्या तुम्हारे पास कोई कपड़े नहीं है? कम से कम एकाध अच्छा कपड़ा हो तो मैं ऊपर से डाल लूं।
फकीर ने कहाः अरे मेरे पास एक अच्छी जोड़ी है कपड़े की।। आओ। उसने अच्छी, जो उसके पास बचा कर रखा था हमेशा के लिए।। वह जोड़ी, अच्छा कोट, अच्छी पगड़ी, अच्छे जूते उसे दिए।
उसने पहने और साथ हो लिए।
पहना तो दिए कपड़े लेकिन मन में ऐसा लगा कि इतने अच्छे कपड़े जिनको मैं
भी नहीं पहनता हूं, बचा कर रखता हूं। इस नासमझ को पहना दिए। खराब न कर लाए। और दूसरी दिक्कत यह हुई कि उन कपड़ों को पहन कर मित्र तो बड़ा शानदार मालूम होने लगा। फकीर फकीर ही रह गया। तो मन में बड़ी बेचैनी हो गई कि अपने कपड़े, और अपन ही नासमझ दिखाई पड़ रहे हैं। और यह जरा रौबदार मालूम हो रहा है। फिर भी सोचा मन में कि क्या करना, अरे ये तो सब ठीक है। अपना दोस्त ही है। अपने कपड़े पहन लिए तो हर्ज क्या? ये तो मन-मन की बातें थीं। ऊपर से तो यही कहता रहा कि दोस्त, बड़े अच्छे लग रहे हो, बड़ा अच्छा हुआ आ गए। लेकिन मन में यह कि कहां की गलती कर ली कि इसको अच्छे कपड़े पहना दिए? ऐसे ही तो मन काम करता है आदमी का।
सुबह एक आदमी मिल जाता है। आप उससे कहते हैं: अरे मिल कर बड़ी खुशी हुई। मन में भीतर कहते हैं: इस दुष्ट का चेहरा सुबह से कहां से दिखाई दे गया? ऐसे ही तो काम करता है मन।
मित्र के घर, एक मित्र के घर पहुंचे हैं।। उसे लेकर। जाकर अंदर बैठे, परिचय कराया कि मेरे दोस्त हैं। बाहर से आए हैं, बड़े जिगरी दोस्त हैं। सब कह रहा है, लेकिन नजर कपड़े पर लगी है कि जिगरी दोस्ती है सो तो ठीक, लेकिन कपड़े... । कपड़े मेरे ही पहने हैं।। यह मन ही मन में चल रहा है। लेकिन दबा रहा है कि ये सब कपड़े की क्या बात है?
पूछाः क्या है इनका नाम?

कहाः मेरे दोस्त हैं।। जमाल इनका नाम है। बड़े प्यारे दोस्त हैं। बहुत
ही प्यारे दोस्त हैं। और रही कपड़ों की बात, सो कपड़े मेरे हैं। बहुत दबाया मन को कि ये कपड़ों की बात न उठे, लेकिन निकल गई। बड़ा संकोच था।
लेकिन वह मित्र तो बहुत हैरान हो गया कि यह क्या बेवकूफी है? अरे मेरा परिचय दिया तो ठीक। लेकिन कपड़े की बात क्यों उठानी थी। तो कैसी बेइज्जती करवा दी। इससे तो अपने ही कपड़े।। गंदे भी थे, तो भी ठीक थे। कम से कम यह तो नहीं था कि।। उधार। लेकिन अब वहां सामने क्या कहे? बाहर निकला, तो बाहर निकल कर कहा: यह क्या किया नसरुद्दीन तुमने? कपड़े की बात... !
और नसरुद्दीन तो खुद ही घबड़ाए हुए थे कि कपड़े की बात निकल गई। अब वह बड़ा मुश्किल। कहा कि माफ करो भई, बड़ी गलती हो गई। बड़ी गलती हो गई। अरे इसमें क्या था, कपड़े मेरे तो तुम्हारे ही हैं।
जैसे हम कहते हैं: कोई घर में आता है घर में। आपका ही घर है। हालांकि मान ले तो झंझट हो जाए! अदालत में मुकदमा चलाएं।
कहाः नहीं-नहीं आपके ही, कपड़े तो आपके ही हैं। कोई मेरे हैं क्या? ऐसे
ही ख्याल नहीं रहा।। निकल गया। और फिर मन में सोचता रहा, बड़ा पश्चात्ताप मन में हुआ कि ये तो बड़ी गलती बात हो गई। बिल्कुल गलती। दूसरे मित्र के घर गए। सम्हाल कर रखा अपने को कि वह गलती फिर न हो जाए।
लेकिन जो आदमी जितना सम्हालता है गलती से उसी गलती में पैर चला जाता है। वह पैर जाने की तरकीब है।
जाकर दूसरे मित्र के यहां कहा कि ये रहे मेरे मित्र।
सम्हाले है अपने को।
ये रहे मेरे मित्र।। जमाल। रहे कपड़े, सो कौन कहता है।। मेरे नहीं हैं, इनके ही हैं। कपड़े इन्हीं के हैं, बिल्कुल इनके हैं साहब!
तो, वे तो बहुत हैरान हुए लोग कि यह हो क्या गया है!
और मित्र तो बहुत हैरान हुआ कि यह बात तो फिर वही की वह हो गई। ये कपड़े
की बात क्यों उठाता है बार-बार। कपड़े इतने महत्वपूर्ण कहां हैं?
लेकिन उसके मित्र को क्या पता कि बेचारा इसके भीतर क्या गुजर रही है? इसके लिए कपड़े ही महत्वपूर्ण रह गए हैं। न अब मित्र महत्वपूर्ण है, न मिलना-जुलना महत्वपूर्ण है। फिर बाहर निकले।
फिर वह डरा हुआ है। उसने कहा कि भई मैं नहीं जाता तुम्हारे साथ।
उसने कहा: भई माफ करो। इस बार तो देखो मैंने यह भी नहीं कहा कि मेरे हैं। मैंने तो यही कहा था कि कपड़े इन्हीं के हैं।
तो वह तो ठीक। लेकिन तुम्हें यह कहने की बात क्या थी? शक तो हो ही गया
कि मामला क्या है। कपड़े की बात क्यों उठती?
उसे एक के और यहां जाना है।
उसने कहाः अब मैं अब यह बिल्कुल भूल नहीं करूंगा, उस तीसरे के यहां।
अब यह बात ही नहीं उठानी कपड़े की बिल्कुल। तुम पक्का विश्वास रखो।
मन को सम्हाल कर। जैसा कि साधु-संन्यासी सम्हाले-सम्हाले चलते हैं, सज्जन सम्हाले-सम्हाले चलते हैं। मन को सम्हाले हुए हैं, पकड़े हुए हैं।।
कि कहीं छूट न जाए हाथ से लगाम। फिर लगाम सम्हाले वे मित्र के घर पहुंचे।
अबकी दफा बहुत सम्हला हुआ है। फिर परिचय दिया कि मेरे मित्र हैं।।
जमाल। और वह बात, वह कपड़ों की बात, वह उठानी नहीं है बिल्कुल। किसी के हों, मतलब क्या साहब? इनके हों या मेरे हों।
ये जो माइंड है। ये जो सप्रेसिव माइंड। ये जो दमनकारी चित्त, यह जो चीजों को जबरदस्ती दबाता है। उनके विस्फोट होने शुरू होते हैं।
हिंदुस्तान का पूरा चित्त दमन से भरा हुआ है। हिंदुस्तान की सारी अनीति के पीछे दमनकारी सिद्धांत हैं। हर चीज को दबाओ। हर चीज को दबाओ।
जीवन की कोई वृत्ति का सहज स्वीकार नहीं है। सब वृत्तियों को दबाना है।
दबाई हुई वृत्तियां विकृत होकर नये-नये रूपों में निकलना शुरू होती हैं।
दबाई हुई वृत्तियां जीवन में चारों तरफ फैलनी शुरू हो जाती हैं। जितना दबाते हैं उतनी विकृत होती चली जाती हैं। और सारे मनुष्य का चित्त एक रुग्णता में घिर जाता है।

यह नेता-वेताओं से नहीं कुछ इसमें होने वाला है, न उपदेशों से होने वाला है। क्योंकि जिन... जो कह रहे हैं हम ठीक करना चाहते हैं, उन्हीं के उपदेशों का ये परिणाम है।
ये जिन शास्त्रों और सिद्धांतों की दुहाई दी जाती हैं, उन्हीं शास्त्रों और सिद्धांतों ने यह स्थिति पैदा की है।... कैसे होगा? एक बहुत कंट्राडिक्ट्री, एक बहुत विरोधाभासी स्थिति में चेतना इस देश की उलझ गई है। इस उलझाव को उठाना हो, तो फिर से पुनर्विचार करना जरूरी है कि हमने कहीं ऐसे सिद्धांत तो नहीं बना लिए हैं जो कि अवैज्ञानिक हैं। हमने कहीं ऐसे सिद्धांत तो बना नहीं लिए हैं जो कि मनुष्य के ऊपर कटघरे की तरह जबरदस्ती बैठाने पड़ते हैं। हमने आदमी को देख कर सिद्धांत बनाए हैं या सिद्धांतों को देख कर आदमियों को बनाने की कसम खा रखी है! क्या है हमारा इरादा? कमीज बनवा ली है पहले, और आदमी को पहनाने की कोशिश कर रहे हैं। और आदमी अगर लंबा पड़ता है तो उससे कहते हैं: हाथ छांटो, थोड़ा हाथ छांटो! कमीज, कमीज तो बिल्कुल ठीक है, तुम कुछ गड़बड़ मालूम होते हो। जरा पैर छोटे करो। पायजामा तो बिल्कुल ठीक है, लेकिन तुम गड़बड़ हो! हमने पहले तय कर रखें हैं बिल्कुल।। ढांचे। और ढांचों में आदमी को कसना चाहते हैं। और जब आदमी कसने से इनकार करता है। वह कहता है: रहने दो साहब! हम नंगे रह जाएंगे, पतलून न पहनेंगे। लेकिन पैर न कटवाते।
तो हम चिल्लाते हैं कि यह आदमी नंगा घूम रहा है। बड़ी मुश्किल खड़ी कर रखी है! आदमी को नंगा नहीं घूमने देना चाहते। पतलून अपनी मन की बनाना, चाहे तो उसका स्वीकार नहीं है। पतलून आपने पहले से तय कर रखी है जब वह आदमी पैदा ही नहीं हुआ था।
मनु महाराज पतलून बना गए तीन हजार साल पहले। आपको पहनाई जा रही है! उनको पता नहीं तीन हजार साल पहले कौन आदमी पहनेगा! वे टेलरिंग तीन हजार साल पहले कर गए। आदमी अब पैदा हुआ है। नाप-जोख अब इसकी कभी ली नहीं गई कि यह आदमी किस तरह का है, इसके ऊपर कमीज बैठा रहे हैं। नहीं बैठती, तो पंखा तो बिल्कुल ठीक है। आप आदमी गड़बड़ हो! आपको पंखा करना नहीं आता, आपको कमीज पहननी नहीं आती। हाथ-पैर काटो, छोटे कर लो! कमीज चरम है, अल्टीमेट है। उसके, उसके ऊपर कोई सवाल नहीं।
ये, ये मुल्क के जीवन को जो हम नहीं बदल पा रहे हैं, उसके बुनियाद में
यह कारण है कि हम सिद्धांत मनुष्यों से ज्यादा महत्वपूर्ण समझ रहे हैं। कोई सिद्धांत मनुष्य से ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है। कोई शास्त्र मनुष्य से ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है। कोई धर्म मनुष्य से ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है। मनुष्य अंतिम और चरम है। और जो बात मनुष्य को योग्य नहीं पड़ रही, उस बात को बदलने की तैयारी होनी चाहिए। मनुष्य को जो बात योग्य पड़ सके, मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल पड़ सके, मनुष्य के मनस्क के, उसकी साइकोलॉजी के करीब पड़ सके।। वह हमें निर्धारित करनी है।
ये मुल्क आज बदल सकता है। इस मुल्क के बदलने में कोई कठिनाई नहीं है। नहीं तो ये मुल्क कभी नहीं बदल सकेगा। तो मैं इसलिए कठिनाई में पड़ा हुआ मालूम पड़ता हूं, कि जिनसे हम आंखें लगाए हुए हैं, कि ये हमको सुधारेंगे।।
ये वही पुराने टेलरों के प्रचारक और दुकानदार।। ये वही कहते हैं कि वही कमीज, रंग-वंग कर ले आते हैं फिर उसको।। लेकिन कमीज का साइज वही है, हिसाब वही है। नई शक्लें दे आते हैं, नया नाम दे देते हैं। नये हिसाब से नया नाम दे देते हैं। रंग कर लाते हैं, लेविल बदल कर लाते हैं। लेकिन कमीज वही है। उसको जरा भी फर्क नहीं करते।
और इसलिए मनुष्य को हमने बड़ी बेचैनी में छोड़ दिया है। नहीं कमीज बनती
है उसकी, तो बेचारा फिर नंगा ही रह जाता है। और जब नंगा रह जाता है तो हम कहते हैं कि आदमी बड़े नंगेपन पर उतर गया है। आदमी नंगा ही घूम रहा है। ये लड़के बड़े बिगड़ गए हैं। यह सब गड़बड़ हुआ जा रहा है।
यह कोई नहीं बिगड़ गया है। आप जिस ढांचे में बिठालना चाहते हैं वह ढांचा मैकेनिकल है, यांत्रिक है। वह मनुष्य की तरल चेतना को समझ कर नहीं बनाया गया। नहीं विचारा गया है।

पुनर्विचार जरूरी है मनुष्य के पूरे जीवन पर। बंधे-बंधाए उत्तर नहीं। प्रत्येक नई समस्या में नये मनुष्य को, नये युग को, फिर से उत्तर की जरूरत होती है। क्योंकि नये प्रश्न खड़े हो जाते हैं। बंधे हुए उत्तर देने वाली कौमें धीरे-धीरे मरने लगती हैं, और सड़ने लगती हैं। और हमारे उत्तर ऐसे बंधे हैं, बल्कि हम तो उलटे हैं। हम तो यह कहते हैं कि मेरा उत्तर तुमसे ज्यादा पुराना है। हमारी किताब तुमसे ज्यादा पुरानी है। हिंदू कहते हैं।। कि मेरा वेद। इससे ज्यादा पुरानी कोई किताब नहीं। जैन कहते हैं कि।। हमारी किताब। इससे ज्यादा पुराना कोई धर्म नहीं। जिसका जितना पुराना उत्तर है, वह कहता है: हमारे पास उतना ही ऊंचा उत्तर है।
सच्चाई यह है कि जिसके पास जितना नया उत्तर हो, वह मनुष्य के उतने काम
का हो सकता है। क्योंकि जितना पुराना उत्तर है, आदमी की यात्रा उससे बहुत दूर हो चुकी है। वह अब आदमी को उतना ही कम मौजूद रह गया है। हर युग को, हर स्थिति में नये उत्तर खोज लेने जरूरी होते हैं। और क्या हम मर गए, हमारी प्रतिभा मर गई कि हम नये उत्तर न खोज सकें।। जो हमें पुराने उत्तरों को मानने के लिए बाध्य किया जाए? क्या हमारे पास अब चेतना नहीं है कि हम नये उत्तर को विकसित कर सकें।
जापान में एक दफा ऐसा हो गया। दो मंदिर थे एक गांव में। एक उत्तर का मंदिर कहलाता था, एक दक्षिण का मंदिर कहलाता था। दोनों मंदिरों में झगड़ा था, जैसा कि मंदिरों में होता है। उनमें कोई बोलचाल नहीं थी।
किसी मंदिर में कभी बोलचाल नहीं है।
मंदिर के पुजारी एक-दूसरे को देखना भी पसंद नहीं करते थे। शत्रु थे बिल्कुल। और शत्रुता पीढ़ी दर पीढ़ी चली आती थी। कोई हजार साल पुरानी थीं। बड़ा मजा है! आदमी मर जाते हैं, बाप मर जाते हैं लेकिन अपने बच्चों को अपनी शत्रुताएं दे जाते हैं। वे जहर तैयार कर जाते हैं कि हमारी शत्रुता को कायम रखना। फलां आदमी से अपनी दुश्मनी थी।। वह पाकिस्तानी है, वह चीनी है, वह फलां है, वह ढिकां, वह हिंदू है, वह मुसलमान है। और बच्चे भी ऐसे नासमझ कि सब नया सीख लेते हैं लेकिन दुश्मनियां पुरानी पकड़े रहते हैं।
तो वह मंदिरों में हजार साल पुरानी दुश्मनी। दोनों मंदिरों के पुजारी बूढ़े हैं। और दोनों पुजारियों के पास दो छोटे-छोटे लड़के हैं। बाजार से सेवा टहल के लिए। सब्जी लाने के लिए, यह काम, वह काम के लिए। दोनों ने कह रखा है अपने लड़कों को कि देखो: उस मंदिर में मत जाना। उसमें पैर रखना भी पाप है।
हिंदुओं की किताबों में ऐसा लिखा है। जैनियों की किताबों में ऐसा लिखा है। औरों की किताबों में भी ऐसा लिखा है। जैनियों कि किताबों में ऐसा लिखा है कि अगर हिंदू मंदिर के सामने से निकल रहे हो, और पागल हाथी पीछे आ जाए, तो पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना लेकिन हिंदू मंदिर में शरण मत लेना। वह पाप नहीं है। पाप मंदिर में शरण लेना है। हिंदू ग्रंथों में भी यही लिखा है कि जैन मंदिर के सामने हो, और पागल हाथी आ जाए, तो उसके पैर के नीचे मर जाना लेकिन जैन मंदिर में शरण मत लेना। वह बहुत पापपूर्ण है। उधर घुसना ही मत।
वही उन्होंने समझाया हुआ था। दोनों बच्चे छोटे थे। उनसे यह भी कह दिया था कि आपस में भी कभी मिल जाओ तो बातचीत मत करना।
लेकिन बच्चे-बच्चे हैं। बूढ़े भी उनको बिगाड़ते हैं तो थोड़ा वक्त लग जाता है। एकदम से बिगाड़ना आसान नहीं।
बच्चे कभी-कभी मिल जाते थे, दो बात कर लेते थे।। चोरी छिपे। लेकिन एक दिन बड़ी गड़बड़ हो गई। उत्तर के मंदिर का बच्चा निकला। दक्षिण के मंदिर का बच्चा भी निकला हुआ था। रास्ते पर मिला। दक्षिण के मंदिर वाले लड़के ने उस उत्तर वाले ल.ड़के से पूछा: दोस्त कहां जा रहे हो?
वह अपने मंदिर से चला आ रहा था। वहां बड़ी मैटाफिजीकल, बड़ी दार्शनिक बातें चल रही थीं।। मंदिर में। वह भी उसी जोश में था।
उसने कहा: कहां जा रहे हो?

कौन कहां जाता है? जहां हवा ले जाती है, वहीं जा रहे हैं। सुन कर आ रहा
था ऊंची बातें। उसके दिमाग में फितूर चढ़ा हुआ था। उसने कहाः कौन कहां जाता है? कैसा आना, कैसा जाना! जहां हवा ले जाती है वहीं जाते हैं।
वह दूसरा लड़का तो दंग रह गया। इससे तो बातचीत यहीं बंद हो गई। आगे कुछ रास्ता न रहा। उसके मन को दुख भी हुआ। उसने सोचा कि कहीं मैं हार तो नहीं गया। मेरा गुरु कहता था: उस मंदिर से कभी हारना नहीं। वह लौट कर अपने गुरु के पास गया। उसने कहा कि बड़ा दुख है। आज उससे मैंने बात की, और मैं हार गया। उसने एक ऐसा उत्तर दे दिया कि उसके आगे मुझे कुछ सूझा ही नहीं।
मैंने पूछाः कहां जा रहे हो?
वह कहने लगा: जहां हवाएं ले जाएं।
उस बूढ़े ने कहा: कितनी दफा कहा, नहीं मानता। उससे बात तूने की, यही भूल की। हमारे मंदिर का कोई आदमी उस मंदिर के आदमी से कभी नहीं हारा। कल फिर उसी जगह खड़े हो जाना। उससे फिर पूछना कि कहां जा रहा है? और अगर वह कहे कि जहां हवाएं ले जाएं, तो उससे कहना कि अगर हवाएं ठहरी हों, और न चल रही हों।।
तो कहीं जाओगे कि नहीं? फिर वह भी रह जाएगा ठप्प। उसको भी कुछ सूझेगा नहीं। और उसको मुंह बंद करना बहुत जरूरी है।। उस मंदिर के लोगों का। एक दफा बढ़ गया तो बड़ी दिक्कत देंगे बाद में।
वह लड़का जाकर रेडीमेड उत्तर लेकर खड़ा हो गया कि आज यह कह देना है।
वह लड़का निकला उस मंदिर का।
उसने पूछा: कहां जा रहे हो दोस्त?
उसने कहा: कहां जा रहा हूं? जहां पैर जा रहे हैं, वहीं जा रहा हूं।
अब मामला ही बदल गया। वह हवा की बात ही उठाई नहीं उसने। उत्तर तैयार
था हवा का। पांव पर लागू नहीं होता था। बोलने की कोई जरूरत नहीं थी। फिर हार हो गई। वह वापस लौटा। उसने गुरु से कहा: वह तो बड़ा बेईमान है लड़का। उसने तो उत्तर ही बदल दिया।
गुरु ने कहा: उस मंदिर के लोग हजारों साल से बेइमान होते रहे हैं। यही
तो हमारा झगड़ा है। लेकिन ऐसे नहीं चलेगा। अब कल तू फिर खड़े हो जाना और उससे, जब वह कहे कि जहां पैर ले जाएं, तो उससे कहना ¬ः कभी ऐसा भी हो जाता है कि पैर में लकवा लग जाता है, कभी ऐसा भी हो जाता है कि पैर कमजोर हो जाते हैं।। फिर कहीं जाएगा कि नहीं जाएगा?
फिर दूसरे दिन, फिर वह खड़ा हो गया। फिर तैयार उत्तर। उसने उस लड़के से पूछा: कहो दोस्त कहां जा रहो हो?
उसने कहा: कहां जा रहा हूं? देखते नहीं, झोला लिए हुए हूं। सब्जी खरीदने जा रहा हूं। तो मामला वहीं डोल गया।
गुस्से में लौटा और कहा कि बड़ा बेईमान है वह, आज फिर बदल गया।
जिंदगी भी इतनी ही बेईमान है। रोज बदल जाती है अगर इसको बेईमानी कहते हों तो। सच तो यह है कि बदलाहट जिंदगी है। क्रोध जिंदगी के बदलने का नहीं; पागलपन और दुख आपके बंधे हुए उत्तरों का है। बंधे हुए उत्तर की यही हालत होती है। जिंदगियां बदलती जाती हैं, आप अपनी पुरानी किताब में खोज रहे हैं कि उत्तर कहां है? जब तक आप उत्तर खोजते हैं तब तक जिंदगी बदल गई। यहां तो ताजा, नया, अभी, इसी क्षण जीवन के साथ संपर्क चाहिए और उत्तर चाहिए। उत्तर अपने से चाहिए, बंधी हुई किताब से नहीं।
इस मुल्क के सामने सबसे बड़ी समस्या आज एक ही है। उसके चरित्र की, उसकी चेतना की, उसके व्यक्तित्व की। और वह यह है कि हमारे पास बंधे हुए उत्तर हैं और जिंदगी रोज बदलती चली जा रही है। जब तक हमारे पास जिंदगी के बदलते हुए उत्तरों के साथ बहने की क्षमता, और जिंदगी के बदलाहट को पकड़ लेने की क्षमता और जिंदगी के नये रूपों के नये रिस्पांस, नया प्रतियुत्तर हमारे भीतर से आ सके।। इतनी जीवंतता नहीं होगी, तब तक इस मुल्क का कोई भविष्य नहीं हो सकता है।
इसलिए मैं यह कहना चाहता हूं: छोड़ें बंधे-बंधाए उत्तर। चेतना को जगाएं, विकसित करें, खोजें नये उत्तर।। तो आज हम अपने जीवन की सारी समस्याओं के उत्तर खोज ले सकते हैं। कोई कठिनाई नहीं आ गई है, कोई ऐसा मसला नहीं आ गया है जो हल नहीं हो सकता। सब हल हो सकता है।

एक अंतिम प्रश्न की चर्चा और फिर मैं अपनी बात पूरी करूंगा।
एक मित्र ने पूछा है कि ध्यान, मौन, इनकी क्या जरूरत है, क्या सेवा करने से सब काम नहीं हो जाता।। समाज-सेवा, गरीबों की सेवा, भूदान।। कोई ऐसा काम रचनात्मक, इससे नहीं हो सकता? क्या जरूरत है कि हम मौन करें? ध्यान करें? क्यों समय गवाएं? मुल्क को तो सेवा की जरूरत है।

कई के मन में यह सवाल उठता है। कई कहते हैं कि सेवा ही धर्म है। मैं आपसे कहना चाहता हूं: सेवा धर्म नहीं है। यद्यपि धार्मिक व्यक्ति सेवक होता है। इसको थोड़ा समझ लेना जरूरी है।
धर्म तो सेवा है; लेकिन सेवा धर्म नहीं। क्या फर्क हो गया इतनी सी बात में? जमीन-आसमान का फर्क हो गया। जो आदमी शांत होता है, मौन होता है, जो आदमी प्रभु की दिशा में प्रार्थना में लीन होता है।। उसका सारा जीवन सेवा बन जाता है। लेकिन उसे पता नहीं चलता कि मैं सेवा कर रहा हूं। दूसरी तरफ जो आदमी कहता है: मैं सेवा कर रहा हूं। इस सेवा से न तो वह शांत होता है, न मौन होता है; और न प्रभु से संबंधित होता है। बल्कि मैं सेवा कर रहा हूं।। इससे उसका मैं और अहंकार बलिष्ट होता है और मजबूत होता है।
जाइए, सेवकों को खोजिए! और आप पाएंगे उनका अहंकार इतना मजबूत, जिसका हिसाब नहीं। सेवक।। भारी अहंकार से भरा रहता है कि मैं सेवा करने वाला हूं। धर्मिक चेतना हो जाए तो जीवन सेवा बन जाता है।। आनायास, आकस्मिक, सहज। लेकिन तब सेवा अहंकार की पूर्ति नहीं करती।
लेकिन कोई कहता है: हम सेवा कर-कर के ही, गरीब का पैर दाब कर, कोढ़ी की सेवा करके, सड़क झाड़ कर, हम सेवा कर-कर के परमात्मा को पा लेंगे।
तो मैं आपको निश्चित कहता हूं: कोई परमात्मा को पाने का द्वार सेवा
से नहीं जाता। सेवा एक नई तरह की अस्मिता और अहंकारपूर्ण ईगो को भर मजबूत करती है। और इस चेष्टा में जो सेवा की जाती है वह अक्सर गैर-जरूरी, कृत्रिम, अनावश्यक और कई बार जिसकी हम सेवा करते हैं उसके लिए भी खतरनाक हो जाती है।
एक घटना मुझे स्मरण आती है। एक स्कूल में एक पादरी ने जाकर एक दिन सेवा का उपदेश दिया। उसने बच्चों को समझाया कि सेवा करो। क्योंकि सर्विस, सेवा ही सच्चा धर्म है। रोज एक न एक सेवा करनी ही चाहिए। बिना सेवा किये भोजन नहीं खाना चाहिए। बिना सेवा किए चैन से सोना नहीं चाहिए। अगर तुम सेवा नहीं करते तो तुम कभी अच्छे आदमी नहीं बन सकते हो।
उन बच्चों ने पूछा: मतलब? कैसी सेवा? क्या करें?
उसने कहा: जैसे, जैसे कोई नदी में डूबता हो, तो उसको बचाना चाहिए। किसी के घर में आग लगी हो, तो दौड़ कर बुझाना चाहिए। कोई बूढ़ा, कोई बूढ़ी रास्ता पार होता हो, न होता हो उससे बनते, तो हाथ पकड़ कर रास्ता पार कराना चाहिए।
छोटे-छोटे बच्चे थे।
उन्होंने कहा: अच्छी बात है। हम कोशिश करेंगे। सात दिन बात वह पादरी फिर वापस आया।
उसने बच्चों से पूछा: तुमने कोई सेवा का काम किया? कोई एक्ट ऑफ सर्विस? तीन बच्चों ने हाथ ऊपर उठाए कि हमने किया।
उसने कहा: कोई हर्ज नहीं। आज तीन ने किया, कल तीस करेंगे। मैं बहुत खुश हूं। बेटे तुम खड़े होओ। बताओ, तुमने क्या सेवा की?
पहले लड़के से पूछा: तुमने क्या सेवा की?
उसने कहाः मैंने एक बूढ़ी औरत को सड़क पार करवाई।
पादरी ने कहाः बहुत अच्छा किया। हमेशा सेवा का काम करो। उससे तुम्हारे जीवन में बड़ा, बड़ा सत्य का अवतरण होगा। प्रभु का सान्निध्य मिलेगा। बैठ जाओ।
दूसरे से पूछा कि बेटे तुमने क्या किया।
उसने कहा कि मैंने भी एक बूढ़ी औरत को सड़क पार करवाई।

तब जरा पादरी को शक हुआ। इसने भी बूढ़ी औरत पार करवाई। फिर भी हो सकता है। क्योंकि बूढ़ी औरतों की कोई कमी तो है नहीं। करवा दी होगी। सड़कें भी बहुत, बूढ़ी औरतें भी बहुत, पार भी बहुत करती हैं। ऐसी क्या हैरानी की बात।
संयोग की बात नहीं।। होगा।
उसको भी कहा: अच्छा बेटा, बहुत अच्छा किया।
तीसरे से पूछा: तुमने क्या किया?
उसने कहा: मैंने भी एक बूढ़ी औरत पार करवाई।
उसने कहा: बड़ी हैरानी हो गई। तुम तीनों को तीन बूढियां मिल गईं।
उन्होंने कहा: तीन कहां साहब! एक ही बूढ़ी थी। उसी को हम तीनों ने पार करवाया।
एक ही बूढ़ी थी! तो क्या बहुत बिल्कुल मरने के करीब थी कि तुम तीन की जरूरत पड़ी ले जाने को?
उन्होंने कहा कि नहीं, मरने के करीब नहीं। बूढ़ी बड़ी ताकतवर थी। वह उस तरफ जाना ही नहीं चाहती थी। हम तो बामुश्किल से पार करवा लाए। वह तो बिल्कुल इंकार करती थी कि हमको जाना ही नहीं उस तरफ। लेकिन आपने कहा था: कोई एक्ट ऑफ सर्विस। कोई सेवा का काम बिना किए भोजन नहीं। अब हमको भूख लग रही थी। हमको भूख... हमको भोजन करना था और सेवा का काम हुआ नहीं। मकान में आग लगाएं, झंझट हो जाए! नदी में किसी को डुबाएं, मुश्किल हो जाए! हमने कहा ¬ः इस बूढ़ी को पार करवा दें। हमने पार करवा दिया। बिल्कुल पूरा पार करवा दिया। उस तरफ जाकर छोड़ा। अब वह फिर से लौट गई हो तो भगवान जाने! ...
सेवा को जो धर्म समझ लेते हैं उनकी सब सेवा खतरनाक हो सकती है। फिर उन्हें इसकी फिकर नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं। इसकी फिकर है कि मेरा धर्म, मेरा पुण्य कैसे अर्जित हो रहा है? सेवक अक्सर मिस्चिफ मेकर साबित होते हैं। बहुत उत्पात, उपद्रव खड़ा करवा लेते हैं। अगर दुनिया में सेवक और समाज सुधारकों की संख्या कम रही होती तो शायद समाज पहले से बहुत बेहतर होता। लेकिन वे अपनी धुन में लगे हैं, उनको समाज बदल के दिखा देना है। उनको सेवा करके दिखा देनी है। और वे इतने पागल हैं इसमें, कि यह कभी पूछते ही नहीं, कि मेरा मन शांत नहीं है।
शांत मन जो नहीं है: उससे निकली हुई सेवा जहरीली हो जाएगी। पहली बात
है कि मन अत्यंत शांत हो। तो शांत मन से जो भी कृत्य होता है, वह मंगलदायी होता है। अशांत मन से कोई भी कृत्य मंगलदायी नहीं होता। अशांत आदमी राजनीति में होगा तो मुश्किल खड़ी करेगा, अशांत आदमी सेवा करेगा तो मुश्किल खड़ी करेगा, अशांत आदमी साधु हो जाएगा तो मुश्किल खड़ी करेगा।
यह साधु-सेवा या राजनीति का सवाल नहीं। यह अशांत मन का अनिवार्य कारण
है कि उससे, उससे उपद्रव होगा। इसलिए मैं कहता हूं कि सेवा की फिकर मत करें। शांत होना पहली बात है, सेवा तो उसके पीछे छाया की तरह आती है।

धर्म की यात्रा
आठवां प्रवचन

खुद को खोने का साहस

एक छोटी सी कहानी से मैं आज चर्चा शुरू करना चाहूंगा। अंतिम चर्चा है यह। पिछली तीन चर्चाओं में जो मैंने आपसे कहा है, जो भूमिका और जो पात्रता बनाने को कहा है, उस भूमिका के अंतिम तीन चरण आज मैं आपसे कहने को हूं, उसके पहले एक छोटी सी कहानी।
एक बहुत पुरानी कथा है। एक सम्राट का बड़ा वजीर मर गया था। उस राज्य का
यह नियम था कि बड़े वजीर की खोज साधारण नहीं, बहुत कठिन थी। देश से सबसे बड़े बुद्धिमान आदमी को ही वजीर बनाया जाता था। बुद्धिमान आदमी की खोज में बहुत सी परीक्षाएं हुईं, बहुत सी प्रतियोगिताएं हुईं, बहुत सी प्रतिस्पर्धाएं हुईं और फिर अंतिम रूप से तीन आदमी चुने गए, उन तीनों को राजधानी बुलाया गया। वे देश के सबसे बुद्धिमान लोग थे। फिर उनकी परीक्षा हुई और उसमें से एक व्यक्ति चुना गया। और वह देश का वजीर बना।
उस अंतिम परीक्षा के संबंध में थोड़ी बातें मुझे कहनी हैं। उन तीनों
ने भी नहीं सोचा होगा कि अंतिम परीक्षा बहुत कठिन होगी। वे तीनों ही डरे हुए काफी घबराए हुए थे। जबकि रात खत्म हुई तो उन्होंने कोशिश की कि अगर पता चल जाए कि परीक्षा क्या है, तो शायद हम तैयारी कर लें। जैसा सभी विद्यार्थी करते हैं, परीक्षा के पहले पता लगा लेना चाहते हैं कि तैयारी का कि परीक्षा क्या है? उन तीनों ने भी कोशिश की।
कोई आजकल के विद्यार्थी ही समझदार हो गए हों ऐसा नहीं है, पहले के लोग
भी इतने ही समझदार थे।
लेकिन राजधानी पहुंचे, उनको पता चला कि पता लगाने की कोई भी जरूरत नहीं। पूरी राजधानी को पता हो गया है कि परीक्षा क्या है? गांव भर में खबर थी, हर आदमी कह रहा है कि कल परीक्षा क्या होगी। ये सुने, बहुत घबड़ा गए। परीक्षा पता न होती तो भी ठीक था।
परीक्षा यह होने को थी कि सम्राट ने एक भवन बनवाया हुआ था। उस भवन में
एक ही द्वार था। और उस द्वार पर उसने देश के बड़े-बड़े गंतव्यों और इंजीनियरों को बुलवा कर एक ऐसा ताला लगवाया था, जिसकी कोई चाबी नहीं। और उस ताले को खोलने की तरकीब तो थी लेकिन कोई चाबी नहीं थी, कोई कुंजी नहीं थी। उस ताले के ऊ पर गणित के अंक लिखे हुए थे और एक गणित की पहेली थी, जो उस पहेली को हल कर सकेगा, उससे वह ताला खुल जाएगा। बाकि किसी से वह ताला नहीं खुल सकता। गांव भर में खबर थी कि कल उन तीनों बुद्धिमान लोगों को महल के भीतर बंद कर दिया जाएगा, और उनसे कहा जाएगा कि इस ताले को खोल कर जो सबसे पहले बाहर आ जाएगा, वही वजीर होगा।
उन तीनों ने क्या किया? उनमें से एक तो जाकर तत्क्षण अपने घर सो गया।
दो बाजार की तरफ भागे।। तालों के संबंध में, पहेलियों के संबंध में, गणित के संबंध में।। जो भी किताबें मिल सकती थीं, उनको इकट्ठा कर लाए। और उन दोनों लोगों ने पढ़ना शुरू कर दिया, दोनों ने पढ़ना शुरू कर दिया। तीसरा सोया देख कर उन्होंने समझा कि मालूम होता है इसने हिम्मत खो दी, इसने दे दिया, यह परीक्षा नहीं देगा। वे दोनों रात भर तैयारी करते रहे।
अब न तो वे चोर थे जो उन्हें ताले खोलने की तरकीब पता हो, और न ही कोई इंजीनियर थे कि उन्हें ताले बनाने का कोई पता हो। रात भर पढ़ने का उसका परिणाम यह हुआ कि जितना वह सांझ को जानते थे, सुबह उससे बहुत कम जानते थे। अगर सुबह उनसे कोई पूछता, दो और दो कितने होते हैं? तो शायद वे उत्तर नहीं दे सकते थे। जैसा कि परीक्षार्थी, सो वह सभी परीक्षार्थियों की हालत हो जाए।। तो वह उनकी हालत होती थी।
जो आदमी रात भर सोया रहा है, जब वे दोनों परीक्षा के भवन की तरफ जाने लगे तो वह भी उठा और उनके पीछे हो गया।। गीत गाता हुआ। उन दोनों को बहुत हैरानी हुई! उन्होंने सोचा कि शायद यह पागल हो गया है। रात भर सोया है और सुबह गीत गा रहा है और परीक्षा में जा रहा है। फि र जब वे तीनों पहुंचे, और बात सच थी। सम्राट ने उन्हें एक महल के भीतर बंद किया और कहा कि इस दरवाजे

पर जो ताला लगा है।। यह गणित की एक पहेली है। और जो इसे हल कर लेगा और खोलेगा वह बाहर आ जाएगा, वह सम्राट का वजीर हो जाएगा। आप तीनों अंदर हो जाएं, मैं बाहर प्रतीक्षा करता हूं। सम्राट द्वार लगा कर बाहर जाकर प्रतीक्षा करने लगा।
वे दोनों आदमी अपने कपड़ों के भीतर किताबें छिपा लाए थे। जैसे ही सम्राट बाहर गया उन्होंने किताबें निकाल लीं और पहेली हल करने की कोशिश में लग गए। लेकिन वह तीसरा आदमी जो रात भर सोया रहा था, फिर आंख बंद करके एक कोने में सो गया। वे दोनों बहुत हैरान थे कि इसको क्या हो गया है! वे दोनों अपना हल खोजते रहे, परिणाम उलझते चले गए, उलझते चले गए। वह आदमी अचानक उठा, द्वार पर गया, उसने द्वार हटा कर देखा, द्वार बंद नहीं था।। अटका हुआ था, वह बाहर निकल गया। वे दोनों हल करने में लगे रहे। उन्हें पता भी नहीं चला कि उनका साथी बाहर हो गया। उन्हें तब पता चला जब सम्राट ने आकर कहा कि बंद करो अपनी किताब, जिसको निकलना था वह बाहर निकल गया। वे दोनों तो भौंचक्के रह गए! उन्होंने कहा: यह आदमी बाहर निकल गया, ये तो आंख बंद किए बैठा था। ये कैसे बाहर निकला!
सम्राट ने कहा: इस आदमी ने बुद्धिमत्ता का सबसे बड़ा सुबूत दिया है। इसने पहले ही यह देखने की कोशिश की कि दरवाजा बंद है या खुला है? बंद हो तो खोलने की कोशिश की जाए, खुला हो तो खोलने की क्या जरूरत है? इसने पहले यह देखने की कोशिश की कि कोई समस्या भी है या नहीं? समस्या हो तो समाधान खोजा जाए, और समस्या न हो तो समाधान कैसे खोजा जा सकता है?
सबसे कठिन समाधान वे ही होते हैं, जो उन समस्याओं के लिए खोजे जाते हैं जो कि समस्याएं ही नहीं। जो द्वार बंद ही नहीं है उसे खोलने की सब कोशिशें असफल हो जाने को पहले से ही निश्चित है।
परमात्मा का द्वार बंद नहीं है। जो लोग भी उसे खोलने की कोशिश करते हैं, वे असफल हो जाते हैं। परमात्मा का द्वार खुला हुआ है। लेकिन द्वार खुला हुआ है, इसका बोध भी केवल उन्हीं को उपलब्ध होता है, जो अत्यंत शांत और मौन होकर बैठने में समर्थ है।
वह आदमी सोया हुआ नहीं था, वह आदमी मौन और शांत बैठ गया था।
जब समस्या सामने हो तो सबसे बड़ा समाधान यह है कि समस्या का साक्षात्कार कोई शांति और मौन से कर सके। समस्या को जो सोच कर हल करने की कोशिश करता है, वह और उलझता चला जाता है, वह समस्या को हल नहीं कर पाता है। समस्या के हल के लिए पहली जरूरत है कि कोई मौन, शांति को उपलब्ध हो जाए, तो उस शांति में ही वह द्वार, वह दिशा दिखाई पड़ जाती है।। जहां समाधान है।
और जहां समस्या नहीं है। वह आदमी ऊपर से दिखाई पड़ता था कि कोई उपाय नहीं कर रहा है, वही आदमी ठीक उपाय कर रहा था। वे दोनों जो उपाय करते हुए प्रतीत हो रहे थे, वे कोई उपाय नहीं कर रहे थे, वे और उलझते जा रहे थे। वे और अपने ही जाल में फंसते जा रहे थे।
वह सम्राट बड़ा अदभुत सम्राट था। और उसने जो समस्या खोजी, वह बड़ी अदभुत थी। परमात्मा और भी अदभुत है। उसने भी जो मनुष्य के साथ समस्याहै वह, वह भी बहुत अदभुत है। वह उतनी सरल है कि जिनके मन जटिल हैं, वे उसे नहीं खोल पाते हैं। और जिनके मन सरल हैं, वे उसे खोल लेते हैं। यह श्रमदा, यह मौन, यह शांति कैसे उपलब्ध हो कि प्रभु का द्वार खुल जाए, उसके तीन सूत्रों पर, अंतिम तीन सूत्रों पर मुझे आपसे बात करनी है।
पहला सूत्रः असीम का बोध। मनुष्य के चारों तरफ एक असीम जगत है। लेकिन हमें उस असीम का, उसका कोई बोध नहीं है। हम अपनी ही सीमाओं में बंधे हुए जीते हैं और जो आदमी जितनी सीमाओं में बंधा हुआ होता है; उतना ही क्षुद्र, उतना ही जटिल हो जाता है। और जो आदमी असीम के बोध को जितना उपलब्ध होता है; उतना ही विराट, उतना ही सरल हो जाता है।
क्षुद्रता और कठिनता एक ही साथ उपलब्ध होती हैं। सरलता और असीमता एक
ही साथ उपलब्ध होती हैं। छोटे-छोटे झरने बहुत शोरगुल करते हैं। जितना विराट सागर हो उतना ही मौन सन्नाटे में डूब जाता है। बर्तन खाली हो तो आवाज, थोड़ा भरा हो तो आवाज करता है, पूरा भर जाए तो मौन आ जाता है।

मनुष्य जब तक अपनी सीमाओं में छोटा बना है, क्षुद्र बना है तब तक उसके जीवन में शांति असंभव है। शांति असीम का लक्षण है; अशांति सीमित का लक्षण है। अशांति होती ही सीमाओं के कारण है। जहां सीमा आ जाती है वहीं चित्त अशांत हो जाता है; जहां दीवाल आ जाती है वहीं चित्त अशांत हो जाता है; जहां कोई अड़चन खड़ी हो जाती है वहीं चित्त अशांत हो जाता है। हमारी सारी अशांति... एक कारागृह में कैदी बंद होता है, उसकी अशांति क्या होती है आपको पता है? उसको भोजन नहीं मिलता? उसको भोजन मिलता है। उसको सोने नहीं मिलता? उसको सोने भी मिलता है। और यह भी हो सकता है कि घर से अच्छा भोजन मिलता हो, घर से अच्छा सोने को मिलता हो, लेकिन अशांति क्या हो जाती है उसे? अशांति यह हो जाती है।। जहां भी जाता है दीवाल मिल जाती है, द्वार कहीं भी नहीं मिलता। जहां भी जाता है बंधन मिल जाते हैं। जहां भी जाता है सीमा आ जाती है। असीम के साथ कोई उसका मिलन नहीं हो पाता।
कैदी की पीड़ा क्या है? कैदी की पीड़ा सीमा है। मुक्त व्यक्ति का आनंद क्या है? मुक्त व्यक्ति का आनंद सीमा का अभाव है। लेकिन जो लोग कारागृहों में बंद होते हैं वे ही कैदी नहीं हैं, हम सब भी कैदी हैं। फर्क इतना है कि वे दूसरों के बनाए कारागृहों में बंद होते हैं; हम अपने बनाए कारागृहों में बंद रहते हैं। और प्रभु मिलन की जिसके मन में प्यास पैदा हो गई हो, उसे सब तरह के कारागृह तोड़ देने होते हैं, और सब जंजीरें गिरा देनी होती हैं। हमारी सीमाएं हमने निर्मित कर ली हैं। कोई कहता है मैं हिंदू हूं। उसने इतनी बड़ी मनुष्य-जाति से नाता तोड़ दिया। अब वह हिंदू है। फिर वह हिंदू भी कहता है मैं वैष्णव हूं। उसने हिंदू से भी नाता तोड़ दिया है। अब वह सिर्फ वैष्णव रह गया। वह वैष्णव भी कहता है कि मैं ब्राह्मण हूं या फलां हूं या ढिकां हूं।। उसने और नाता तोड़ दिया। फिर वह ब्राह्मण भी कहता है।। मैं गुजराती हूं, मैं मराठी हूं।। उसने और नाता तोड़ दिया, वह और छोटे में सीमित हो गया। और छोटे में सीमित होते-होते आखिर में वह अकेला अहंकार रह पाता है कि मैं हूं, और मैं कोई नहीं हूं। और तब वह क्षुद्रतम कारागृह में बंद हो जाता है। मनुष्य अपने ऊपर जो भी सीमाएं थोपता है, वे सभी सीमाएं उसे परमात्मा से दूर करने वाली सिद्ध होती हैं। परमात्मा की दिशा में जिसे जाना है उसे सभी सीमाएं तोड़ देनी होंगी। उसे सब विशेषण गिरा देने होंगे। उसे सारे द्वार खोल देने होंगे। सब दीवालें गिरा देनी होंगी। तो ही व्यक्ति असीम को उपलब्ध हो सकता है।
एक सम्राट ने अपनी पचासवीं वर्षगांठ मनाई। उसने देश के सौ बड़े विद्वानों को, बुद्धिमानों को बुलाया भोजन पर। उन सबको भोजन कराया गया, उनका सेवा-सत्कार किया गया, और जब विदा लेने लगे तो सम्राट ने कहा कि दक्षिणा भी मैं देना चाहता हूं। लेकिन मैंने सोचा कि मैं कुछ भी दूंगा तो कहीं वह आपके योग्य न हुआ, कहीं वह आपसे छोटा पड़ गया, तो इसलिए फिर मैं खुद देने के लिए तैयार नहीं हूं। मैं आपसे ही कहता हूं कि मेरे भवन के पीछे जो विराट राज्य की भूमि है, उस भूमि में से जितनी आप जो लेना चाहें ले लें।।
जितनी जो लेना चाहे। एक ही शर्त है कि उस जमीन पर जो जितना बड़ा घेरा बना लेगा, वह जमीन उसकी हो जाएगी। जितना बड़ा घेरा जो बना लेगा, उतनी ही जमीन उसकी हो जाएगी।
वे सौ आदमी तो पागल हो गए। वे सौ ही ब्राह्मण, वे सौ ही बुद्धिमान तो पागल हो गए कि जितना घेरा बनाएंगे, उतनी जमीन! वह राज्य की सबसे बहुमूल्य जमीन थी। वह राजा की अपनी जमीन थी। उसकी कीमत का कोई हिसाब न था। और सिर्फ घेरा बनाने के मूल्य पर वह मिलती थी।
वे गए और उन्होंने अपने मकान बेच दिए और अपनी जमीनें बेच दीं, अपने जेवर बेच दिए। उन्होंने अपने कपड़े तक बेच दिए कि एक दफा बेच दो सब; जमीन घेर लो, फिर जमीन बेच कर बहुत कुछ उपलब्ध हो जाएगा। फिर वे सौ ही पागल की तरह लग गए और उन्होंने जमीन पर बड़े से बड़े घेरे बना लिए। आप सोच सकते हैं कि उन्होंने कितने घेरे बनाए होंगे?
अगर आप भी उनकी जगह होते तो कितना बड़ा घेरा बनाते?
वह कितनी मुश्किल में पड़ गए। छह महीने का केवल वक्त मिला था उनको, और
छह महीने में घेरा बनाना था। छह महीने बीतते-बीतते वे बड़े दीन-हीन हो गए,

भूखे रहने लगे, सारे बड़े-बड़े घेरे बना लिए। और उस राजा ने और आखिरी पागलपन पैदा करवा दिया। उसने तीन महीने बाद कहा कि एक बात और तुम्हें बता दूं, जो सबसे बड़ा घेरा बना लेगा उसको मैं राजगुरु के पद पर स्थापित कर दूंगा। अब तो और जोर पकड़ गया।
छह महीने पूरे होने पर राजा गया और उसने कहा कि ठीक है तुमने काफी बड़े घेरे बनाए, किसने सबसे बड़ा घेरा बनाया है वह खुद कह दे, ताकि उसके घेरे का निरीक्षण कर लिया जाए। एक ब्राह्मण खड़ा हो गया। सारे ब्राह्मण उसे देख कर हंसने लगे। वह निन्यानवें ब्राह्मण उसको पागल समझते थे, क्योंकि उसने एक छोटा सा घेरा बनाया था, अत्यंत छोटा सा। वह दावा कर रहा है कि मेरा घेरा सबसे बड़ा है। शायद उसका दिमाग खराब हो गया है।
लेकिन जब दावा किया गया था तो निरीक्षण होना जरूरी था। सम्राट उसके घेरे पर गया, वहां जाकर सम्राट को भी ख्याल आ गया कि वह आदमी पागल है। रात उसने जो घेरा बनाया था उसमें आग लगा दी थी, अब वहां कोई घेरा ही नहीं था। सम्राट ने कहाः तुम्हारा घेरा कहां है?
उस ब्राह्मण ने कहा: घेरा मैं कितना ही बड़ा बनाता, घेरे में जो जमीन घिरी है वह छोटी ही हो सकती है। मैंने घेरा जला दिया और मैं दावा करता हूं कि मेरी जमीन सबसे बड़ी है। क्योंकि मेरी जमीन पर कोई घेरा नहीं। मेरी जमीन की कोई सीमा नहीं है, इसलिए मैं दावा करता हूं कि मेरी जमीन सबसे बड़ी है। इन सबकी जमीन छोटी ही होंगी, कितनी ही बड़ी हों, तो भी छोटी होंगी क्योंकि।।
घिरी है। जो घिरा है वह छोटा है, जो अनघिरा है वही बड़ा है। सम्राट उसके पैरों पर गिर पड़ा और उसने कहा कि मैं जिस ब्राह्मण की खोज में था, वह मुझे मिल गया।
क्योंकि घेरा बनाता है जो, वह ब्रह्म को नहीं जान सकता; वह ब्रह्म नहीं हो सकता। जो घेरे तोड़ देता है, वही फिर उस ब्रह्म को जान पाता है। घेरे लेकिन हम सब बनाते हैं, न मालूम कितनी शक्लों के घेरे बनाते हैं; और उन घेरों से जकड़ जाते हैं, उन घेरों से पकड़ जाते हैं।। मैं भारतीय हूं, मैं हिंदू हूं, मैं मुसलमान हूं; मैं स्त्री हूं, मैं पुरुष हूं; मैं धनी हूं, मैं गरीब हूं; मैं ये हूं, मैं वह हूं। जब तक हम यह घोषणा करते हैं कि मैं यह हूं, तब तक हमारे ऊपर घेरा है, तब तक हम सीमा से बंधे हैं।
जिस दिन एक आदमी कह देता है कि मुझे पता ही नहीं कि मैं कौन हूं? जिस दिन वह कह देता है मेरा कोई घेरा नहीं, जिस दिन कह देता है मैं हूं ही नहीं, क्योंकि मैं होऊंगा तो कोई न कोई घेरा हो जाएगा। उस दिन वह असीम की तरफ पहला कदम रखता है। असीम की यात्रा में पहला कदम है: चित्त पर सारे घेरे हट जाएंगे।
दूसरा कदम हैः असीम का सानिध्य। हम सीमित के ही सानिध्य में होते हैं। न तो हम कभी खुले आकाश के नीचे होते हैं, न हम कभी दूर सागर के किनारे होते हैं; न हम तारों के पास होते हैं, न हम वह जो चारों तरफ फैला हुआ विराट शून्य है, उसके सान्निध्य में होते हैं।
हम तो आदमी से घिरे हैं और आदमी की दुनिया से बंधे हैं। आदमी की दुनिया बहुत सीमित है। आदमी जो भी बनाएगा, वह बहुत सीमित है। आदमी जो भी निर्मित करेगा, वह असीम के लिए नहीं हो सकता। हम आदमी और आदमी और आदमी से घिर-घिर कर एकदम सीमित होते चले गए हैं।
जो प्रकृति के करीब नहीं पहुंचता, वह अनंत के और असीम के करीब नहीं पहुंच सकता। परमात्मा को खोजने आदमी के बनाए हुए मंदिरों में न जाएं, परमात्मा को खोजने को उस विराट के निकट जाएं, जो चारों तरफ हमेशा मौजूद है और बुला रहा है। लेकिन उस तरफ हमें कुछ सुनाई नहीं पड़ता। उस तरफ हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। हम भूल ही गए हैं कि हमारे चारों तरफ एक अनंत फैला हुआ है। हमें कल्पना भी नहीं रही है कि अनंत कितने दूर तक चला गया होगा, कैसा होगा?
एक धर्मगुरु ने एक रात सपना देखा कि वह स्वर्ग के द्वार पर पहुंच गया है। जीवन भर स्वर्ग की ही उसने कामना की थी। और आज स्वर्ग के द्वार पर देख कर वह बहुत खुश हुआ। उसने सोचा जरूर भगवान द्वार पर खड़े होंगे, मुझे गले लगाने को उत्सुक होंगे। क्योंकि मैं उन्हीं की तो प्रार्थना करता रहा

जीवन भर। उन्हीं का तो गुणगान करता रहा, उन्हीं की स्तुति करता रहा। जरूर वे द्वार पर खड़े होंगे और गले भर कर मुझे आलिंगन करेंगे और महल में ले जाएंगे। लेकिन द्वार वहां बंद था।। स्वर्ग का। वहां कोई भगवान तो दूर, वहां कोई भी नहीं था। वह बहुत हैरान हुआ! फिर उसने सोचा शायद मेरे आने की कोई खबर न हुई हो। तो फिर द्वार पीटना शुरू किया, लेकिन द्वार पर आवाज का कोई... आवाज भी पैदा नहीं होती थी। द्वार इतना बड़ा था और वह आदमी इतना छोटा था कि जैसे कोई चींटी किसी लोह-द्वार पर चोट करती हो, ऐसी वह चोट थी। उसकी कोई ध्वनि पैदा न होती थी। वह द्वार इतना बड़ा था कि उसके ओर-छोर दिखाई नहीं पड़ते थे। वह कहां खतम होता है और कहां शुरू होता है, कुछ पता नहीं चलता था। वह तो घबरा गया। वह ठोक रहा है, पीट रहा है दरवाजा, उसके हाथ-पैर दुखने लगे, उसकी श्वासें थक गईं, तब कहीं कोई एक खिड़की खुली द्वार से। और कोई चेहरा बाहर झांका। और उस चेहरे की कम से कम हजार आंखें होंगी, और एक-एक आंख एक- एक बड़ा जलता हुआ सूरज थी। उससे इतनी रोशनी आई कि वह पुरोहित घबड़ा कर एक कोने में दब गया और चिल्लाने लगा आप भीतर ही रहें भगवान।। भीतर ही, बाहर न निकलें, मैं बहुत घबड़ा गया हूं। उन हजार आंखों वाले आदमी ने कहा कि मैं भगवान नहीं हूं। मैं तो केवल यहां का पहरेदार हूं। भगवान से तो मेरा भी मिलना नहीं हुआ है। तू कौन है और कहां से बोल रहा है, मुझे दिखाई नहीं पड़ता?
आंखें हजार सूरज जैसी हैं, लेकिन इतनी बड़ी आखें भी उस आदमी को नहीं देख पा रही हैं, क्योंकि आदमी बहुत छोटा है। वे आंखें खोजती हैं और कहती हैं, तू कहां है और कौन है? वह नीचे से चिल्लाता है क्या तुम्हें पता नहीं, मैं फलाने-फलाने धर्म का सबसे बड़ा धर्मगुरु हूं, आर्च प्रीस्ट हूं। मेरा नाम तक तुम्हें पता नहीं। अखबार नहीं पढ़ते हो, किताबें नहीं पढ़ते हो? कितनी किताबों में मेरा नाम छपा है, कितने अखबारों में मेरी खबर निकलती हैं।
उस पहरेदार ने कहाः यहां तक कोई खबर नहीं पहुंच पाती, सब खबरें बीच में ही समाप्त हो जाती हैं। फासला बहुत ज्यादा है, तुम कहां से आते हो पहले ये बताओ?
उसने कहा: मैं आदमी हूं और पृथ्वी से आता हूं।
उस पहरेदार ने कहा: आदमी? पृथ्वी? ये शब्द यहां पहली बार सुने जा रहे हैं। कौन सी पृथ्वी? क्या नंबर है तुम्हारी पृथ्वी का, क्या इंडेक्स नंबर है? क्योंकि करोड़ो पृथ्वियां हैं, कौन सी पृथ्वी से आते हो? किस प्रकार के मनुष्य हो? क्योंकि करोड़ों प्रकार के मनुष्य हैं।
उस आदमी ने कहा: सूर्य की पृथ्वी।
अब वह धर्मगुरु घबड़ाने लगा था, उसके पैर के नीचे की जमीन खिसकती जा रही थी। जब पृथ्वी तक का कोई पता नहीं, जब आदमियत का भी कोई पता नहीं, तो मेरे धर्मगुरु की कोई खबर यहां पहुंची हो बहुत मुश्किल है? और ये तो पहरेदार है इस तक भी खबर नहीं पहुंची तो आगे का कोई हिसाब लगाना गलत है। उसके पैर... लगे, उसने कहा: सूर्य वाली पृथ्वी।
उस पहरेदार ने कहाः अरबों सूर्य हैं, और... अरबों सूर्यों के अपने- अपने तारे, अपनी-अपनी पृथ्वियां, अपने-अपने ग्रह हैं। कौन सा सूर्य?
उसने कहाः हमने तो कोई नाम नहीं रखा, हम तो एक ही सूर्य को पहचानते हैं इसलिए नाम रखने की कोई जरूरत नहीं पड़ी।
उसने कहाः फिर भी मैं कोशिश करता हूं पता लगाने की, लेकिन कम से कम छह महीने लग जाएंगे। पता लग जाएगा कि तुम किस जगह से आते हो, लेकिन तुम चाहते क्या हो? उस धर्मगुरु की जबान बंद हो गई।
क्योंकि ऐसे विराट के समक्ष।। चाह का, मनुष्य की चाह का मूल्य ही क्या
हो सकता है? कौन उसे सुनेगा? कौन उसे पहचानेगा? घबड़ाहट में उसकी नींद खुल गई, ठंडी रात थी। वह पसीने से तरबतर अपने बिस्तर पर पड़ा था। सुबह उसने चर्च में जाकर कहा कि रात मैं बहुत घबरा गया हूं। मुझे पहली दफा खयाल आया है कि इतना विराट है यह सब कुछ। इस विराट का मुझे कोई ख्याल ही न था।
सूरज से पृथ्वी तक सूर्य की रोशनी आने में दस मिनट लगते हैं। शायद हमको लगेगा कि सूर्य बहुत पास है। शायद हमें पता न हो कि प्रकाश की किरण

कितनी यात्रा करती है? एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील की यात्रा करती है। एक सेकेंड में, एक लाख छियासी हजार मील चलती है सूर्य की किरण। दस मिनट लगते हैं सूरज की किरण को पृथ्वी तक आने में। लेकिन सूरज बहुत करीब है, पृथ्वी के जो निकटतम तारा है, उससे जमीन तक प्रकाश आने में चार वर्ष लगते हैं।। उसी गति से। एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील की गति से। रोशनी चलती है तो चार वर्ष में पहुंचती है। जो सबसे निकट का तारा है। जो सबसे दूर के तारे हैं, किसी से चार करोड़ वर्ष लगते हैं, किसी से पांच करोड़ वर्ष लगते हैं, पृथ्वी तक रोशनी आने में। पृथ्वी को बने दो अरब वर्ष हुए हैं, ऐसे तारे हैं जिनकी रोशनी पृथ्वी के बनने से पहले चली थी और अब तक पृथ्वी पर नहीं पहुंची। उसके आगे भी तारे होंगे, उसके आगे भी तारे होंगे। उसको मील से नहीं नापा जा सकता। क्योंकि मील का कोई हिसाब वहां काम नहीं करता।
इतना ये जो विराट है, धार्मिक व्यक्ति को इस असीम का बोध होना चाहिए। उसे बोध किस बात का है? उसे इस बात का बोध है कि मैंने अपने गांव में सबसे बड़ा मकान बना लिया है।। इसका बोध है। उसकी पृथ्वी की भी कोई गणना नहीं है जगत में। उसका सूरज भी सबसे छोटा सूरज है। पृथ्वी से हमारा सूरज सात हजार गुना बड़ा है। लेकिन यह सूरज सबसे छोटा सूरज है। ऐसे दो अरब सूरज का पता तो विज्ञान को है, वे इससे बड़े हैं, करोड़ों-अरबों गुना बड़े हैं। और हमने... में एक तीन मंजिल का मकान बना लिया। तो हम इतराए घूम रहे हैं। हम पागल हो गए हैं कि हमने तीन मंजिल का मकान बना लिया है सुना तुमने, कि मंजिल तीन का मकान बना लिया। हम पागल हुए घूम रहे हैं। हमारा बोध हमारे मकान का बोध है। और हम जिस बड़े मकान में रह रहे हैं, उसका हमें कोई भी पता नहीं है। उसका हमें कोई ख्याल भी नहीं। फिर हम अपने ही मकान जैसा भगवान के लिए भी एक मकान बना लेते हैं और कहते हैं, मैंने अपने लिए ही नहीं; एक भगवान का मंदिर भी मैंने बना दिया है।
भगवान का मंदिर केवल उस हृदय में बनता है जो असीम के साथ एक हो जाता है। भगवान का मंदिर किन्हीं दीवालों के भीतर नहीं बन सकता है। और जब आदमी भगवान का मंदिर दीवालों में बना लेता है तो वह खुद तो कैदी है, वह एक कैदी भगवान को भी पैदा कर लेता है। ऐसे कई तरह के भगवान पैदा हो गए हैं, वे सब कैदी भगवान हैं, वह आदमी की करतूत है।
एक चर्च में एक रात एक काले आदमी ने दरवाजा खटखटाया। पादरी ने द्वार खोला। उसे पता नहीं था कि काला आदमी द्वार पर खड़ा है। क्योंकि वह चर्च काले लोगों का चर्च न था। वह मंदिर गोरे लोगों... ।
मंदिर में भी चमड़ी के रंगों का ख्याल किया जाता है। मंदिर में भी आदमी पहचाने जाते हैं कि कौन आदमी भीतर आने के योग्य है, पात्र है, कौन आदमी नहीं, और इसकी जांच जन्म से की जाती है, इसकी जांच चमड़ी से की जाती है। इसकी जांच, वह आदमी किस जमीन पर पैदा हुआ है इससे की जाती है। इसकी जांच इस बात से की जाती है कि वह आदमी किस किताब को पढ़ा है।
उस पादरी ने देखा कि काला आदमी द्वार पर खड़ा है उसके लिए तो मंदिर नहीं है वह। अगर पुराने दिन होते तो वह कहता: शूद्र यहां तुम कैसे आ गए? और पुराने दिन होते तो उसकी गर्दन अलग कर दी जाती। और पुराने दिन होते तो उसके आंख, कान फोड़ दिए जाते कि तूने अपनी अपवित्र आंखों से इस मंदिर को कैसे देखा है? लेकिन जमाना बदल गया है, अब ऐसे काम करने जरा मुश्किल हैं। दिल तो बहुत होता है पुरोहित का कि ऐसे काम करवा ले, लेकिन बहुत मुश्किल है।
उसने उसको कहा कि मेरे भाई तुम कैसे आए यहां, कैसे आना हो गया है?
उस नीग्रो ने कहा... तो आप से मुझे मंदिर के भीतर आने दें, मुझे भी प्रभु की प्यास पैदा हो गई है। मत रोकें मुझे, मुझे भीतर जाने दें, मेरे प्राण उसके लिए आतुर हैं।
वह पादरी हंसने लगा, और उस पादरी ने कहा: पागल, मंदिर में आने से क्या होगा? पहले जा हृदय को पवित्र कर, प्रार्थना कर, प्रेम कर, मन को शांत कर, मौन कर। जब तेरे प्राणों में एक शांति की ज्योतिशिखा बन जाएगी, तू आ जाना।

फिर प्रभु के दर्शन हो सकते हैं, ऐसे प्रभु के दर्शन नहीं हो सकते। और उसने द्वार बंद कर दिए। वह काला आदमी वापस लौट गया।
उस पादरी ने सोचा कि न इसका मन कभी पवित्र होगा, न यह दुबारा लौट कर आएगा। शर्त काम कर जाएगी, झंझट के हम बाहर हो गए हैं। एक साल बीत गया। फिर पादरी निश्चिंत हो गया, वह आदमी कभी दिखाई ही नहीं पड़ा। लेकिन एक साल बाद एक दिन सुबह-सुबह ही सूरज निकला था और वह आदमी चला आ रहा है चर्च की तरफ। उस पादरी के प्राण... खाने लगे, कहीं वह आ तो नहीं रहा, और उसकी चाल को देख कर उसे लगा कि शायद वह जरूर आ रहा है। क्योंकि उसके पैर एक अदभुत शांति से उठ रहे हैं। उसकी आंखों की ज्योति बदल गई है। उसके चेहरे का भाव बदल गया है। वह एक पवित्र फूल की तरह हो गया है। वह चर्च का पादरी घबड़ा गया है। लेकिन नहीं, वह गलती हो रही है उससे, वह नीग्रो, वह काला आदमी मंदिर की तरफ आंख उठा कर भी नहीं देखा। वह आगे चला गया।
पादरी दौड़ा, उसे रोका और कहा कि मेरे दोस्त तुम आए नहीं?
वह नीग्रो हंसने लगा और उसने कहाः आप न पूछें तो अच्छा है। एक साल मैंने यही कोशिश की कि कब मंदिर में प्रवेश पा जाऊं, एक साल प्रार्थना और प्रेम का ही वर्ष था। एक साल मैंने प्राणों को पवित्र करने के सब उपाय किए। और धीरे-धीरे सफलता मिलने लगी और मेरे प्राण एक सुगंध से भरने लगे, एक संगीत उतरने लगा। आशा बंधने लगी कि आज नहीं कल, आज नहीं कल किसी दिन मंदिर में प्रवेश का अधिकारी हो जाऊंगा। और कल सांझ को तो लगता था कि आ गया वह समय, और लगता था कि कल सुबह होते ही मंदिर पहुंच जाऊंगा। प्रभु के दर्शन हो जाएंगे, लेकिन रात सब गड़बड़ हो गई।
उस पादरी ने पूछाः रात क्या हुआ?
उस नीग्रो ने कहाः आप न पूछें तो अच्छा है? लेकिन आप नहीं मानते हैं तो मैं कहे देता हूं, रात सपने में मुझे भगवान दिखाई पड़े। और वह भगवान कहने लगे कि तू पागल क्यों इतनी प्रार्थनाएं कर रहा है, किसके लिए? क्या चाहता है? क्या तेरी मर्जी है, क्या तेरी इच्छा है? तो मैने कहाः मेरी और कोई मर्जी नहीं है, वह तुम्हारा जो मंदिर है गांव में, मैं उसमें प्रवेश चाहता हूं। वे भगवान एकदम उदास हो गए और कहने लगे कि यह मांग तू मत कर। यह वरदान भर मैं नहीं दे सकता हूं, और सब दे सकता हूं। दस साल से मैं खुद ही कोशिश कर रहा हूं उस मंदिर में जाने की। वह पादरी मुझको ही भीतर नहीं आने देता तो तुझे कैसे भीतर आने देगा?
दस साल की ही बात होती तो भी ठीक थी। भगवान ने शायद वह नीग्रो घबड़ा न जाए इसलिए शायद दस साल कहा हो, वैसे हजारों साल से यह कोशिश चल रही है कि भगवान मंदिरों में प्रवेश पा जाएं। लेकिन पादरी, पुरोहित, पुजारी प्रवेश करने नहीं देते, नहीं करने देंगे, नहीं करने देंगे; नहीं हो सकता यह प्रवेश, क्योंकि सीमा में असीम का प्रवेश असंभव है। वह जो सीमित है, वह जो दीवालों में बंद घर है वहां असीम का प्रवेश नहीं हो सकता।
असीम में जाना हो तो सीमाएं अपनी छोड़नी होंगी; तो असीम से मिलन हो सकता है। असीम को अपनी सीमाओं में नहीं लाया जा सकता है। बूंद चाहती हो कि समुद्र बूंद में आ जाए तो यह नहीं हो सकता है, लेकिन बूंद चाहे कि मैं समुद्र में गिर जाऊं तो यह हो सकता है। मनुष्य चाहे कि हम परमात्मा को अपने मकान में ले आएं, तो वे भूल में है, वे गलती में है, यह नहीं हो सकता। लेकिन मनुष्य अगर चाहे कि मैं परमात्मा में प्रविष्ट हो जाऊं।। तो यह हो सकता है, यह संभव है। असीम में सीमा खोई जा सकती है, लेकिन असीम को सीमा में नहीं लाया जा सकता है।
यह पहला सूत्र स्मरण रखने जैसा है कि हमारे जीवन में सीमा से अतिक्रमण और असीम की गति बढ़ती चली जाए। असीम का ध्यान, असीम का स्मरण, असीम का भाव प्रवेश करता जाए।। विचार में, भाव में, जीवन में प्रविष्ट होता चला जाए, जहां सीमा मिल जाए, वहीं से सीमा को उखाड़ने की कोशिश चलती रहे, तो एक दिन यह सूत्र पूरा हो सकता है।। पहली बात।
दूसरी बात जिस भांति असीम का बोध जरूरी है, वैसे ही अनंत का बोध भी जरूरी है। असीम के बोध का अर्थ है: क्षेत्र में, स्थान में, स्पेस में।।
असीम। और अनंत का अर्थ है: समय में, काल में, टाइम में।। अनंत। दो ही

अस्तित्व हैं जगत में।। स्पेस और टाइम। काल और क्षेत्र। दो ही जगत है।।
स्थान है, और समय है। बस दो ही अस्तित्व हैं, और दोनों के अस्तित्व से मिल कर सारा जीवन। स्थान में असीम का बोध होना चाहिए कि स्थान कहीं भी समाप्त नहीं होता, समाप्त ही नहीं होता; कोई सीमा नहीं आती। ऐसे ही समय भी कहीं समाप्त नहीं होता, न कहीं शुरू होता। उसकी भी कोई सीमा नहीं आती। लेकिन स्थान में हम जीते हैं छोटे-छोटे घेरे बना कर, और समय में भी हम जीते हैं छोटे-छोटे घेरे बना कर।
एक आदमी सोचता है कि मेरी पचास साल की जिंदगी जो है, वही जिंदगी है। पचास साल का समय जो है, वही मेरा जीवन है।
जीवन इतना ही नहीं है। क्योंकि मैं नहीं था तब भी जीवन था, मैं जब नहीं रहूंगा तब भी जीवन रहेगा। मैं जीवन में जागता हूं, जीवन में लीन हो जाता हूं। एक लहर समुद्र में उठती है, जब नहीं उठी थी तब भी समुद्र था, जब गिर जाएगी और बिखर जाएगी, तब भी समुद्र होगा। लहर का होना एक क्षण की घटना है, लहर का हो जाना एक क्षण की घटना है। सागर का होना अनंत है। हमेशा है, था, रहेगा। लहर अगर सोच ले कि मैं ही हूं, तो भूल में पड़ जाएगी। लहर सिर्फ दिखाई पड़ती है।। है नहीं। है तो समुद्र ही। लहर सिर्फ दिखाई पड़ती है, है नहीं। वह केवल अपिअरेंस है, केवल दिखाई पड़ना।। अस्तित्व नहीं।
लेकिन जब लहर उठती है आकाश की तरफ तब उसको भी लगता होगा कि मैं हूं। मैं कुछ हूं। एक क्षण लग भी नहीं पाता और... बिखराव आ जाता है, और लहर विलीन हो जाती है। दूसरी लहरें उठ आती हैं, वे लहरें विलीन हो जाती हैं। जिसमें लहरें उठती हैं और जिसमें लीन हो जाती हैं।। वह है। लहरें उठती हैं, दिखाई पड़ती हैं।। हैं नहीं। उनका होना केवल दिखाई पड़ना है। उनकी वास्तविक सत्ता उसके साथ है जो उनके पहले है, और उनके पीछे है।
मनुष्य भी समय में उठी एक लहर है। समय के अनंत सागर में उठ आई एक कंपन,
एक लहर। लेकिन मनुष्य को लगता है, मैं हूं। और यहीं वह समय में सीमा को बांध लेता है। फिर वह कहता है: मेरा जन्म, मेरी मृत्यु। और इन दोनों के बीच में वह जीवन को मान लेता है।
जन्म है लहर का उठना, मृत्यु है लहर का लीन हो जाना। जीवन नहीं है उन दोनों के बीच, जीवन उनके पार भी है। जीवन का न कोई प्रारंभ है और न कोई अंत। समय में भी, टाइम में भी यह अनंत का बोध।। धार्मिक व्यक्ति की दूसरी बाध्यता है। लेकिन यह बोध कैसे हो? कैसे हमें यह पता चले? और जिस दिन यह अनंत समय का बोध हमें होगा, उसी दिन हमें एक अदभुत अनुभव होगा, एक अदभुत अनुभव होगा। जैसे ही हमें पता चलेगा कि मैं जन्म के पहले भी था और मृत्यु के बाद भी रहूंगा, वैसे ही हमें पता चलेगा कि मैं हूं ही नहीं, कुछ और ही है क्योंकि मैं तो बनता हूं और बिखर जाता हूं। मेरे भीतर कुछ और ही है जो न बनता है न बिखरता है, जिसके आसपास मैं बनता हूं और टूट जाता हूं। लेकिन कुछ और भी है, जो न बनता है न टूटता है। लेकिन हम तो समय की रेत पर कुछ होने की कोशिश में लगे रहते हैं, अपने हस्ताक्षर करना चाहते हैं समय की रेत पर। हस्ताक्षर कर देना चाहते हैं कि ----
बच्चे जाते हैं नदी की रेत पर नाम लिख आते हैं अपना। बूढ़े उनको कहते हैं: पागलों उस पर नाम मत लिखो। नदी की रेत पर नाम लिखने से क्या फायदा है? अभी पानी आएगा, सब नाम बह जाएंगे। हवा चलेगी, रेत उड़ेगी, सब नाम साफ हो जाएंगे। लेकिन बूढ़े भी चट्टानों पर नाम लिखते हैं, मंदिरों में नाम लिखते हैं, स्मारकों पर नाम लिखते हैं और भूल जाते हैं ये कि जिसको वह पत्थर कह रहे हैं।। वह रेत ही है, कभी रेत थी, फिर रेत हो जाएगी।
बच्चे जरा सॉफ्ट मीडियम चुनते हैं।। रेत का। मनुष्य जरा हार्ड मीडियम चुनते हैं।। पत्थर का। लेकिन रेत और पत्थर एक ही चीज के दो शक्लें हैं। रेत पत्थर हो जाती है, पत्थर रेत हो जाता है। लेकिन आदमी इस कोशिश में रहता है कि समय की रेखा पर अपना नाम छोड़ जाए, बच्चों को मां-बाप सिखाते हैं, स्कूल सिखाता है।। अपना नाम छोड़ जाना। तुम्हारे पीछे तुम्हारा नाम रह जाए, ऐसे काम करना।
अहंकार के अतिरिक्त हम कु छ भी नहीं सिखाते। अहंकार क्या है? समय की रेत पर हस्ताक्षर करने की आकांक्षा। और क्या है? और क्या है कि मैं लिख

जाऊं मेरा नाम? किसी भी तरकीब से लिख जाऊं मेरा नाम, मेरा नाम मिट न जाए। हम पागल हैं, जब हम ही मिट जाते हैं तो हमारा नाम कैसे टिक सकेगा? और नाम तो एक झूठी कल्पना है। कोई जन्म के साथ नाम लेकर पैदा नहीं होता, न मृत्यु के साथ कोई नाम लेकर जाता है। नाम तो आदमियों की ईजाद है। नाम रख लेते हैं कि काम चल जाए। किसी को कहते हैं राम, किसी को कहते हैं कृष्ण।। कि नाम चल जाए।
न राम का नाम राम है, न कृष्ण का नाम कृष्ण। नाम किसी का कुछ है ही नहीं, अनाम ही पैदा होते हैं।। नेमलेस, और अनाम ही समाप्त हो जाते हैं। लेकिन नाम का मोह भारी है। जिस आदमी में नाम का मोह भारी है, वह परमात्मा से नहीं मिल सकेगा। क्योंकि परमात्मा अनाम है, उसका कोई नाम नहीं है। नाम का वह अपनी तख्तियां लेकर जो परमात्मा की तरफ जा रहे हैं, वे कहीं भी खोज लें, उन्हें परमात्मा नहीं मिलेगा। नाम की तख्ती बीच में है तो परमात्मा से मिलना नहीं हो सकता।
और नाम के हम बड़े मोही हैं। और समय में, समय की बहती धार में हमारा नाम टिका रह जाए, बचा रह जाए।। बेटे हमारे, हमारे बच्चे नाम को बचाएं; हमारे मकान, हमारी इज्जत, हमारे नाम को बचाएं; हमारे शास्त्र, हमारी किताबें, हमारे पत्थर, हमारे स्मारक हमारे नाम को बचाएं।
एक बहुत पुराने दिनों की घटना है एक सम्राट चक्रवर्ती हो गया। चक्रवर्ती वह था तो उसने सारी दुनिया जीत ली। वह अकेला विजेता हो गया। सब लोग उससे हार गए। तो चक्रवर्तियों के लिए विधान था कि वे स्वर्ग में जाकर, सुमेरु पर्वत पर हस्ताक्षर करते थे।
सुमेरु पर्वत सबसे कठोर पर्वत है। सभी को मौका नहीं मिलता उस पर हस्ताक्षर करने का, सिर्फ चक्रवर्तियों को मिलता है। वह सबसे मजबूत पाषाण है। सारे पाषाण गल जाते हैं और वह नहीं गलता। और सारे पहाड़ गिर कर गड्ढे हो जाते हैं, वह गड्ढा नहीं होता। वह देवताओं का पर्वत है, वह आदमियों का पर्वत नहीं है। देवताओं के पर्वत आदमियों से मजबूत होते हैं। देवताओं का अहंकार भी आदमियों से मजबूत होता होगा। कुछ-कुछ आदमी जो देवताओं की कोटि में ऊंचे हो जाते हैं, उनको वहां हस्ताक्षर करने का मौका मिलता है, चक्रवर्तियों को मौका मिलता है।
वही एक आदमी चक्रवर्ती हो गया। फिर वह भारी बैंड-बाजा लेकर स्वर्ग की तरफ चला दस्तखत करने के लिए, हस्ताक्षर करने के लिए। द्वारपाल ने कहा कि आप अकेले ही भीतर जा सकते हैं, ये सब लोग नहीं।
उसने कहाः फिर मजा ही क्या आया जब दूसरे लोग देखने वाले न हों।
क्योंकि नाम के हस्ताक्षर का मजा ही यह है कि दूसरे देखने वाले हों।
हालांकि खयाल रखना कि अपने नाम के हस्ताक्षर आपके अतिरिक्त कोई नहीं पढ़ता है। अपने हस्ताक्षर खुद ही आदमी पढ़ता है, दूसरा कोई... नहीं पढ़ता है।
किसको फुरसत पड़ी? अपना नाम पढ़ने से फुर्सत मिले तो किसी दूसरे का नाम कोई पढ़े।
लेकिन चक्रवर्ती उदास हो गया।
लेकिन उसने कहा कि नियम यही है और अभी आप उदास हो रहे हैं, भीतर से आप लौटेंगे तो आप कहेंगे कि नियम ठीक है।
चक्रवर्ती ने कहाः तब फिर ठीक है मैं चलता हूं। वह अपनी हथौड़ी-छेनी लेकर भीतर प्रविष्ट हुआ। महान विशाल पर्वत है, उसका कोई ओर-छोर नहीं।
वह पहरेदार उससे कहने लगा कि लेकिन एक बात आपसे निवेदन कर दूं, पहाड़
पर इतने नाम लिखे जा चुके हैं कि कोई जगह नहीं बची है। तो आपको थोड़ा किसी का नाम मिटा कर पहले, फिर नाम लिखना पड़ेगा।
उसने कहा कि पर्वत पर नाम... लिखने की जगह नहीं बची? क्या इतने चक्रवर्ती हो चुके हैं? मैं तो सोचता था यह काम मैंने ही कर लिया है।
तो पहरेदार ने कहा: सभी को यह भ्रम होता है कि यह काम मैंने ही कर लिया है, यह बात मैंने ही कह दी है, यह मकान मैंने बना लिया है, यह किताब मैंने लिख दी है, जो एक दफा हुआ है वह करोड़ दफा हो चुका है, अरब दफा हो चुका है, कुछ भी नया नहीं है। चक्रवर्ती उदास होने लगा, तो उस पहरेदार ने कहाः आप उदास न हों, मेरे पिता भी एक पहरेदार थे, उनके पिता भी एक पहरेदार थे, उनके पिता भी

एक पहरेदार थे। हमने जन्म-जन्म से यही बात सुनी है कि जब... कोई चक्रवर्ती आता है नाम मिटा कर ही दस्तखत करने पड़ते हैं।... चक्रवर्ती...
जिस जमीन पर आप रह रहे हैं आपको पता है वह जमीन कितने लोगों की कब्र बन चुकी है? आप किसी की कब्र पर रह रहे हैं। जमीन पर एक इंच जमीन ऐसी नहीं है जो मरघट न बन चुकी हो। जहां बड़ी बस्तियां दिखाई पड़ती हैं, वे कभी मरघट थे। जहां आज बड़ी बस्तियां हैं, कभी वहां मरघट हो जाएंगे। सब चीजें बनती हैं, और बिगड़ जाती हैं।
जीवन में इसका स्मरण कि समय की जो रेखा उठती है, वह उठती है और विलीन
हो जाती है। और उसके पहले भी सब, उसके बाद भी सब।। समय की दृष्टि से, टाइम की दृष्टि से अनंत का बोध। तो फिर अनंत में मैं अपने को बानने की कोशिश छोड़ देता। फिर उस अनंत में अपना हिसाब छोड़ जाने का कोई सवाल नहीं है। फिर तो अनंत में हस्ताक्षर कर जाने की कोई बात ही नहीं है। मैं एक लहर हूं, बनूंगा और विलीन हो जाऊंगा।
समय है अनंत, क्षेत्र है असीम।। दो सूत्र, और तीसरा सूत्र।। कि मनुष्य
है शून्य। क्षेत्र है असीम, समय है अनंत, और मनुष्य है शून्य। तीसरा सूत्र हैः शून्य का बोध। पहला सूत्र हैः असीम का बोध। दूसरा सूत्र हैः अनंत का बोध। तीसरा सूत्र हैः शून्य का बोध।। कि मैं नहीं हूं। और यही धार्मिकता की, रिलीजिअसनेस की गहरी से गहरी पकड़ और पहुंच है कि वह जान ले कि मैं नहीं हूं। क्योंकि जिस दिन कोई जान लेता है कि मैं नहीं हूं, उसी दिन उसे पता चलता है कि परमात्मा है।
जब तक कोई सोचता है मैं हूं, तब तक परमात्मा नहीं है। यह दोनों अनुभव
एक साथ नहीं हो सकते। या तो मैं हूं, या परमात्मा है। इसलिए अगर कोई आदमी पूछता है कि क्या परमात्मा है? तो उसे उत्तर देने की कोई जरूरत नहीं। उससे यही कहने की जरूरत है कि तुम हो, और जब तक तुम हो तब तक परमात्मा नहीं हो सकता है।
खुद को खोने का साहस ही परमात्मा को पाने का अधिकार है। खुद को पोंछ डालने, मिटा डालने का सामर्थ्य ही परमात्मा को उपलब्घ करने की पात्रता है। स्वयं में शून्य हो जाना ही पूर्ण के लिए द्वार बन जाना है। तो अंतिम सूत्र है: शून्यता का बोध।। मैं नहीं हूं। लेकिन यह बोध कैसे हो? हमें तो लगता है कि मैं हूं, मैं बहुत कुछ हूं।
हर आदमी को समबडी होने का बोध है, नोबडी होने का किसी को भी नहीं है। किसी को जरा धक्का लग जाए तो वह कहता है जानते नहीं मैं कौन हूं, आपने धक्का मारा? हर आदमी यही कहता है कि जानते नहीं मैं कौन हूं? हालांकि कोई भी खुद भी नहीं जानता है कि वह कौन है? लेकिन दूसरे को वह कहता है जानते नहीं मैं कौन हूं? उसको खुद भी पता नहीं कि वह कौन है? क्योंकि जिस दिन उसे पता चलेगा कि कौन है वह, उसी दिन उसे पता चलेगा मैं नहीं हूं।। परमात्मा है।
एक महल के पास पत्थरों का एक ढेर लगा हुआ था। कुछ बच्चे वहां जो खेलते निकल आए थे, और एक बच्चे ने एक पत्थर को उठा कर महल की तरफ फेंका। पत्थर ऊपर उठने लगा, पत्थर के पास पंख नहीं होते कि आकाश में उड़ जाए। लेकिन पत्थर, पत्थर के भी प्राणों में यह वासना तो उठती है कि कभी आकाश में उड़ूं। पत्थर भी सपने तो देखता है आकाश में उड़ने के। पक्षी शायद सपने न देखते होंगे आकाश में उड़ने के, लेकिन पत्थर जरूर सपने देखते हैं आकाश में उड़ने के। जीवन में जो नहीं मिलता उसी को तो आदमी सपने में देखता है। और सबसे बड़ा... आप सोचते होंगे कि आकाश में उड़ जाएं, पक्षी जैसे पर मिल जाएं, सूरज को छू लें। लेकिन पत्थर के पास पंख नहीं है कि आकाश में उड़ जाएं। --... एक पत्थर आकाश की तरफ उठने लगा, तो वह पत्थर फूल कर दुगना बड़ा हो गया होगा। जब आदमी तक फूल कर दुगना बड़ा हो जाता है तो पत्थर क्या! पत्थर तो हो ही जाएगा।
उस पत्थर ने नीचे पड़े हुए पत्थरों को तिरस्कार के भाव से देखा और कहा
कि मित्रों मैं आकाश की यात्रा को जा रहा हूं, और नीचे के पत्थर तिलमिला कर रह गए होंगे, ईर्ष्या से जल कर रह गए होंगे। लेकिन क्या कर सकते थे? झूठ भी नहीं कह सकते थे।

पत्थर ठीक ही कह रहा था, वह आकाश की तरफ जा रहा था।
लेकिन उस पत्थर ने एक बात बदल दी, एक छोटी सी बात, और सब बदल गया।
छोटा सा फर्क और जमीन और आसमान अलग हो जाते हैं। छोटा सा बाल भर फर्क
और सब सत्य और असत्य अलग हो जाते हैं। बाल भर फर्क और जीवन और मृत्यु अलग हो जाते हैं। और उस पत्थर ने थोड़ा सा फर्क कर दिया। वह फेंका गया था, लेकिन उसने कहा कि मैं जा रहा हूं ------। उस पत्थर को फेंका गया था, वह जा नहीं रहा था। लेकिन उसने कहा कि मैं जा रहा हूं, और इसको कोई इंकार भी नहीं कर सकता था, वह दिखाई पड़ रहा था कि जा रहा है।
वह जाकर महल की कांच की खिड़की से टकराया, कांच चकनाचूर हो गया। अब यह बिल्कुल स्वभाविक है कि कांच और पत्थर टकराए तो कांच चकनाचूर हो जाएगा। इसमें पत्थर कांच को चकनाचूर करता नहीं है, कांच चकनाचूर हो जाता है, इट जस्ट हैपंस। यह कांच का स्वभाव है कि पत्थर से टकरा कर वह चकनाचूर हो जाता है। इसमें पत्थर चकनाचूर करता नहीं है। पत्थर को कुछ भी नहीं करना पड़ता, टकराना काफी है और कांच चकनाचूर हो जाता है। यह कांच का स्वभाव है, यह पत्थर का स्वभाव है। इसमें कोई कुछ करता नहीं है यह कोई कर्म नहीं है, यह कोई कृत्य नहीं है कि पत्थर कहे।
लेकिन पत्थर ने कांच के टूटे टुकड़ों से कहा, पागलों तुम्हें पता नहीं है, मैंने कितनी बार घोषणा की है, आकाशवाणी पर खबरें नहीं सुनते हो, अखबार नहीं पढ़ते हो? कितनी बार मैंने कहा है कि मेरे रास्ते में कोई न आए, नहीं तो चकनाचूर कर दूंगा। अब भोगो अपने भाग्य को, अब पछताओ अपनी नासमझी को। मैं पत्थर हूं, कोई साधारण पत्थर नहीं, आकाश में उड़ने वाला पत्थर हूं। जो मेरे रास्ते में आता है, उसको मैं चकनाचूर कर देता हूं।
... चकनाचूर हो जाता है, कर नहीं देता पत्थर, लेकिन इतने से फर्क से सब फर्क पड़ जाता है। कांच के टुकड़े इंकार भी क्या कर सकते थे, चकनाचूर हो गए। तो पत्थर नीचे गिरा। कालीन बहुमूल्य बिछे हुए थे महल के। उस पत्थर ने हलकी ठंडी श्वास ली और उसने कहा: इस महल के लोग बड़े सज्जन, बड़े सुसंस्कृत मालूम होते हैं। ज्ञात होता है मेरे आने की खबर पहले ही पहुंच गयी, कालीन वगैरह सब बिछा रखे हैं। और महल के मालिकों को कोई पता भी नहीं था कि कोई पत्थर घर में मेहमान होने को है।
मेहमानों का किसी को भी कोई पता नहीं होता है, इसीलिए तो हम उनको अतिथि कहते हैं। अतिथि का मतलब: जो बिना तिथि की खबर दिए घर पर आ धमकते हैं। जो कोई खबर नहीं देते कि हम आ रहे हैं, इसलिए तो अतिथि कहते हैं। तो अतिथि की किसी को खबर तो होती नहीं है।
और उस पत्थर की तो किसको खबर थी। महल के लोगों को पता भी नहीं होगा कि कोई पत्थर आएगा। लेकिन पत्थर ने अपने मन में कहा कि धन्यवाद। बहुत सुसंस्कृत लोग मालूम होते हैं। मेरे स्वागत में कालीन बिछा रखे हैं। क्यों न, हों भी क्यों ना आखिर मैं कोई साधारण पत्थर तो नहीं हूं, आकाश में उड़ने वाला पत्थर हूं। वह सुस्ता रहा था, आराम करता था। और तभी महल के पहरेदार ने आवाज सुनी होगी कांच के टूट जाने की, वह भागा हुआ आया। उसको आया देख कर पत्थर ने कहा, मालूम होता है मालिक खुद स्वागत के लिए आ रहा है।
अब पत्थर क्या सोच रहा है, किसी को भी कोई पता नहीं। हर आदमी अपने मन
के भीतर क्या सोचता रहता है, यह उसको ही पता है और किसी को कुछ भी पता नहीं। नौकर ने आकर पत्थर को हाथ में उठाया फेंक देने के लिए। लेकिन पत्थर ने हाथ में आकर कहा धन्यवाद, धन्यवाद, बहुत धन्यवाद। मालूम होता है मालिक हाथ में लेकर प्रेम जता रहा है, स्वागत जता रहा है। नौकर को क्या पता पत्थर की भाषा। उसने पत्थर को वापस फेंक दिया खिड़की से।
पत्थर जब वापस गिरने लगा, तो उस पत्थर ने कहा: घर की बहुत याद आती है, मित्रों की बहुत याद आदती है, होम सिकनेस मालूम होती है। महलों में मन नहीं लगता, अपने जो झोपड़ें हैं, खुले आकाश के नीचे पड़े रहना, वहीं बहुत आनंददायक है। कहां अपनी मात्रभूमि और कहां पराए महल। होंगे तुम्हारे महल तुम्हारे काम के, लेकिन मैं जाता हूं।
वह भेजा जा रहा था, लेकिन वह कहने लगा, मैं जा रहा हूं।

तो जब वापस गिरने लगा अपनी पत्थरों के ढेरी पर, उसने कहा: मित्रों मैं वापस लौट आया हूं। मैंने न मालूम किन-किन अज्ञात देशों में यात्रा की है। जैसा कि कोई भारत में लौट आता है अमरीका से, इंग्लैंड से तो फिर चौबीस घंटे यही कहने लगता है कि मैं इंग्लैंड गया था, मैं अमरीका गया था। मैं वहां गया, मैं वहां गया। वैसे ही बेचारा वह पत्थर भी कहने लगा कि मैं बड़ी-बड़ी राजधानियों में ठहरा, बड़े-बड़े महलों में ठहरा, बड़े सम्राटों ने मेरा स्वागत किया। लेकिन फिर मेरा मन ऊब गया। होंगे महल उनके अच्छे, होंगी राजधानियां सुंदर। लेकिन कहां अपना देश, कहां अपनी मात्रभूमि।। मदरलैंड! मैं वापस लौट आया।
पत्थरों ने स्वागत किया, फूल-वूल के हार पहनाए उन्होंने। गौरव शोभायात्रा निकाली होगी, और फिर सब सभा करके उस पत्थर से कहे कि तुम अपनी आत्मकथा जरूर लिख दो, आने वाले बच्चों के काम पड़ेगी। ऐसा महापुरुष हमारे बीच कभी पैदा ही नहीं हुआ।
वह पत्थर अपनी आत्मकथा लिख रहा है। बहुत से और पत्थरों ने भी अपनी आत्मकथाएं लिखी, वह भी लिखेगा। लेकिन उसकी अहंकार की कथा को वह आत्मकथा कहेगा।
सब आत्मकथा अहंकार की कथा है। सारा भ्रांत जीवन, सारा धार्मिक जीवन अहंकार की यात्रा है। और सारी भूल इतनी सी है जितनी उस पत्थर की। उस पत्थर पर हमको हंसी आती है, लेकिन जिस दिन किसी आदमी को अपने पर हंसी आ जाती है, उसके जीवन में धर्म का प्रारंभ हो जाता है।
हम भी कहते हैं मेरा जन्म।। फेंके गए हैं हम, लेकिन कहते हैं मेरा जन्म! कोई अज्ञात हाथ फेंक देता है जीवन में, और हम कहते हैं मेरा जन्म! मेरा जन्म है। जैसे हमसे पूछा गया हो जन्म के पहले कि महानुभव, आप कहां जन्म लेना चाहते हैं, बलसार में? किसके घर जन्म लेना चाहते हैं।। हिंदू के घर, ब्राह्मण के घर, जैन के घर। किस पवित्रपुर में आपका इरादा है उतरने का।। जैसे हमसे पूछा गया हो! जैसे ये हमारा निर्णय हो, ये हमारा डिसीजन हो, ये हमारी च्वाइस हो; लेकिन हम कहते हैं मेरा जन्म!
जन्म के पहले का जरा भी पता नहीं, फिर यह जन्म मेरा कैसे हो सकता है? जिस जन्म के पहले मेरे का भी कोई बोध नहीं, वह जन्म मेरा कैसे हो सकता है? जन्म के बाद मेरा मैं पैदा होता है, तो जन्म मेरा कैसे हो सकता है? जन्म के बाद मेरे मैं का भाव आता है, तो जन्म मेरे मैं के साथ संयुक्त कैसे हो सकता है?
मेरा जन्म नहीं है यह, जीवन का जन्म है। और भ्रांति से मैं कहता हूं, मेरा जन्म है। यह अज्ञात के हाथों द्वारा फेंका गया जीवन है। यह मेरा जन्म नहीं है, लेकिन मैं कहता हूं।। मेरा बचपन, मेरी जवानी। जैसे जवानी, बचपन भी हम लाते हों। जवानी, बचपन आते हैं।
जैसे कांच टूट जाता है पत्थर से टकरा कर। जैसे पत्थर फेंका जाता था,
और कांच टूट जाता था। ऐसे ही पौधा बो दिया जाए तो बीज अंकुर बन जाता है, बीज वृक्ष बन जाता है, वृक्ष में फूल आ जाते हैं, फल आ जाते हैं। ऐसे ही आदमी पैदा होता है।। बचपन आता है, जवानी आती है, बुढ़ापा आता है। ये वृक्ष की यात्राएं हैं। इसमें मैं के, और अहंकार के खड़े होने की कोई भी जगह नहीं है। लेकिन यह तो दूर, हम तो यहां तक कहते हैं कि मैं श्वास लेता हूं।
पागल हो गया है आदमी। अगर आप श्वास लेते हैं, तब तो आप कभी मर नहीं सकेंगे। क्योंकि मौत आ जाएगी और आप श्वास लेते चले जाएंगे, तो उसे वापस लौट जाना पड़ेगा।
श्वास आप लेते नहीं हैं; श्वास आती है, जाती है। श्वास लेने वाले नहीं हैं आप। आपके बस में नहीं है कि आप श्वास ले लें। यह आपका नियंत्रण नहीं है। यह आपकी परवत्ता है कि आपको श्वास आती है और जाती है।
और जिस क्षण नहीं आएगी, उस दिन आपका कोई बस नहीं है कि आ जाए। श्वास चलती है, आप चलाते नहीं हैं। श्वास चलती है, आप चलाते नहीं हैं। आप उसके कर्ता और मालिक नहीं हैं।

सारा जीवन इस छोटी सी भ्रांति पर खड़ा होता है। जहां चीजें हो रही हैं, वहां हम सोचते हैं: मैं कर रहा हूं। बस मैं मजबूत होता चला जाता है, मैं खड़ा हो जाता है और भ्रम पैदा हो जाता है कि मैं हूं।
पहला भ्रम है कि मैं करता हूं। बार-बार दोहराने से कि मैं यह करता हूं, मैं यह करता हूं, मैं यह करता हूं। एक भीतर वहम गहरा हो जाता है कि मैं हूं। तो अगर मैं हूं के भ्रम को तोड़ना हो तो पहले मैं करता हूं, इस भ्रम को विलीन कर दें। फिर धीरे-धीरे आपको पता चलेगा कि जब मैं करता ही नहीं हूं, तो फिर मैं कहां हूं?
डू अगर जला जाए तो इगो चली जाती है, कर्ता चला जाए तो अहंकार चला जाता है। तब आप सागर की छाती पर उठी एक लहर रह जाते हैं, तब हवाओं में उड़ती हुई एक पत्ती रह जाते हैं, तब बीज से अंकुरित होते हुए एक अंकुर रह जाते हैं, तब आप जीवन के एक श्वास रह जाते हैं, तब आप जीवन के एक तरंग रह जाते हैं।। और उस तरंग के क्षण में, उस जीवन के एकाग्र के क्षण में।। उसका अनुभव हो जाता है, जिसे मैं परमात्मा कह रहा हूं।
परमात्मा का द्वार खुला हुआ है, लेकिन आप सीमा में घिरे हैं। सीमा से घिरी हुई आंखें खुले द्वार को नहीं देख सकतीं। क्योंकि सीमा से घिरी आंखें केवल दीवालों को देखने की आदी हैं। परमात्मा का द्वार खुला हुआ है। लेकिन आप समय, क्षण से घिरे हुए हैं। क्षण पर जो घिरा हुआ है वह अनंत को नहीं जान सकता। क्योंकि क्षण अनंत के प्रति घिर जाते हैं।
एक छोटी सी रेत का कण आंख में गिर जाता है तो फिर पहाड़ भी दिखाई नहीं पड़ता। और जब तक क्षण मनुष्य की आंख में पड़ा रहता है, तब तक अनंत दिखाई नहीं पड़ता। प्रभु का द्वार तो खुला हुआ है, लेकिन आप अपने "मैं" से बंधे हुए हैं। जो अपने मैं से बंधा हुआ है, वह उस खुले द्वार को नहीं देख सकता, नहीं देखना चाह सकता। क्योंकि उस द्वार को देखते ही मैं को छोड़ देना पड़ेगा। मैं का समर्पण ही, प्रभु के द्वार पर चढ़ाई गई एकमात्र पूजा, एकमात्र प्रार्थना है।
ये अंतिम तीन सूत्र, इन तीन से जो मुक्त हो जाता है, वह प्रभु के अज्ञात सागर में प्रविष्ट हो जाता है।
एक छोटी सी कहानी और अपनी चर्चा मैं पूरी कर दूं।
एक अमावस की रात थी और एक छोटे से गांव में कुछ मित्र एक मधुशाला में
गए और शराब पी कर बेहोश हो गए। फिर उन्हें खयाल आया नशे में कि चलें हम नदी पर, और नाव में यात्रा करें। फिर वे नदी पर पहुंचते हैं, फिर वे नाव में बैठते हैं, फिर उन्होंने पतवार थाम ली है और नाव खेनी शुरू कर दी। अंधेरी रात, नशे में चल पड़े किसी भी तरफ। फिर आधी रात थी तब, बीत गई रात धीरे-धीरे, सुबह होने के करीब आ गई, ठंडी हवाएं आने लगीं, उनका नशा उतरा। अंधेरा कम हुआ, सूरज करीब आने लगा, पीछे-पीछे रोशनी आने लगी। तो उनमें से एक ने कहा कि हम पता नहीं कितनी दूर निकल आए हैं? रात खतम होने को है। मित्रों, अब वापस लौट चलें। न मालूम रात में हमने कितनी यात्रा कर ली? किस दिशा में आ गए? कहां आ गए? कुछ भी पता नहीं है।
अंधेरे की यात्रा थी, बेहोशी की यात्रा थी।
तो उन्होंने कहा कि तुम्हीं नीचे उतर कर देख लो, नाव के किनारे कि हम कहां आ गए हैं? कहां हैं? तो हम वापस लौट चलें।
वह आदमी नीचे उतरा, वह नीचे उतर कर खूब हंसने लगा और उसने कहा कि मित्रों, तुम भी नीचे उतर आओ।
वे पूछने लगे कि हंसते क्यों हो?
उसने कहा: तुम भी नीचे उतर आओ। एक-एक उतरने लगे और वे हंसने लगे। फिर
सब नीचे उतर आए और सब पागलों की तरह हंसने लगे। घाट पर खड़े लोग पूछने लगे कि आपको क्या हो गया है?
तो उन्होंने कहाः हम भी बड़े पागल हैं। रात भर हमने नाव चलाई, लेकिन हम वहीं के वहीं खड़े हैं। क्या मजाक हो गया!
वे नाव की जंजीर खोलना भूल गए थे। वह जंजीर घाट से ही जुड़ी थी। रात भर पतवार चलाते रहे, और सोचते रहे कि यात्रा कर रहे हैं, यात्रा कर रहे हैं, यात्रा कर रहे हैं।

सीमा की जंजीर है, अहंकार की जंजीर है, क्षुद्र की जंजीर है। और जिसकी नांव उन जंजीरों से बंधी हैं, वह परमात्मा के अज्ञात सागर में कोई यात्रा नहीं कर सकता है। इसके पहले कि यात्रा पर निकलें, घाट पर जंजीर को देख लेना कि नांव कहीं बंधी तो नहीं है।
इन तीन दिनों में ये थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कहीं। इन बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं, और अंत में यही कामना और प्रार्थना करता हूं: प्रभु का आनंद आपको उपलब्ध हो, प्रभु की शांति आपको उपलब्ध हो, प्रभु का अमृत आपको उपलब्ध हो।
अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

धर्म की यात्रा
नौवां प्रवचन

जीवन के तथ्यों से भागें नहीं

कैसे विरोध में, कैसी जड़ता में ग्रस्त है उस संबंध में कल हमने थोड़ी
सी बातें कीं। किन कारणों से मन की, मनुष्य की, पूरी संस्कृति की ये दुविधा है उस संबंध में थोड़ा सा विचार किया। दो-तीन बातें मैंने कल आपसे कहीं। पहली बात तो मैंने आपसे ये कही कि हम जब तक भी जीवन की समस्याओं को सीधा देखने में समर्थ नहीं होंगे और निरंतर पुराने समाधानों से, पुराने समाधानों, पुराने सिद्धांतों से अपने मन को जकड़े रहेंगे, तब तक कोई हल, कोई शांति, कोई आनंद या कोई सत्य का साक्षात असंभव है।
आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति इसके पहले कि जीवन सत्य की खोज में निकले, अपने मन को समाधानों और शास्त्रों से मुक्त कर ले। उनका भार मनुष्य के चित्त को ऊर्ध्वगामी होने से रोकता है, इस संबंध में थोड़ा सा मैंने आपसे कहा। इन समाधानों से अटके रहने के कारण दुविधा पैदा होती है। और दूसरी बात हम अत्यधिक आदर्शवाद से भरे हों तो जीवन में पाखंड को जन्म मिलता है। हम वैसे दिखना और होना चाहते हैं, जैसे हम नहीं हैं। हम दूसरे लोगों का अनुसरण, दूसरे लोगों की अनुकृति बनना चाहते हैं और तब जीवन स्वयं की सृजनात्मकता, क्रिएटिविटी खो देता है। तब हम नकल होकर, कापियां होकर रह जाते हैं।
स्वभाविक रूप से कोई भी आत्मा किसी दूसरी आत्मा की नकल या अनुकृति नहीं हो सकती। प्रत्येक आत्मा के भीतर अपना अद्वितीय जीवन है, अपनी यूनीक, अपनी बेजोड़ प्रतिभा और शक्ति है; वह विकसित होनी चाहिए। उसके बाबत थोड़ी सी बात मैंने आपसे कही, और इसी संबंध में कहा कि जब तक हम अनुसरण करते हैं दूसरों के ज्ञान को, उधार ज्ञान को अपने मस्तिष्क पर लादते हैं, तब तक हमारा मन द्वंद्व शून्य नहीं होगा। ये कल मैंने आपसे कहा। इस सबको एक छोटी सी कहानी में संक्षिप्त करके मैं आज की चर्चा आपसे शुरू करूं।
मैंने सुना है एक बहुत बड़े नगर में एक फोटोग्राफर ने अपनी दुकान पर एक तख्ती लटका रखी थी। दूर एक आदिवासी राजा शहर आया, पहली बार आया। उसके मन में भी चाह उठी कि मैं भी फोटो उतरवाऊं। वह उस फोटोग्राफर के स्टूडियो पर गया। उसने वह तख्ती पढ़ी। उस तख्ती पर लिखा हुआ था... फोटो उतरवाने के दाम लिखे हुए थे। उस पर लिखा थाः जैसे आप हैं यदि वैसी ही फोटो उतरवानी है तो दस रुपये, जैसे आप चाहते हैं कि आप दूसरों को दिखाई पड़ें, अगर वैसी फोटो उतरवानी है तो पंद्रह रुपये। जैसी आप कामना करते हैं कि आपको होना चाहिए था, यानी भगवान आपको जैसा बनाता अगर वैसी फोटो उतरवानी है तो बीस रुपये। वह थोड़ा हैरान हुआ! देहात का, जंगल का सीधा-साधा राजा था। उसकी समझ में नहीं आया कि ये कैसा मामला है। उसने स्टूडियो के मालिक को पूछा कि क्या पहली फोटो के अलावा दूसरी फोटो उतरवाने लोग भी यहां आते हैं। क्या ऐसे लोग भी हैं जो दूसरी बाकी फोटो उतरवाना चाहते हों।
उस स्टूडियो के मालिक ने कहा: आप पहले आदमी हैं जो ये पूछते हैं। अब
तक पहली फोटो उतरवाने तो कोई आया ही नहीं। कोई अपने जैसा दिखना ही नहीं चाहता। उसने कहाः आप कौन सी फोटो उतरवाना चाहते हैं।
उसने कहाः क्षमा करें, मैं तो पहली फोटो उतरवाऊंगा, क्योंकि मैं अपनी फोटो उतरवाने आया हूं, किसी और की फोटो उतरवाने नहीं आया हूं।
लेकिन ये तो गांव का गंवार आदमी था। जो समझदार हैं वह कभी अपनी फोटो नहीं उतरवाते हैं।
वह महावीर की फोटो उतरवाते हैं, बुद्ध की फोटो उतरवाते हैं, कृष्ण की फोटो उतरवाते हैं, क्राइस्ट की फोटो उतरवाते हैं--अपनी फोटो नहीं उतरवाते हैं। और इसलिए दुनिया में द्वंद्व है, क्योंकि कोई आदमी अपना जैसा होने को राजी नहीं है, तैयार नहीं है। इसके लिए बहुत करेज की, बहुत साहस की जरूरत है।
राम होने की कोशिश बहुत आसान है, क्योंकि राम के नाम के साथ प्रतिष्ठा है, रिस्पेक्टिबिलिटी है। आपके खुद के नाम के साथ तो कोई प्रतिष्ठा नहीं

है। बुद्ध होने की कोशिश आसान है, बुद्ध को हजारों लोग, लाखों लोग भगवान मानते हैं।
आपका मन भी भगवान मान कर पूजे जाने को उत्सुक होता होगा।
महावीर होने की कोशिश आसान है, क्योंकि महावीर को तीर्थंकर मानने वाले लाखों लोग हैं, उनके पैरों में सिर रखते हैं, उनकी मूर्तियां और मंदिर बनाते हैं।
आपके अहंकार को भी इससे तृप्ति मिलेगी कि आप भी महावीर जैसे हो जाएं। लेकिन अपने जैसे होने का साहस बहुत कम लोगों में होता है। क्योंकि अपने जैसे होने का साहस का अर्थ है: नोबडी होने का साहस, ना कुछ होने का साहस। दूसरे की अनुकृति हमेशा आसान है। क्योंकि दूसरे की अनुकृति... हम उसी की अनुकृति होना चाहते हैं जिसके नाम के साथ प्रतिष्ठा है, यश है, पद है। फिर चाहे वह पद लौकिक हो, और चाहे वह पद पारलौकिक हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।
हमारा अहंकार हमेशा उनकी तरफ जाना चाहता है जो शिखर पर खड़े हैं, जो ऊपर ऊंचाई पर खड़े हैं। और इसलिये हम नकल में पड़ जाते हैं। सारी अनुकृति, सारी नकल, सारी फॉलोइंग, सारा अनुसरण--ये सारे दुनिया के अनुयायी, ये सारे लोग जो दूसरों जैसा होने की कोशिश में लगे हैं, ये सारे लोग अहंकारग्रस्त हैं।
और जो अहंकारग्रस्त है उसका मन शांत नहीं हो सकता, उसका मन द्वंद्व शून्य नहीं हो सकता।
इसलिए आज मैं आपसे जिस विधायक साधना के संबंध में कुछ कहने को हूं, क्योंकि कल मैंने कहा कि जो मैंने कहा: वह विध्वंसात्मक है, वह तोड़ देने के लिए है। कुछ चीजें टूट जानी चाहिए, तब कुछ चीजें निर्मित की जा सकती हैं। जब बीज को हम बोते हैं, इसके पहले कि बीज से अंकुर पैदा हो, बीज टूट जाता है और मिट्टी में मिल जाता है। अगर बीज टूटने से इंकार कर दे, अगर बीज मिटने से इंकार कर दे, तो फिर अंकुर का जन्म नहीं हो सकता। इसके पहले कि सृजन हो विध्वंस उसके पहले आता है, विध्वंस सृजन का पहला चरण है। इसलिए मैंने कल कुछ बातें कहीं, जो तोड़ देने जैसी हैं। मन से सारे आदर्श खंडित हो जाने चाहिए।
कोई भी व्यक्ति जब तक किसी दूसरे की प्रतिमा के अनुकूल अपने को बनाने
की कोशिश कर रहा है तब तक वह आत्मघाती है, वह आत्मविरोधी है। तब तक वह स्वयं की सत्ता को न तो स्वीकार करता है, न प्रेम की सत्ता की महत्ता को समझने को राजी है; न स्वयं की सत्ता को विकसित करने की तरफ उसकी कोई दृष्टि हो सकती है।
जब हम सारी प्रतिमाओं को अपने चित्त से अलग कर देते हैं। सारे आदर्शों को, सारे महापुरुषों को, सारे महात्माओं को जब हम अपने मन से अलग कर देते हैं, तब हम खाली अकेले रह जाते हैं। और तब हम दृष्टिपात कर सकते हैं उस व्यक्ति पर--जो हमारा है। उस व्यक्तित्व पर जो हमें मिला है। उस बीज पर जिसे लेकर हम जन्मे हैं। और तब हम विचार कर सकते हैं कि इस बीज के लिए क्या करें, इस बीज को कैसे विकसित करें, इस बीज को कैसे अंकुरित करें। पहली बात है इस विधायक साधना के लिए, पहली बुनियादी आधारभूत बात है,
वह यह है कि हम जानें कि हम क्या हैं? हम इस कोशिश में न पड़ें कि हमें कैसा होना चाहिए? हम जानें कि हम क्या हैं? आदर्श नहीं, तथ्य क्या हैं? हमारी एक्चुअलिटी क्या है, वस्तुतः हम क्या हैं? आत्मा और परमात्मा नहीं, वास्तविक तथ्य क्या हैं हमारे मन के? हमारे मानसिक जीवन के वास्तविक वेग क्या हैं? बहुत कठिन है।
कठिन इसलिए नहीं कि स्वयं के तथ्य को जानना कोई अपने आप में दुरूह बात है। कठिन इसलिए कि हम सब ने हजारों वर्षों से इस तरह के आदर्श मुखौटे ओढ़ रखे हैं कि अब अपनी शक्ल पहचाननी बहुत कठिन है।
कभी आपने खयाल किया, जब आप अपनी पत्नी के पास होते हैं तो आपका चेहरा क्या वही होता है, जब आप नौकर के पास होते हैं--तब होता है? फर्क हो जाता है। जब आप नौकर की तरफ आंख उठाते हैं तो वे आंखें दूसरी होती हैं, जब आप पत्नी की तरफ आंखें उठाते हैं तो वे आंखें दूसरी होती हैं, जब आप एक

भिखमंगे के बच्चे को देखते हैं तो वे आंखें दूसरी होती हैं। दिन में चौबीस घंटे गिरगिट की भांति आपके मुखौटे, आपके चेहरे, आपकी आत्मा हवा की तरह बदलती रहती है--कभी इस पर खयाल किया है, कभी इस पर विचार किया है, कभी इस पर दृष्टिपात किया है--आपका चेहरा कौन सा है? आपका ओरिजिनल फेस क्या है? आप कौन हैं? आपका तथ्य क्या है?
चौबीस घंटे बदले जा रहे हैं, चौबीस घंटे! दफ्तर में मालिक के पास होते हैं, बॉस के पास होते हैं तो आपका चेहरा कुछ और है; चपरासी के साथ खड़े होते हैं, आपका चेहरा कुछ और है; मित्र के साथ खड़े होते हैं, चेहरा कुछ और है; अपरिचित के साथ खड़े होते हैं, चेहरा कुछ और है! अगर आपको पता है आपका असली चेहरा कौन सा है... चौबीस घंटे जो आदमी चेहरे बदलता रहता है, वह धीरे-धीरे भूल जाता है उसका तथ्य क्या है, उसकी एक्चुअलिटी क्या है?
मैंने सुना एक महिला एक खजांची से कुछ रुपये भुनाने गई थी खजाने में।
उस खजांची ने उसको कहा कि मैं ये कैसे मानूं कि आप आप ही हैं।
वह किसी तरह की साक्षी और गवाही चाहता था।
उसने पूछा कि मैं कैसे मानूं कि आप आप ही हैं। उस महिला ने जल्दी से अपने वेनिटी बैग से अपना आईना निकाला, अपना चेहरा देखा और कहा: मानिए मैं, मैं ही हूं। उसने कहाः मान लीजिए मैं, मैं ही हूं।
पर उसके पहले उसने आईना निकाल कर अपना चेहरा देख लिया।
अगर आईने न हों तो हमें अपने आपको पहचानना कठिन हो जाएगा। क्योंकि हमें अपनी मौलिक प्रतिभा का, अपनी मौलिक क्षमता का वह जो हममें जन्मजात तथ्य हैं, उसका हमें कोई पता नहीं रहा। हमने खूब वस्त्र ओढ़ लिए हैं और हम उन वस्त्रों में इस भांति भूल गए हैं, ये आश्चर्यजनक है।
मनुष्य वस्त्रों में खो जाता है, और हम वस्त्रों में खो गए हैं। जब आप प्रेम प्रकट कर रहे होते हैं तब क्या कभी आपने गौर किया, कभी देखा कि वह प्रेम आपके भीतर है, या कि आपके शब्दों में है। और वे शब्द उन किताबों से लिए गए हैं जिनमें प्रेम की बातें कही गई हैं। जब आप प्रेम करते हैं तो प्रेम आपके भीतर है या कि आप प्रेम का दिखावा कर रहे हैं। जब आप भले आदमी का दिखावा करते हैं तो भला आदमी आपके भीतर है, या आप अभिनय कर रहे हैं। हम चौबीस घंटे एक्टिंग्स में लगे हुए हैं। न मालूम किस-किस तरह की एक्टिंग्स हैं जो हम कर रहे हैं, और धीरे-धीरे इसमें हमारा तथ्य खो हो गया है।
और ये एक्टिंग हम क्यों करना चाहते हैं, कौन सा कारण है? वह मैंने कल आपसे कहा: आदर और अनुकरण। शिक्षा और यह दिखावट कि दूसरे जैसे हो जाओ। हमने बहुत अच्छे-अच्छे चेहरे ओढ़ रखे हैं, इसलिए अपने तथ्य को जानना असंभव हो गया है।
स्मरण रखें, जो अपने तथ्य को जैसा वह है--नग्न। वस्तुतः जब तक कोई व्यक्ति अपने उस तथ्य को नहीं जानेगा, तब तक उसके जीवन में कोई बुनियादी क्रांति नहीं हो सकती। क्योंकि जो स्वयं को पहचानता ही नहीं, वह स्वयं को बदलेगा कैसे? उसमें कोई बदलाहट कैसे होगी?
हम सब अपने को बदलना चाहते हैं लेकिन अपने को जानना नहीं चाहते।
आप महावीर बनना चाहते हैं, बुद्ध बनना चाहते हैं, क्राइस्ट बनना चाहते हैं, लेकिन आप अपने को जानना नहीं चाहते। जानने में तो दुख होगा, पीड़ा होगी, तप होगा। क्योंकि खुद को जानना कठिन और दुरूह इसलिए है कि हम दूसरों को धोखा देते-देते अपने को भी धोखा दे दिए हैं। और आज अपनी पर्तें उघाड़ना और अपने घाव देखना और अपने भीतर छिपे हुए पशुओं को पहचानना; हमारे अहंकार को अपनी ही आंखों में गिराना होगा, खुद ही खंडित करना होगा। हमने खुद अपनी जो तसवीर बना ली है--बहुत सुंदर। जब हम भीतर झांकेंगे तो बहुत कुरूप व्यक्ति को वहां पाएंगे। और तब परिणाम क्या होता है? जब-जब हमें अपने भीतर कुरूपता दिखाई पड़ती है, जब-जब अपने भीतर कोई असुंदर तत्व दिखाई पड़ता है, तभी हम क्या करते हैं? तब हम ये करते हैं कि उस असुंदर को सुंदर से ढांकने की कोशिश करते हैं।
मैं एक गांव में गया। एक घर में मैं ठहरा। उस घर में बहुत गंदगी थी। जिस कमरे में मुझे ठहराया उसमें बड़ी दुर्गंध थी, तो उन्होंने बहुत इत्र वहां छिड़क दिया, खूब फूल लाकर लगा दिए। जब मैं पहुंचा तो वहां इत्र ही इत्र

था। जरूर, मुझे शक हो गया कि जब इतना इत्र छिड़का है, यहां जरूर कुछ बदबू होनी चाहिए। नहीं तो कौन इत्र छिड़कता है, इतने इत्र छिड़कने की जरूरत क्या है? जरूर यहां कुछ बदबू होनी चाहिए। थोड़ी देर में इत्र तो उड़ गया। रात जब मैं सोया तब तो इत्र था, जब सुबह उठा तो बदबू थी। उस बदबू को छिपाने के लिए इत्र छिड़क दिया।
जो आदमी जितना कुरूप होता है, उतना सुंदर वस्त्रों में अपने को ढांपने की कोशिश में लग जाता है। जो आदमी जितना कुरूप होता है उतने सुन्दर होने की, सारे के सारे आयोजन, सारे प्रसाधन खोजने लगता है। ये सारी खोज इसी चीज को ढांकने के लिए होती है।
संसार में हम अपने को ढांकते हैं, लेकिन परमात्मा की तरफ जिसको जाना
है उसे अपने को उघाड़ना पड़ता है--ढांकना नहीं पड़ता। क्योंकि मैं कितने ही वस्त्र पहन लूं मेरी नग्नता आपसे छिप जाएगी, लेकिन स्वयं मेरी आत्मा के समक्ष मेरी नग्नता कैसे छिप जाएगी? और जो मेरी आत्मा के समक्ष छिपनी असंभव है, वह परमात्मा के समक्ष भी कैसे छिप सकती है? वहां तो मैं जो हूं, जैसा हूं, वैसा ही हूं--वहां कोई भेद नहीं पड़ सकता।
तथ्य इसलिए जानने जरूरी हैं। लेकिन हम तथ्यों से भागते हैं, हम एस्केप करते हैं। अगर आपको लगता है कि मेरा मन बहुत लोभी है, तो आप क्या करते हैं? आप एक मंदिर बनवाने लगते हैं ताकि, ताकि मैं समझा सकूं अपने को कि नहीं, मैं लोभी कहां हूं। देखिए, इतना बड़ा मंदिर बनाया।
एक मंदिर बन रहा था मेरे गांव में। नया मंदिर बन रहा था, तो मुझे हैरानी हुई! क्योंकि लोग तो घटते जाते हैं धर्म को मानने वाले, लेकिन नये मंदिर क्यों बनते जाते हैं? मंदिर पुराने बहुत हैं, उनमें कोई जाने वाला नहीं है। लेकिन नये मंदिर रोज बनते जाते हैं तो मैं हैरान था! रोज वहां से निकलता था तो मेरे मन में समझ नहीं आता था कि नया मंदिर क्यों बन रहा है। तो मैंने एक बूढ़े कारीगर को पूछा कि नया मंदिर क्यों बन रहा है, तुमने बहुत मंदिर बनाए हैं, तुम्हें जरूर पता होगा।
अदभुत वह कारीगर रहा होगा, उसने मुझसे कहा कि मेरे साथ पीछे आओ। पीछे गया तो वहां पत्थर पर खुदाई हो रही थी, मूर्तियां बन रही थीं। मैंने सोचा कि शायद वह कहेगा कि इन मूर्तियों के लिए मंदिर बन रहा है। फिर मैंने कहा: ये तो कोई उत्तर न होगा। क्योंकि तब सवाल यह होगा कि ये मूर्तियां क्यों बन रही हैं? पुरानी मूर्तियां तो काफी हैं। उनको पूजने वाला कोई नहीं, उनको देखने वाला कोई नहीं, फिर नई मूर्तियों को बनाने की जरूरत क्या है? लेकिन वह बूढ़ा कारीगर बहुत होशियार रहा होगा। बड़ी गहरी उसकी दृष्ट रही होगी। उसने मुझे ये नहीं कहा कि मूर्तियों के लिए मंदिर बन रहा है। वह मुझे और पीछे ले गया, और वहां एक पत्थर पर कुछ कारीगर काम करते थे। उसने कहाः इस पत्थर के लिए मंदिर बन रहा है। मैंने गौर से देखा, उस पत्थर पर मंदिर के बनाने वाले का नाम लिखा जा रहा था।
और सब मंदिर इसी के लिए बने हैं। वह उन भगवानों के मंदिर नहीं है जिनकी मूर्तियां भीतर हैं, वह झूठी बात है। वह उन पत्थरों के मंदिर हैं, जो बाहर लगे हुए हैं, वह उन नामों के लिए बने हैं। और ये लोक का हिस्सा है, ये लोक ही का हिस्सा है।
वह यहां नहीं, उस लोक के लिये भी इनवेस्टमेंट करना चाहता है। उस परलोक
के लिए भी कि मैंने एक मंदिर बनवाया था। वह भगवान से कहेगा कि याद रखो-- मैंने एक मंदिर बनवाया था।
मैंने सुना है, एक बार एक बहुत बड़े धनपति की मृत्यु हुई। वह गया... काल्पनिक कथा होगी। वह स्वर्ग में गया। उसने जाकर जोर से दरवाजे हड़बड़ाए। उसे बहुत आश्चर्य हुआ कि इतना बड़ा आदमी मरे और दरवाजा बंद है। पहले से ही खोल कर रखने चाहिए थे। सारे जमीन के अखबारों में खबरें छप गई थीं। क्या भगवान तक अभी तक कोई खबर नहीं आई! उसने जोर से दरवाजा हड़बड़ाया।
गरीब आदमी धीरे-धीरे खटखटाता है। बड़ा आदमी कोई धीरे खटखटाता है! जोर
से दरवाजे को धक्का दिया, भगवान भी भीतर डर गए होंगे!
दरवाजा उठ कर भगवान ने खोला और पूछा, कहिए।

उसने कहाः कहिए क्या? क्या पता नहीं चला आपको कि मैं मर गया हूं। इधर खबर नहीं आई, यहां कौन सा अखबार आता है। सभी अखबारों में करीब-करीब खबर छपी है, और सभी के पहले पृष्ठ पर छपी है।
कहा: ये तो मैं समझा लेकिन आपका प्रयोजन क्या है? क्या चाहते हैं?
उसने कहा: मैं स्वर्ग चाहता हूं और उसने अपने खींसे से नोटों का बंडल निकाला। वह साथ लेता आया था। उसने सोचा दुनिया में जो आदतें काम करती हैं, यहां फिर भगवान भी क्या दूसरे ढंग का होगा। उसने भगवान के हाथों में रुपये थमा देता है।
भगवान ने कहा कि क्षमा करें। शायद आपको पता नहीं कि आपकी दुनिया के सिक्के यहां नहीं चलते, रुपये बेकार हैं। वहां के कोई सिक्के यहां नहीं चलते हैं।
फिर भी उसने कहा कि... तब तो वह एकदम से फीका पड़ा गया। तब तो वह ताकत चली गई। जो दरवाजे को जोर से भिड़ाते वक्त थी। वह ताकत एकदम ढ़ीली हो गई। क्योंकि ताकत तो उन नोटों की थी, जो चलते तो ताकत थी, नहीं चलते तो बेकार हो गई। फिर भी उसने कहा कि मैं स्वर्ग में रहना चाहता हूं।
भगवान ने अपने कारीगरों, अपने काम करने वालों को दफ्तर में पूछा होगा, इसके नाम कुछ है स्वर्ग में रहने लायक। उससे खुद पूछा: तुमने कभी कुछ किया है।
उसने कहा: हां, मैंने एक दफा एक बूढ़ी औरत को पंद्रह नये पैसे दिए थे।
पूछा, कि देखो भई ये सच बोलता है क्या? देखा तो बात सच थी, उसने पंद्रह पैसे दिए थे। तो और भी तुम्हें कुछ याद आता है।
उसने कहाः एक दफा मैंने एक विद्यार्थी को भी पांच नये पैसे की सहायता
की थी। वह भी सच पाया गया।
और कुछ याद आता हो।
उसने कहाः और तो मुझे कुछ याद आता नहीं।
असल में उसने और कभी कुछ किया नहीं था।
भगवान ने अपने सलाहकारों को पूछा: इस आदमी के साथ क्या किया जाए? उन्होंने कहा: ऐसा है इसके पंद्रह पैसे वापस कर दिए जाएं। क्योंकि पंद्रह पैसे में स्वर्ग बहुत सस्ता है।
मैं आपसे कहता हूं: पंद्रह पैसे में अगर स्वर्ग सस्ता है। तो पंद्रह लाख में भी स्वर्ग सस्ता है, पंद्रह करोड़ में भी स्वर्ग सस्ता है, और कितने ही मंदिर बनाएं, मंदिर बनाने से स्वर्ग नहीं मिल सकता। न परमात्मा की कोई अनुभूति हो सकती है, न कोई शांति मिल सकती है। क्योंकि किसलिए आप बनाते हैं! यह रुग्ण-चित्त अपने को धोखा देने के बहुत उपाय करता है, बहुत उपाय करता है।
एक आदमी को क्रोध मालूम होता है, क्रोध पीड़ा देता है और शास्त्र कहते हैं--कि क्रोधी नरक जाएगा, वहां अग्नि में जलाया जाएगा और गर्म कढ़ाहो में खौलाया जाएगा। चित्त डरता है, घबड़ाता है, कमजोर आदमी है। क्षमा करने की योजना बना लेता है। क्षमा करूं, किसी को क्रोध न करूं।
लेकिन जो चित्त क्रोधी है, वह क्षमा कैसे करेगा? यह बुनियादी सवाल विचार करने जैसा है। इस पर बहुत गंभीरता से विचार करने जैसा है। क्योंकि पूरे जीवन की प्रक्रिया इस पर निर्भर करेगी। एक लोभी व्यक्ति त्याग कैसे कर सकता है? ये तो दोनों बातें विरोधी हैं। एक अहंकारी व्यक्ति विनीत कैसे हो सकता है? ये तो विरोधी बात है। एक क्रोध से भरा हुआ व्यक्ति प्रेमपूर्ण कैसे हो सकता है? या घृणा से भरा हुआ व्यक्ति प्रेमपूर्ण कैसे हो सकता है? या हिंसा से भरा हुआ चित्त अहिंसक कैसे हो सकता है?
अहिंसक नहीं हो सकता लेकिन तब वह अहिंसक होने के धोखे ईजाद कर सकता है। वह रात पानी छान कर पी सकता है। वह कुछ-कुछ चीजें खाने की छोड़ सकता है, और तब वह ये अपनों को वहम पैदा कर सकता है कि मैं अहिंसक हो गया। अहिंसक होना इतनी सस्ती बात नहीं है। पंद्रह नये पैसे में स्वर्ग नहीं मिल सकता और न अहिंसा मिल सकती है। अहिंसक होना तो पूरी आत्मक्रांति है। लेकिन वह कैसे होगा? जब तक हमारा चित्त क्रोध से भरा है, हिंसा से भरा है, घृणा से भरा है--हम अहिंसक कैसे होंगे? लेकिन ये क्रोधी हिंसक चित्त अहिंसक होना

चाहता है। तब ये कोई तरकीब ऊपर से ढांक लेता है। भीतर हिंसा ---- है ऊपर से अहिंसा का वेश अख्तियार कर लेता है। ज्यादा गहरी नहीं है इसकी अहिंसा, स्किन डीप भी नहीं है। जरा सा इसको उकसा दें, इसकी हिंसा बाहर आ जाएगी। अभी हिंदुस्तान में हमला हुआ दूसरे मुल्कों का। इस मुल्क के सब अहिंसक एकदम हवा हो गए। यहां मुल्क के साधु भी युद्ध की भाषा बोलने लगे। वे भी बोले कि अब तो अहिंसा की रक्षा के लिए हिंसा की जरूरत है।
कैसा पागलपन का मामला है! एक आदमी कहे कि सत्य की रक्षा के लिए अब तो झूठ बोलने की आवश्यकता है तो रक्षा किसकी होगी? एक आदमी कहे अहिंसा की रक्षा के लिए अब तो हिंसा की जरूरत है तो रक्षा किसकी होगी? एक आदमी कहे कि भगवान की रक्षा के लिए अब तो शैतान के मंदिर बनाने की जरूरत है तो रक्षा किसकी होगी? लेकिन इस मुल्क को, जिनको हम कहते हैं--अहिंसक। उनकी अहिंसा भी दो क्षण में उखड़ गई। अखड़ गईं क्योंकि वह बहुत पतली है, ऊ पर छाई हुई है। भीतर तो कोई अहिंसा नहीं है, हो भी नहीं सकती।
हिंसक मनुष्य, हिंसक चित्त, कभी भी अहिंसक कैसे हो सकता है। वह अहिंसा
को थोप लेगा। क--... कर लेगा, लेकिन उससे क्या होगा? एक जिस व्यक्ति के भीतर कामुकता है, सेक्सुअलिटी है वह अगर ऊपर से ब्रह्मचर्य को ओढ़ ले तो क्या होगा? सेक्सुअलिटी नष्ट हो जाएगी। नहीं; उसकी अंतर धाराएं प्रविष्ट हो जाएंगी। ऊपर ब्रह्मचर्य की बातें होंगी, भीतर सेक्सुअलिटी, भीतर कामुकता--गहरी होकर घूमने लगेगी।
एक साध्वी से मैं बातें कर रहा था। समुद्र के किनारे थे, जोर की हवा चलती थी, मेरा कोई कुसूर भी नहीं था। हवाएं मेरी चद्दर को उड़ाने लगीं। वह साध्वी को छू गया। साध्वी को छू गया तो जैसे उनके प्राण कंप गए। उनका साहस मुझसे कुछ कहने का नहीं हुआ, लेकिन उनके अनुयायी भी साथ थे। उनकी बरदाश्त के बाहर हो गया। उन्होंने मुझसे कहाः देखिए, आप अपनी चद्दर को रोकिए। साध्वी को पुरुष का कपड़ा छू रहा है।
वह साध्वी मुझसे आत्मा की, परमात्मा की बातें कर रही थी, मोक्ष की बातें कर रही थी, ध्यान की, समाधि की बातें कर रही थी। मेरे चद्दर के छूते ही सारा ध्यान, सारा मोक्ष, सारी आत्मा-परमात्मा विलीन हो गई। पुरुष का चद्दर छू गया। मैं हैरान हुआ! मैंने कहा: चद्दर केवल चद्दर है, पुरुष और स्त्री का कैसे हो सकता है।
लेकिन पुरुष का चद्दर छूने से अगर भीतर घबड़ाहट पैदा हो जाए। ये किस बात की खबर है? ये इस बात की खबर है कि सेक्स को दबाया गया है। इतना दबाया गया है कि सारे चित्त में सेक्सुअलिटी भर गई है, सारे चित्त में कामुकता भर गई। अब ये चद्दर भी कामुकता का प्रतीक अंग और चिह्न हो गया। इसको छू लेने से भी भीतर कुछ कंपन होने लगा।
ब्रह्मचर्य का अर्थ है, ब्रह्मचर्य का अर्थ है: चित्त की सारी कामुकता का प्रेम में परिवर्तन। लेकिन कोई भी सेक्सुअल माइंड, जहां सेक्स काम कर रहा है--जोर से, जबरदस्ती ऊपर से बह्मचर्य को थोपेगा, तो और सेक्सफुल होता चला जाएगा, और सेक्सुअल होता चला जाएगा। कोई भी चीज दमन से नष्ट नहीं होती है। लेकिन हम क्या करें? क्या रास्ता है फिर आदमी के सामने?
जब उसको क्रोध मालूम होता है तो वह क्षमा के शास्त्र पढ़ता है, क्षमा
की बातें सीखता है। जब उसको लोभ मालूम होता है तो वह त्याग की बातें सीखता है, त्याग की कोशिश करता है, मंदिर बनवाता है। जब उसको सेक्स पीड़ित करता है, कामवासना पीड़ित करती है तो फिर वह--ब्रह्मचर्य ही जीवन है--ऐसी किताबों को पढ़ता है, अध्ययन करता है। साधु-संन्यासियों का सत्संग करता है। फिर वह ब्रह्मचारी होने की कोशिश करता है।
लेकिन सेक्सुअल माइंड ब्रह्मचारी कैसे हो सकता है? तब तो आप कहेंगे
कि अगर मैं ये कह रहा हूं, तब तो फिर कोई रास्ता नहीं है। निश्चित रास्ता है, लेकिन रास्ता यह नहीं है, रास्ता कुछ और है। और उसकी मैं आपसे बात कहना चाहता हूं।
जो व्यक्ति अपने जीवन के तथ्यों में कोई क्रांति लाना चाहता है, पहली बुनियादी बात है--उन तथ्यों से भागे नहीं। क्योंकि भागता है कमजोर और

बदलाहट के लिए चाहिए ताकतवर। भागता है कमजोर, कायर, और बदलाहट के लिए चाहिए ताकतवर। तो अगर आप अपने जीवन के तथ्यों से भागते हैं, एस्केप करते हैं, यहां-वहां तरंग रहते हैं। किसी आदत में, किसी नीतिशास्त्र में, किसी धर्मशास्त्र में जाकर अपने सिर को छुपाते हैं... जैसे शुतुरमुर्ग होता है रेगिस्तान में। कोई दुश्मन आ जाता है उस पक्षी का, तो जल्दी से अपना सिर रेत में खपा कर खड़ा हो जाता है। जब सिर रेत में खप जाता है दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता। तर्क सीधा है, जब दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता--तो है ही नहीं। लेकिन दुश्मन न दिखाई पड़ने से नष्ट नहीं होता, बल्कि जब दुश्मन आपको नहीं दिखाई पड़ता, तभी खतरा शुरू होता है। क्योंकि तब दुश्मन के हाथ में आप हो जाते हैं। तब कोई बचाव का रास्ता नहीं रह जाता। लेकिन हम भी शुतुरमुर्ग जैसा ही काम करते हैं। जब भी भीतर कोई, कोई बात दिखाई पड़ती है जो हमें परेशान करती है जल्द ही उसके विरोध में सिर खपा कर खड़े हो जाते हैं। सेक्स दिखाई पड़ता है तो जाकर ब्रह्मचर्य की कसमें लेने लगते हैं।
पागल हुए हैं; कहीं कसमों से ब्रह्मचर्य दुनिया में हुआ है, और कसम लेने का मतलब क्या है, व्रत लेने का मतलब क्या है? एक आदमी कसम खाता है कि अब तो मैं ब्रह्मचर्य से रहूंगा। इसका मतलब क्या है? इसका मतलब उसके भीतर सेक्सुअलिटी धक्के दे रही है, उसके खिलाफ वह कसम खा रहा है? नहीं तो कसम क्यों खाता। कोई जो आदमी सच बोलता है, क्या कभी कसम खाएगा कि मैं सदा सच बोलूंगा? नहीं खाएगा। क्योंकि वह कहेगा, मैं झूठ बोलता ही नहीं, कसम का कोई सवाल नहीं।
व्रत केवल वे लेते हैं जिनके भीतर विरोधी तत्व धक्के मार रहा है। उसके विरोध में ताकत पैदा करने को, अपनी शक्ति इकट्ठी करने को, समाज का सहारा लेने को हजार आदमियों के सामने वे कहते हैं--मैं ब्रह्मचर्य की कसम खाता हूं--ताकि अब यह उनके अहंकार का हिस्सा हो जाए कि मैंने ब्रह्मचर्य की कसम खाई। हजार लोगों के सामने अब कहीं वह टूट न जाए, इस अहंकार को वे खड़ा करते हैं सेक्स के खिलाफ। तब लड़ाई शुरू हो जाती है, उनके दोनों हाथ लड़ने लगते हैं। यहां अहंकार व्रत को सम्हालने की कोशिश करता है; वहां प्रकृति सेक्स के धक्के देती है। और तब उनका चित्त द्वंद्व में भरता चला जाता है और टूटता चला जाता है। कोई, कोई ताकतवर व्यक्ति भागता नहीं है--देखता है। तो मेरा पहला जो निवेदन है: विधायक जीवन परिवर्तन की ओर--वह यह है-- तथ्यों से भागें नहीं। लेकिन तथ्यों से आप तब तक भागते ही रहेंगे, जब तक तथ्यों का कंडेमनेशन आपके मन में है। जब तक आप उनकी निंदा करते हैं, जब तक आप कहते हैं: क्रोध बुरा है, तो फिर आप भागेंगे। जब तक आप कहते हैं: सेक्स बुरा है, तो आप भागेंगे। जब तक आप कहते हैं: कि फलां चीज बुरी है, तो फिर उससे आप भागेंगे। पहली बात है जीवन के तथ्यों को... जीवन के तथ्य न तो बुरे हैं, और न भले हैं; जीवन के तथ्य, बस तथ्य हैं। जीवन के तथ्य न बुरे हैं, और न भले हैं; जीवन के तथ्य, बस तथ्य हैं। आपको दो आंखें मिली हैं--न तो ये बुरा है और न ये भला है। ये गिविन फैक्ट है।
ऐसे ही आपको सेक्स मिला है, क्रोध मिला है, लोभ मिला है, अहंकार मिला है--ये भी जीवन के तथ्य हैं। जैसे आपको शरीर की हड्डियां मिली हैं, चमड़ा मिला है, मांस मिला है--ऐसे ही ये तत्व भी मिले हैं। इनको सिर्फ जानें कि ये तथ्य हैं। इनके प्रति अच्छे और बुरे का भाव लेना; फिर लड़ाई शुरू हो गई, भागना शुरू हो गया।
पहली बात है जीवन के तथ्यों को बहुत सहजता से, बिना किसी कंडेमनेशन के, बिना किसी निंदा के, बिना किसी स्तुति के, बिना किसी प्रशंसा के स्वीकार करना--देखना। दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक तो वे लोग हैं जो कहेंगे--सेक्स ही जीवन है। उन्होंने उस तथ्य की प्रशंसा में अपने मन को जोड़ दिया। एक वे लोग हैं जो कहेंगे--सेक्स, यह तो मृत्यु है। उन्होंने उसके विरोध में, निंदा में अपने को संलग्न कर लिया। ये दोनों व्यक्ति उलझ गए। एक तीसरा व्यक्ति है--जिसके होने की मैं आपसे प्रार्थना करता हूं।
वह तीसरा व्यक्ति न तो सेक्स को जीवन मानता है और न मृत्यु मानता है, न
तो अमृत मानता है और न जहर मानता है। वह मानता है सेक्स है--ये तथ्य है। इस तथ्य को मैं जानूं, ये क्या है, क्यों है, इसे पहचानूं। इसकी पूरी शक्ति के

भीतर प्रविष्ट हो जाऊं, इसकी सारी परतों को खोदूं, इसकी जड़ों तक जाऊं, इससे परिचित तो हो जाऊं--ये क्या है? तो पहली बात है: मन के तथ्यों को, तथ्यों की भांति जानें। तटस्थ भाव से जानें, उनकी निंदा में या स्तुति में संलग्न न हो जाएं--वे दोनों रास्ते गलत हैं। बीच में ठहरें, इसको मैं संयम कहता हूं। बीच में ठहरने को मैं संयम कहता हूं। ये दोनों असंयम हैं। भोगी--एक तरह का असंयमी है, साधु--दूसरी तरह का असंयमी है। एक, एक अति पर चला गया है; दूसरा, दूसरी इक्सट्रीम पर चला गया है। जो मध्य में ठहरता है--वह संयमी है, वह ज्ञानी है। रुकें और अपने मन के सारे तथ्यों को जानें, पहचानें--क्या है? घबड़ाएं न, घबड़ाहट इसलिए पैदा होती है कि हजारों साल से उनकी निंदा की
गई है। निंदा हमारे मन में बैठी है। जब हम देखते हैं अपने भीतर कि क्रोध है मेरे भीतर, अहंकार है हमारे भीतर; तो हम सोचते हैं, हम क्या करें? इस अहंकार से छूटने के लिए, मैं क्या करूं? हम पूछते हैं, अहंकार से बचने के लिए मैं क्या करूं?
कोई कहता है कि घर-द्वार छोड़ दो, कोई कहता है सम्पत्ति छोड़ दो, कोई कहता है कि वस्त्र छोड़ दो, कोई कहता है कि सब छोड़ दो, पद-प्रतिष्ठा छोड़ दो-- तो अहंकार चला जाएगा।
सब छोड़ दें--अहंकार कहीं भी नहीं जाएगा। अहंकार वहीं के वहीं बना रहेगा। वह नई शक्ल ले लेगा। वह तपस्वी का अहंकार बन जाएगा, त्यागी का अहंकार बन जाएगा। वह कहेगा मैं संन्यासी हूं और मेरे मुकाबले और कोई संन्यासी नहीं। वह नए किस्म का अहंकार बन जाएगा। अहंकार ऐसे जा नहीं सकता।
अहंकार को जानना होगा। काम को, क्रोध को, मोह को, लोभ को जानना होगा-- बड़ी सरलता से। वे हमारे जीवन के तथ्य हैं, जीवन की शक्तियां हैं, हम उन्हें जानें। और ये बड़े आश्चर्य की बात है, अगर आप किसी तथ्य के प्रति मात्र सजग होकर उसे खोजें, इस सजगता, इस अवेयरनेस, इस होश के कारण ही उस तथ्य में परिवर्तन शुरू हो जाते हैं। आपको कुछ करना नहीं होता।
अगर एक व्यक्ति चोर है, और वह इस तथ्य को खोजे ठीक से, कि क्या मैं चोर हूं। न तो इसकी बुराई करे, न इसकी भलाई करे। इस तथ्य को जाने, इससे भागे नहीं। इसको बदलने की कोई फिकर न करे। इस तथ्य को पूरा खोजे और समझ ले कि मैं चोर हूं--बिना किसी विरोध के। और फिर देखे क्या होता है!
अगर ये बोध उसे पक्का हो जाए कि मैं चोर हूं, स्पष्ट हो जाए--बस तो ये बोध ही परिवर्तन लाना शुरू कर देगा, ये ट्रांसफॉर्मेशन शुरू हो जाएगा। क्योंकि कोई भी मनुष्य सचेतन रूप से जब जान लेता है--मैं चोर हूं, तो उसकी पूरी आत्मा इस तथ्य को बदलने, इस क्रूर तथ्य को बदलने में संलग्न हो जाती है। उसे खुद कुछ कॉन्सशली नहीं करना होता। उसका अनकॉन्सश माइंड, उसकी अचेतन आत्मा सारी चीजों को बदलने में संलग्न हो जाती है।
लेकिन हम इस तथ्य को स्वीकार नहीं करना चाहते तो इससे बचने की तरकीब
हम क्या निकालते हैं? हम ये निकालते हैं कि कौन कहता है कि मैं चोर हूं? हम चोर नहीं हैं, हम तो मंदिर बनवाएं हैं। हम कैसे चोर हो सकते हैं? हम चोर नहीं, हम तो रोज सुबह मंदिर जाते हैं, हम कैसे चोर हो सकते हैं? हम चोर नहीं, हम तो रोज टीका लगाते हैं, जनेऊ पहनते हैं। हम कैसे चोर हो सकते हैं? जीवन के तथ्यों से बचने के लिए हम उपाय खोजते हैं। पापी तीर्थयात्रा करते हैं, पापी रोज मंदिर जाते हैं--क्यों? ताकि हम कह सकें कि कौन कहता है कि हम चोर हैं? रोज सुबह मंदिर जाने वाला कहीं चोर हो सकता है? तीर्थयात्रा करने वाला कहीं चोर हो सकता है? लेकिन चोरों के सिवाय कब कौन मंदिर गया है, कब किसने तीर्थ किया है?
जिस आदमी का मन चोरी से मुक्त हो गया, पाप से मुक्त हो गया, वह तीर्थ जाएगा! तीर्थ उसके हृदय में आ जाते हैं। वह मंदिर जाएगा! भगवान उसके पास आ जाते हैं। वह जहां है, वहां मंदिर है; वह जहां है, वहां तीर्थ है। लेकिन हम तथ्यों से भागते हैं। मैं कहता हूं: तथ्य की स्वीकृति।
एक छोटी सी कहानी कहूं: उससे समझ में आए।
बहुत पुराने दिनों की बात है एक ऋषि हुए गौतम। वे अपने झोपड़े में बैठे थे, तभी एक युवक आया। बड़ा सुंदर स्वस्थ युवक था। उस युवक ने आकर ऋषि गौतम

को कहा कि मैं भी आपके आश्रम में सम्मिलित होना चाहता। मैं भी ज्ञान का प्यासा हूं। मुझे भी सत्य की खोज है। मैं भी ब्रह्म को जानना चाहता हूं। क्या मुझे स्वीकार करेंगे?
गौतम ने कहाः तेरा गोत्र क्या है? तेरे पिता का नाम क्या है?
उस युवक ने कहाः मैंने अपनी मां से पूछा था। लेकिन मेरी मां ने कहा कि उसे मेरे पिता का कोई पता नहीं। उसे मेरे गोत्र का भी कोई पता नहीं। क्योंकि उसने मुझे कहा कि जब वह युवा थी तो वह बहुत से शिष्टजनों में रमती थी, और उन्हें रमाती थी; उन्हें प्रसन्न करती थी, उन्हें आनंद देती थी। इसलिए पिता का कोई भी पता नहीं। मैं किससे पैदा हुआ उसे कुछ पता नहीं। तो मेरी मां ने कहा है कि ऋषि को जाकर कह देना कि मेरी मां जब युवा थी तो उसने बहुत से लोगों की सेवा की, बहुत से लोगों को प्रसन्न किया। उन बहुत से लोगों में से किसी का मैं पुत्र हूं, उसे कुछ पता नहीं है। मेरी मां का नाम जाबाली है। मेरा नाम सत्यकाम है। इसलिए मेरी मां ने कहा कि तू यह बता देना कि मेरा पूरा नाम सत्यकाम जाबाल है। मेरे पिता का कोई पता नहीं है।
ऋषि गौतम ने क्या किया? वे उठे उस युवक को छाती से लगा लिया और कहा कि
तू निश्चित ब्राह्मण है। क्योंकि इतना सीधा और सच्चा सत्य जो ब्रह्म का खोजी है, उसके सिवाय और किसी के मन से कभी निकलता नहीं है। तू ब्राह्मण है, तू स्वीकृत हुआ। इतना सीधा सत्य, तथ्य की ऐसी सीधी स्वीकृति केवल उसी से निकलती है जो ब्रह्म का खोजी है।
मैं आपसे कहना चाहूंगाः जो सत्य का खोजी है, उसे तथ्य की सीधी-सीधी सहज स्वीकृति जरूरी है। उसे छिपाना, उससे भागना घातक है। तो अपने मन को उघाड़ें, खोलें और जैसा पाएं... अगर पाएं कि वहां कोई गोत्र नहीं है, और कोई पिता का कोई पता नहीं है, तो कोई घबड़ाहट की बात नहीं। उस तथ्य को वैसा ही स्वीकार कर लें। वहां पाएं कि बिल्कुल पशु बैठा हुआ है, उसे भी स्वीकार कर लें, उसमें क्या कसूर है। जैसा हमने पाया है, वैसा वह है। प्रकृति ने वैसा हमें दिया है--वह है। उसे हम स्वीकार कर लें। इस स्वीकृति से देखें कि क्या होगा।
स्वीकृति के साथ ही आपके भीतर अभय पैदा हो जाएगा, भय चला जाएगा। भय उसे होता है जो कुछ छिपाता है। जब आप कुछ छिपाते हैं, तो भय होता है। जब आप कुछ भी नहीं छिपाते और चीजों को सीधा खोल देते हैं, तो फिअरलेसनेस पैदा होती है। अभय पैदा होता है। तब आपको कोई भय नहीं रह जाता। क्योंकि उघड़ने के लिए तो भय होता है कि कोई मेरी नग्नता को न उघाड़ ले, कोई मेरे झूठ को न उघाड़ ले, कोई मेरे सेक्स को न उघाड़ ले। ये सारी तो भय की बातें होती हैं। और अगर मैंने अपने चित्त के सामने सब खुद ही उघाड़ लिया है, तो भय के सारे बिंदु विलीन हो जाते हैं--फिअरलेसनेस पैदा होती है। अभय, साहस पैदा होता है। और जब मैं अपने सारे तथ्यों को उघाड़ता हूं तो उघाड़ने के साथ ही साथ वह जो ग्लानि का भाव होता है, वह जो एक आत्मा में ग्लानि का भाव होता है कि ये, ये बुरा मेरे भीतर है--वह विसर्जित हो जाता है। क्योंकि उघाड़ कर मैं पाता हूं--उघाड़ते, उघाड़ते, उघाड़ते ही इस बात का दर्शन होता है--कि वे तथ्य अलग हैं। और मैं जो उघाड़ रहा हूं--अलग हूं, पृथक हूं। स्वयं की चेतना की पृथकता का बोध स्पष्ट होता है।
और जब कोई तथ्य बहुत ज्यादा पीड़ादायी उपलब्ध होता है, जो अर्थहीन मालूम होता है, अबसर्ड मालूम होता है, मीनिंगलेस मालूम होता है, जिसमें कोई अर्थ नहीं मालूम होता। उसकी जब पूरी तलहटी को कोई व्यक्ति उघाड़ कर देखता है। तो इस देखने के द्वारा ही उस तथ्य में परिवर्तन होता है। बोध, अवेयरनेस अपने मन की सारी प्रक्रियाओं के प्रति सजगता अग्नि की तरह काम करती है। अगर हम अग्नि को जला दें तो कूड़ा-कर्कट जल जाएगा और जो सोना है, खालिस सोना--वह बाकी रह जाएगा।
होश, चीजों को देखने का सामर्थ्य और चीजों पर दृष्टि ले जाना अग्नि की भांति है। जब हम अपने भीतर सब चीजों को जांच कर देखना शुरू करते हैं--एक आग लग जाती है मन में। उस अग्नि में जो-जो कचरा है वह जलने लगता है, और जो-जो स्वर्ण है वह निखरने लगता है। एक दिन जब सब कचरा जल जाता है, अग्नि समाप्त

हो जाती है--खालिस सोना, स्वर्ण भीतर रह जाता है। ये अग्नि को जलाना, होश की अग्नि।
लेकिन भागे हुए लोग उसे नहीं जला सकते हैं। एस्केप किए हुए लोग उसे नहीं जला सकते हैं। एस्केप बहुत तरह की हैं। एक आदमी शराब पीने लगता है, अपने तथ्यों से घबड़ा जाता है। एक आदमी जुआ खेलने लगता है, अपनी बेचैनी से घबड़ा कर जुआ पर दांव लगाता है--सब भूल जाता है उस दांव के तीव्र क्षण में, उस सेनसेशन की स्थिति में, उसे सब विस्मृति हो जाती है--चिंताएं, दुख, पीड़ाएं। एक आदमी शराब पी लेता है सब भूल जाता है। एक आदमी मंदिर के कोने में बैठ कर राम-राम जपने लगता है। राम-राम जपते ही जाता है, जोर-जोर से, जोर-जोर से, जितने जोर से राम-राम जपता है, उतनी जोर से चिंताएं भूल जाती हैं, उतनी देर के लिए चिंताएं विलीन हो जाती हैं। और फिर निरंतर राम-राम जपने से, या ओम जपने से, या कोई भी मंत्र जपने से, मन की जो संवेदनशीलता है, जागृति है, वह कम हो जाती है। अगर मैं यहां एक घंटे तक एक ही वाक्य बोलता रहूं, कितने लोग होंगे जो जगे रह जाएंगे? अधिक लोग सो जाएंगे--स्वभावतः। एक अदालत में एक मुकदमा चलता था। जो वकील अपने पक्ष के संबंध में बोल रहा था उसके बोलने का ढंग कुछ ऐसा मोनोटोनस था, कुछ ऐसा एकसुरा था और वह कुछ एक ही ---- पर कानून की एक ही एक दलीलें इस भांति दोहराता था कि अक्सर सब ज्यूरी सो जाते थे। एक दिन वह समझा रहा था कोई घंटे भर से, करीब-करीब सब ज्यूरी सो गए थे। जिसके पक्ष में वह बोल रहा था, वह कैदी भी अपने कठघरे पर सिर रख कर सो रहा था। उसने चिल्ला कर मजिस्ट्रेट को कहा कि महानुभाव, ये क्या, कैसी अदालत है? सब ज्यूरी सोये हुए हैं।
उस मजिस्ट्रेट ने कहा कि मुझे क्षमा करें, मैं खुद गुनहगार हूं। क्योंकि बीच-बीच में मैं खुद ही सो जाता हूं। लेकिन महाशय, इसमें हम अकेले जिम्मेवार नहीं हैं। आप, आप भी जिम्मेवार हैं। आप कुछ ऐसी तरकीब करें कि लोगों की नींद खुल जाए। आप कुछ ऐसी बातें बोलें कि लोगों कि नींद उचट जाए। एक मां को अपने बच्चे को सुलाना होता है। वह एक कड़ी उठा लेती है, सो जा मुन्ना, सो जा मुन्ना ही कहती चली जाती है, उसी-उसी को कहती जाती है। मां को ये भ्रम होता होगा कि बड़ा ऊंचा संगीत है, इसलिए मुन्ना सो रहा है।
मुन्ना बर्डन की वजह से सोया जा रहा है। जब बार-बार सो जा मुन्ना, सो
जा मुन्ना किसी से भी कहिएगा तो मुन्ना क्या, मुन्ना के पिता भी सो सकते हैं--घबड़ा जाएंगे। बर्डन, किसी चीज की ऊब, घबड़ाहट, बेचैनी किसी को भी सुला देगी। एक आदमी राम-राम जप रहा है, एक आदमी ओम्-ओम जपे जा रहा है। ये जपने से ऊब पैदा होती है, बर्डन पैदा होती, माइंड शिथिल हो जाता है। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे डल हो जाता है।
यही तो वजह है जिन-जिन मुल्कों में राम-राम, ओम्-ओम जपा, उनका माइंड बिल्कुल डल हो गया। उनको, उनसे कुछ फायदा नहीं हो सका, उनसे कोई आविष्कार नहीं हो सका। उनकी प्रतिभा सुस्त, काहिल और कुंद हो गई, खत्म हो गई। उनकी संस्कृति टूट गई। क्योंकि कुंद मस्तिष्क कुछ पैदा कर सकते हैं! लेकिन शांति मिल जाती है। क्योंकि नींद से किसी को शांति नहीं मिलती, नशा पीने से किसी को शांति नहीं मिलती, राम-राम जप रहे हैं, चिंताएं मिट गईं! चिन्ता के लिए भी तो सजग मन चाहिए न। मूढ़ मन को चिंता भी नहीं होती, जड़ बुद्धि को चिंता भी नहीं होती। चिंता व्यापने के लिए भी तो होश चाहिए।
ये सब एस्केप हैं, ये सब तरकीबें हैं--अपने जीवन को भूल जाने की। नहीं,
ये कोई भी धार्मिक नहीं हैं। धर्म है--जीवन को भूलना नहीं, जीवन की पूरी स्मृति, विस्मृति नहीं--स्मृति, अपने मन की, अपनी चेतना की सारी परतों का होश। एक-एक पर्त पर होश को ले जाना है, जागना है, देखना है--मेरे भीतर क्या है? भागना नहीं है।
भागता हुआ आदमी अधार्मिक है, जागता हुआ आदमी धार्मिक है। धर्म का मेरी दृष्टि में एक ही अर्थ हैः जागरण की सतत चेष्टा। तो जागें और देखें, और फिर देखें कि एक ट्रांसफार्मेशन आता है जो आपका लाया हुआ नहीं है, क्योंकि आप तो सिर्फ जागते थे। आप तो देखते थे कि मेरे भीतर चोरी है, प्रयोग करें।

क्योंकि जो मैं कह रहा हूं कोई सैद्धांतिक बकवास नहीं है। उससे तो मुल्क भरा हुआ है, उसकी कोई जरूरत भी नहीं है। मैं कोई उपदेश नहीं दे रहा हूं आपको। क्योंकि जिसका दिमाग खराब नहीं हुआ, वह किसी को काहे को उपदेश देगा? मुझे तो जो बात दिखाई पड़ती है सहज, वह आपसे कह रहा हूं। इसलिए नहीं कि आप मान लें, बल्कि इसलिए कि आप थोड़ा देखें--प्रयोग करके देखें। अगर ठीक लगे तो आपको खुद ठीक लगेगी, वह आपकी अनुभूति होगी; उससे मेरा कोई संबंध नहीं होगा। देखें अपने भीतर किसी तथ्य को। एक तथ्य को पकड़ लें और देखें, और फिर देखें कि वह तथ्य टिकता है या जाता है।
जब आप बहुत सजगता से किसी भी एक तथ्य को पकड़ लेंगे; हिंसा को पकड़ लेंगे
कि मेरे मन में हिंसा है, और अहिंसक होने की कोई चेष्टा न करें। क्योंकि अहिंसक होने की चेष्टा का मतलब हिंसा से आपने मुंह चुराना शुरू कर दिया। नहीं, उस हिंसक होने को स्वीकार कर लें कि ये मेरी हिंसा है--ठीक है। अब मैं इस हिंसा के तथ्य के साथ जीऊंगा, देखूं क्या होता है? अब मैं इस तथ्य के साथ रहूंगा, देखूं क्या होता है? चौबीस घंटे जागे हुए रहें--कि हिंसा है। जब मैं चपरासी से अभद्र शब्द बोला, तब हिंसा थी; जब मैं पत्नी से बेहूदी बात बोला, तब हिंसा थी; जब मैं बच्चे का कान पकड़ा, तब हिंसा थी। देखें चौबीस घंटे कहां-कहां हिंसा है। जब मैं किसी से प्रतिस्पर्धा कर रहा हूं, तब हिंसा है। जब मैं बड़ा मकान बना रहा हूं, पड़ोसी के छोटे मकान को छोटा करने के लिए, तब हिंसा है। तो मैं देखूं अपनी सारी हिंसा को चौबीस घंटे की, जो मेरे जीवन के संबंध हैं, उसमें देखूं कहां-कहां हिंसा है और चुपचाप उसे देखूं और कुछ करने की भी जरूरत नहीं है। और आप देखते-देखते हैरान हो जाएंगे! आपका जैसे-जैसे बोध होगा कि हिंसा है, वैसे-वैसे आप पाएंगे हिंसा विलीन हो रही है, और हिंसा की जगह कोई एक नया तत्व आ रहा है-- जो अहिंसा का है।
चूंकि हम देखते नहीं, इसलिए हिंसा जिंदा है। हमारी मूर्च्छा हिंसा का प्राण है। अगर हम जागेंगे और देखेंगे, हिंसा की मृत्यु हो जाएगी। जीवन में जो भी अशुभ है, वह हमारी मूर्च्छा के कारण जिंदा है। हम बेहोश हैं, इसलिए वह जिंदा है, इसलिए उसमें प्राण है। प्राण कौन दे रहा है? हम दे रहे हैं। मूर्च्छा के कारण हम ही प्राण दे रहे हैं उसको, हम ही शक्ति दे रहे हैं, हम ही वैडिलिटी दे रहे हैं। हमारी ही एनर्जी वह पी रहा है लेकिन अगर हम जाग जाएं, तो हमारा... अपने आप हमारी शक्तियां उससे दूर हटती जाएंगी। हम "क्षण" सजग हो जाएंगे।
एक मित्र हैं, उन्होंने मुझसे कहाः मुझे बहुत क्रोध आता है, मैं क्या करूं? मैं बहुत तरकीबें कर चुका। क्रोध तो जाता नहीं, क्रोध से मेरा जीवन खराब हुआ जा रहा है। मैंने उनसे कहाः आप एक छोटा सा काम करें, कागज पर लिख कर रख लें कि अब मुझे क्रोध आ रहा है। उसे हमेशा खींसे में रखें। जैसे क्रोध आए, कृपा करके उसको निकाल कर पढ़ें और वापस रख लें। फिर मुझे महीने भर बाद आकर कहें। वह महीने भर बाद आया। वे बोले हैरान हूं मैं तो! क्रोध आता है, मेरा हाथ खींसे की तरफ गया कि मुझे लगता है--क्रोध तो हवा हो गया।
किसी भी तथ्य को आप जाग कर देखें। आपका जागरण तथ्य की मौत है। और जब तथ्य मर जाता है तो उस तथ्य में जो शक्ति आपकी खर्च हो रही थी, वह रिलीज होती है। आखिर क्रोध में शक्ति नष्ट हो रही है, लोभ में शक्ति नष्ट हो रही है; प्रतिस्पर्धा में, घृणा में शक्ति नष्ट हो रही है; द्वेष में, ईर्ष्या में शक्ति नष्ट हो रही है। अगर ये सारे तथ्य विलीन हो जाएं--तो एक अदभुत शक्ति का रिलीज होगा। इनकी सारी शक्ति बच जाएगी। वही शक्ति आपकी आत्मा को बल देगी, वही शक्ति आपकी आत्मा का उर्ध्वगमन बन जाएगी--जो शक्ति क्रोध में नष्ट होती, लोभ में नष्ट होती, जो शक्ति अहंकार में नष्ट होती है--वही बच जाए, तो वही उर्जा परमात्मा तक ले जाने का मार्ग बन जाती है; वही उर्जा परमात्मा तक ले जाने की सीढ़ी बन जाती है।
लेकिन भाग कर कोई दुनिया में कभी क्रांति नहीं होती। फिर इस भांति जागरण से जो क्रांति होती है, ये जो ट्रांसफार्मेशन होता है--ये आपका लाया हुआ नहीं है। क्योंकि आप तो केवल जागे थे, आप तो केवल जागे थे, ट्रांसफार्मेशन अपने से आता है। आप जागें, सत्य अपने से आता है। मनुष्य

जागे, सत्य का आगमन अपने से होता है। मनुष्य जागे, परमात्मा उसे खोजता हुआ उसके द्वार चला आता है। लेकिन जागने की बात है, पूरी तरह जागने की बात है। और इसलिए जागना ही एकमात्र तप है, एकमात्र तपश्चर्या है। जागना ही एक मात्र श्रम है, संकल्प है, साधना है। जो मनुष्य करे तो उसके भीतर एक बिल्कुल अभिनव व्यक्ति का जन्म हो जाएगा। एक ऐसे व्यक्ति का जिसे उस शांति का पता चलेगा--जो सनातन है, अनादि है। जिसे उस सन्नाटे का अनुभव होगा--जो परमात्मा के हृदय में है, जिसे उस आनंद की किरणें उपलब्ध होंगी-- जो इस सारी विराट सृष्टि के केंद्र में छिपा हुआ है, उसे उस अमृत का सागर उपलब्ध हो जाएगा--जो कि सारे अस्तित्व में रमा हुआ है, लेकिन व्यक्ति टूट जाएगा। उसके तथ्य सब बदल जाएंगे, सिर्फ होश रह जाएगा। और अंततः होश की लपट उसे परमात्मा की ज्योति से मिला देगी।
ये विधायक रूप से क्या किया जा सकता है, हम क्या कर रहे हैं? हम भाग रहे हैं, भागते चले जा रहे हैं। नहीं, भागना नहीं है--रुकना। ठहरें और देखें और जागें और अपने को बदलने की कोई फिकर न करें--बदलाहट आएगी। बदलाहट आपके हाथ का काम नहीं हो सकती। क्योंकि आपका जो कनफ्यूज दिमाग है, आपका जो द्वंद्वग्रस्त मन है, आपका जो बेहोश मन है--यह क्या बदलाहट लाएगा, इससे क्या बदलाहट हो सकती है।
अगर यह बदलाहट ला सकता, तब तो कहने ही क्या थे! और अगर यह कोई बदलाहट ले
भी आएगा तो क्या वह बदलाहट इस मन से बेहतर हो सकती है? जो मन बदलाहट लाएगा, बदलाहट इस मन से नीची होगी; इससे ऊंची नहीं हो सकती।
कैसे हो सकती है? बनाने वाले से बनाई गई चीज कहीं बड़ी हो सकती है! क्रिएशन कहीं क्रिएटर से बड़ा हो सकता है! तो आपका माइंड जिस वाइलेंस से बच कर नॉन-वाइलेंस को पैदा करेगा, हिंसा से बच कर अहिंसा पैदा करेगा, वह आपके दिमाग से बड़ी हो सकती है--नहीं हो सकती। वह आपके दिमाग से भी छोटी होगी। जब आपका दिमाग ही छोटा है, जब मेरा दिमाग ही छोटा है, जब मेरा दिमाग हिंसा से, क्रोध से, वासना से भरा हुआ है तो इससे धर्म कैसे पैदा हो सकता है--नहीं, इससे कोई धर्म पैदा नहीं हो सकता। इससे जो धर्म पैदा होगा, वह इसी तरह का धर्म होगा--वह लोभ का धर्म होगा, पाप का धर्म होगा, अहंकार का धर्म होगा। वह धर्म इस मन से बड़ा नहीं हो सकता। जो चीज जिससे पैदा होती है, उससे बड़ी कभी नहीं हो सकती।
फिर क्या रास्ता है? इस मन से कोई रास्ता नहीं, इस मन से कुछ हो नहीं सकता। लेकिन एक बात है इस मन के प्रति जागा जा सकता है, जो जागता है वह मन से अलग है। जो होश से भरता है, वह मन के पीछे है। और अगर वह होश से पूरा भर जाए, तो उसका होश इस मन में क्रांति लाना शुरू कर देता है।
एक छोटी सी कहानी से अपनी चर्चा को मैं पूरा करूं।
एक फकीर था। एक युवक उसके पास गया और उसने कहा कि मैं तो चोर हूं, मैं
तो बेईमान हूं, मैं तो झूठ बोलने वाला हूं, लेकिन मैं भी परमात्मा को पाना चाहता हूं--मैं क्या करूं? और मैं जिस साधु के पास गया उसने कहाः पहले झूठ छोड़ो, पहले बेईमानी छोड़ो, फिर मेरे पास आना।
उस फकीर ने कहाः तुम गलत लोगों के पास पहुंच गए, जिन्हें कुछ भी पता नहीं। तुम ठीक ही हुआ कि यहां आ गए और मैं खुश हूं कि तुम यह स्वीकार करते हो--तुम चोर हो, तुम बेईमान हो। यह धार्मिक आदमी का पहला लक्षण है कि वह स्वीकार करता है कि वह चोर है, वह बेईमान है, वह झूठ बोलता है। अब कुछ हो सकता है। तुम्हारी तैयारी पूरी है। लेकिन इन्हें छोड़ना मत, छोड़ने की फिकर में मत पड़ जाना, नहीं तो छोड़ने की फिकर में ये बच जाएंगे; फिर तुम भागते रहोगे, और ये बचे रहेंगे। जब तुम रुकोगे, तब तुम पाओगे कि ये मौजूद हैं। ये कहीं भी नहीं जाएंगे, क्योंकि तुम अपने को छोड़ कर कहां भाग सकते हो?
उसने एक छोटी सी कहानी उस युवक को कही। उसने कहा कि एक आदमी एक दूसरे गांव के दरवाजे पर पहुंचा। उस गांव के दरवाजे पर एक बूढ़ा आदमी बैठा था, उसने उससे पूछा कि इस गांव के लोग कैसे हैं?
उस बूढ़े ने कहाः मैं ये पूछूं कि आप किसलिए ये पूछते हैं? क्या यहां बसना चाहते हैं? यदि बसना चाहते हैं तो ये बताएं कि आप जिस गांव को छोड़ कर आ रहे हैं, वहां के लोग कैसे थे?

आदमी ने कहाः उस गांव के लोगों का नाम भी मत लो। वैसे दुष्ट, वैसे पाजी लोग इस सारे संसार में कहीं भी नहीं हैं।
उस बूढ़े ने कहा: तब आप किसी और गांव में बसें। आप पाएंगे इस गांव के लोग, उस गांव से भी ज्यादा दुष्ट हैं। यह तो बहुत ही खराब गांव है। मेरा अनुभव यह है कि इस गांव जैसे आदमी, उस गांव में भी न होंगे। तुम जाओ कहीं और बस जाना। वह हटा, उसके पीछे एक दूसरा आदमी पहुंचा।
उसने भी पूछा कि मैं इस गांव में बसना चाहता हूं--उस बूढ़े आदमी से। इस गांव के लोग कैसे हैं?
उस बूढ़े ने कहा कि पहले मैं यह पूछ लूं कि तुम जिस गांव से आते हो उस गांव के लोग कैसे थे?
उसने कहाः उनका तो नाम ही मेरे हृदय को आनंद से भर देता है। उतने भले लोगों को छोड़ कर मजबूरी में मुझे आना पड़ा, इसके लिए मेरा हृदय सदा दुखी रहेगा।
उस बूढ़े ने कहाः आओ, तुम्हारा स्वागत है। तुम पाओगे इस गांव के लोग तो
उस गांव से भी बेहतर हैं। इस गांव जैसे अच्छे लोग तो हैं ही नहीं जमीन पर। उस फकीर ने उस युवक को कहा: यह कहानी मैं तुमसे कहता हूं, तुम कहीं भी भाग जाओ, तुम कहीं भी चले जाओ, तुम अपनों को छोड़ कर नहीं जा सकते। तुम जो हो, वह तुम्हारे साथ है। और उसकी शक्ल तुम्हें दूसरे लोगों में दिखाई पड़ती है--और क्या दिखाई पड़ता है!
आप, सब, मैं, आप एक दूसरे के लिए दर्पण हैं, एक दूसरे में अपनी शक्ल झांक लेते हैं।
तो तुम कहीं भी चले जाओ, तुम अपने से भाग नहीं सकते। लेकिन एक काम करना, तुम अपने प्रति जाग सकते हो। तो तुम एक काम करना कि जब भी तुम्हारे मन में चोरी का, बेईमानी का खयाल आए तो तुम होश से करना, चोरी करना होश से करना, किसी का ताला तोड़ने जाओ, तो बेहोशी में मत तोड़ना, पूरे होश से कि मैं ताला तोड़ रहा हूं, चोरी कर रहा हूं--सजगता से ताले को तोड़ना। जैसे ही मूर्च्छा आ जाए, वहीं ताला छोड़ देना। होश आए, फिर ही ताला खोलना; मूर्च्छा में ताला मत खोलना। पूरी तरह से जागे हुए हो कि ताला तोड़ना। जागे हुए को में तिजोरी से रुपये निकालना।
वह युवक पंद्रह दिन बाद लौटा। उसने कहाः यह तो बड़ी मुसीबत हो गई। जब मैं पूरे होश से भरा होता हूं तो मेरा हाथ रुपये उठाने को नहीं बढ़ता है। और जब मैं बेहोश होता हूं तो हाथ बढ़ता है। और आपने तो बड़ी मुश्किल कर दी। मैं दो दिन बहुत बढ़िया खजाने छोड़ कर आया। तोड़ ली थी दीवालें, पहुंच गया था, तिजोरियां खोल ली थीं--हाथ उठाता था, ख्याल आता था कि चोरी होशपूर्वक करनी है। होश जैसे ही जगता था, चोरी विलीन हो जाती थी।
जैसे हम यहां दीया जलाते हैं तो अंधेरा विलीन हो जाता है, दीये के साथ अंधेरा विलीन हो जाता है। दीया बुझा दें, अंधेरा आ जाता है। ठीक वैसे ही होश जगाएं, सारी विकृति विलीन हो जाती हैं। दीया बुझा दें, विकृति लौट आती है। होश आत्मा का दीया है, वही ध्यान है। उसी को मैं मेडिटेशन कहता हूं। होश ध्यान है। निरंतर अपने जीवन के सारे तथ्यों के प्रति जागे हुए होना ध्यान है। वही दीया है, वही ज्योति है; उसको जगा लें और फिर देखें--पाएंगे, अंधेरा क्रमशः विलीन होता चला जा रहा है।
एक दिन आप पाएंगे अंधेरा है ही नहीं, एक दिन आप पाएंगे, आपके सारे प्राण प्रकाश से भर गए; और एक ऐसे प्रकाश से जो अलौकिक है; एक ऐसे प्रकाश से जो परमात्मा का है; एक ऐसे प्रकाश से जो इस लोक का नहीं, इस समय का नहीं, इस काल का नहीं--जो कहीं दूरगामी, किसी बहुत केंद्रीय तत्व से आता है और उसके आलोक में ही जीवन नृत्य से भर जाता है, संगीत से भर जाता है। तभी शांति है, तभी सत्य है। उसके पूर्व सब भटकन है, सब अंधेरा है। उस अंधेरे में आप कुछ भी करें, कुछ भी न होगा। दीये को जलाएं--फिर दीया ही कुछ करेगा। दीये को जलाएं--फिर दीया ही कुछ करेगा। ज्योति को जगाएं--होश की, फिर होश ही कुछ करेगा। होश क्रांति ले आता है।

कल मैंने कुछ तोड़ने की बात कही। आज कुछ आपसे बनाने की बात कही। अगर तोड़ने और बनाने का साहस जिस व्यक्ति में है, वह कभी भी अपने जीवन को एक अदभुत जीवन में परिवर्तित कर सकता है।
परमात्मा करे, आपका जीवन एक ज्योति बने--एक जीती हुई ज्योति। आपके लिए
ही केवल ये जरूरी नहीं है, इस वक्त सारा मनुष्य संकट में है। सारा मनुष्य पीड़ा में है। अगर बहुत से लोगों के हृदय जग जाएं और ज्योति बन जाएं, तो इस सारे जगत से अंधकार दूर हो सकता है। एक नई संस्कृति पैदा हो सकती है--जो धार्मिक होगी।
अभी तक कोई धार्मिक संस्कृति पैदा नहीं हो सकी। अभी वस्तुतः धर्म ही पैदा नहीं हो सका। अभी धर्म के नाम से चर्च पैदा हुए, संप्रदाय पैदा हुए; अभी धर्म पैदा नहीं हुआ। अभी मनुष्य के हृदय में धर्म की ज्योति नहीं जगी, अभी समय है। और बहुत लोगों को श्रम करना होगा। उनके खुद के हित में भी, और सारे मनुष्य के हित में भी, उसमें ही कल्याण है। अगर हम एक संस्कृति को पैदा कर सकें--जो कि धार्मिक हो। वह कैसी होगी? धार्मिक मन से होगी। धार्मिक मन कौन सा है? जिसके भीतर होश की ज्योति जगी है, वह धार्मिक मन है। मेरी इन बातों को इतने प्रेम, इतनी शांति से सुना है, उससे बहुत-बहुत आनंदित और अनुगृहीत हूं। और आप सबके चरणों में प्रणाम करता हूं। क्योंकि कोई चरण किसी का नहीं, सभी चरण परमात्मा के हैं।